मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)
'मुखरता सत्यवचननी विघातक छे'

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य-विषयक
सम्पादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

सम्पादकः
विजयशीलचन्द्रसूरि

श्रीहेमचन्द्राचार्य

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि
अहमदाबाद
२०१२

अनुसन्धान ५८

आद्य सम्पादक: **डॉ. हरिवल्लभ भायाणी**

सम्पादक: **विजयशीलचन्द्रसूरि**

सम्पर्क: C/o. **अतुल एच. कापडिया**
A-9, जागृति फ्लेट्स, पालडी
महावीर टावर पाछळ, अमदावाद-३८०००७
फोन : ०७९-२६५७४९८१

प्रकाशक: **कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद**

प्राप्तिस्थान: (१) **आ. श्रीविजयनेमिसूरि जैन स्वाध्याय मन्दिर**
१२, भगतबाग, जैननगर, नवा शारदामन्दिर रोड,
आणंदजी कल्याणजी पेढीनी बाजुमां,
अमदावाद-३८०००७

(२) **सरस्वती पुस्तक भण्डार**
११२, हाथीखाना, रतनपोल,
अमदावाद-३८०००१

प्रति: २५०

मूल्य: Rs. 150-00

मुद्रक:

क्रिश्ना ग्राफिक्स, किरीट हरजीभाई पटेल
९६६, नारणपुरा जूना गाम, अमदावाद-३८००१३
(फोन: ०७९-२७४९४३९३)

निवेदन

संशोधननी प्रक्रियानो सौथी मोटो लाभ ए छे के तेनाथी आपणी मान्यताओनुं संशोधन थाय छे. आपणे कोई बाबते कांई मानता होईए, अने तेने आपणी मान्य परम्परानो टेको पण मळतो ज होय; हवे आपणा संशोधनात्मक अध्ययन दरमियान, आपणी शोधक दृष्टिमां, ते मान्यता करतां कांईक जुदुं ज प्रतीत थाय; क्यारेक तो ते पारम्परिक मान्यताथी साव विपरीत पण होय; तेवे वखते सौप्रथम तो आपणे आपणी रूढ मान्यतानुं संशोधन करवुं ज रहे. पछी आपणी विवेकशीलता अनुमति आपे तो, ते संशोधनने के संशोधित मान्यताने सर्व समक्ष मूकवानुं साहस करवुं जोईए. अलबत्त, एम करवा जतां समाजमां विवाद-विसंवाद न सर्जाय, संशोधक तथा संशोधन परत्वे गेरसमज के अरुचि न जागे, ते जोवुं अत्यन्त जरूरी गणाय. आ बधुं संशोधकनी विवेकशीलता उपर ज निर्भर छे. संशोधकनी निष्ठा जेटली शुद्ध अने प्रमाणिक, तेटलो ज तेनामां विवेकनो विकास थशे. आवो विवेक अने आवी निष्ठा न होय तेणे संशोधनना क्षेत्रथी दूर रहेवुं ज हितावह छे.

संशोधकने सौथी वधु सावधानी 'भिन्न मत'थी राखवानी होय छे. बधा आपणा द्वारा थयेला संशोधनने स्वीकारे नहि. परम्परानो मत तो संशोधित मत प्रत्ये दुश्मननी नजरथी ज जोवानो. आवी क्षणोमां विचलित थवुं के छीछरा खण्डन-मण्डनमां खेंचाई जवुं ते विवेकी शोधकने पालवे नहि. आनाथी बचावे तेवुं एक ज तत्त्व छे — मतसहिष्णुता. भिन्न के विरोधी एवा, साचा वा खोटा मतथी/मान्यताथी/प्रतिपादनथी शोधकने बचावी शके के रक्षी शके तेवुं आ एक ज तत्त्व छे. आपणे आपणा प्रमाणभूत संशोधन द्वारा प्राप्त थयेलो मत विद्वानो समक्ष रजू करी दीधो, एटले आपणुं कार्य सम्पन्न. पछी कोई तेने न स्वीकारे, तेनुं खण्डन करे, तो जो ते खण्डन करनार प्रमाणिक के प्रमाणभूत व्यक्ति होय, तेना द्वारा थता खण्डनमां विवेकनुं प्रमाण जळवातुं होय अने युक्तिओ तथा तर्कोमां पण वजूद लागतुं होय, तो जरूर तेमनी साथे विवाद-संवाद करी शकाय. परन्तु तेवुं कांई न होय, तो मौन रहेवुं वधु हितावह होय छे.

सार ए के जे संशोधन, आपणी विचारसरणिने वधु विशद, वधु निर्मळ न बनावे तथा आपणी मान्यताने हठाग्रहमां फेरवाती न अटकावे, तेवा संशोधनकार्यथी अळगा रहेवुं.

शी.

आवरणचित्र–परिचय

जैन परम्परामां मनुष्योना अर्थात् जीवोना छ वर्ग पाडवामां आव्या छे. जीवोनी आन्तरिक सद्‌वृत्ति-दुर्वृत्तिने, अथवा तो तेमनी भीतरनी शुद्धि तथा मलिनताने अनुलक्षीने पाडवामां आवता आ छ प्रकारने 'छ लेश्या' ना नामथी ओळखवामां आवे छे. लेश्या एटले मननी वृत्ति, परिणति अथवा विचारधारा. तेनां छ नामो आ प्रमाणे छे : कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या अने शुक्ललेश्या. आ छए लेश्याने समजावतुं एक सरस दृष्टान्त छे : छ माणसो एक जाम्बूना वृक्ष पासे आव्या. पाकेलां फळ जोईने ते खावानुं मन थयुं. ते जाम्बू मेळववा माटे ते दरेके पोतानी वात कही, जेना आधारे तेमनी लेश्यानो – मनोदशानो अन्दाज मळी रहे छे.

पहेला माणसे कुहाडी हाथमां लईने कह्युं : आ झाडने कापी नाखीए. पछी निरांते जाम्बू खवाय. आ **कृष्ण लेश्या.** (चित्रमां काळुं उपरणुं पहेरेल अने हाथमां कुहाडी धरावती व्यक्ति).

बीजाए कह्युं : ना, झाड नथी कापवुं. मोटी शाखाओ ज कापीए. **आ नील लेश्या.** (झाड उपर लीलुं उपरणुं पहेरेल माणस; नीचेथी पहेलो).

त्रीजाए कह्युं : ना, प्रशाखाओ ज कापो. आ **कापोत लेश्या.** (चित्रमां जमणे भूखरा रंगनुं उपरणुं पहेरेल व्यक्ति).

चोथो कहे : ना ना, डाळो नथी कापवी; झूमखां ज तोडीए.

आ तेजोलेश्या. (चित्रमां सौथी उपर पीळा पहेरणवाळो जण).

पांचमाए ना पाडी के एना करतां जोईए तेटलां जाम्बू ज चूंटी लईए. **आ पद्मलेश्या.** (चित्रमां झाड पर डाबे श्वेत कपडांवाळो माणस).

छेवटे छठ्ठाए कह्युं **:** शा माटे कांई पण तोडवुं ? आपमेळे नीचे घणां जाम्बू पडे ज छे, ए ज वीणी लईए तो आपणुं काम सरी जाय ! **आ शुक्ल लेश्या.** (चित्रमां साव नीचे जमणे श्वेत कपडांमां वांको वळीने फळ वीणतो जण).

आ दृष्टान्तने वर्णवतां पोथी चित्रो उपलब्ध छे. जैन मन्दिरोमां, उपाश्रयोमां तेनां भींतचित्रो पण मळे. **आवरण-१ पर** मूकेल चित्र ते Painting नहि, परन्तु Inlay-work छे. मूल्यवान विविधरंगी पत्थरोने कलात्मक रीते कोतरीने उपसाववामां आवेल आ पट्ट कोल्हापुरना लक्ष्मीपुरीस्थित जैन देरासरनी दीवाल पर जोवा मळे छे. वृक्ष, पहाड, वनराजि, पाणी, पक्षीओ, मनुष्यो – आ बधांने एटली तो वास्तविक रीते कंडारवामां आवेल छे के तेने जोतां ज आपणी सौन्दर्यदृष्टि विस्फारित थया विना रहे नहि.

आवरण – ४ पर पण ते ज चित्र मूकेल छे. दायकाओ पूर्वे, अंग्रेजोना वखतमां, भारतमां लीथो प्रिन्टिंगनो युग हशे त्यारे, कोई नोटबुकना (Excersize Book) उपरणा पर छपायेल छ लेश्यानुं आ चित्र छे. तेना मथाळे लखेल ANDREWS तेनी उत्पादक कम्पनीनुं नाम होवुं जोईए.

ते वखते लोकोनी रुचि तथा संस्कारिता घडवा माटे पुरातन सामग्रीनो केवो सरस विनियोग थतो हशे ?

अनुक्रमणिका

स्तम्भनकपुरमण्डन पार्श्वनाथ स्तोत्रयुगलः	सं. अमृत पटेल	१
नवग्रह-स्तम्भनकपार्श्वदेवस्तवः	सं. अमृत पटेल	५
श्रीकनककुशलगणि-रचिता श्री रत्नाकरपञ्चविंशतिका-वृत्तिः	साध्वी समयप्रज्ञाश्री	१५
श्रीजिनवल्लभसूरिरचितं प्रश्नोत्तरशतम् (सटीकम्)	सं. मुनि रत्नकीर्तिविजय मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय	३३
शासनसम्राट्-श्रीविजयनेमिसूरिजी-विरचिता अनेकान्ततत्त्वमीमांसा	सं. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय	८०
गङ्गातैलीदृष्टन्तः	सं. मुनि रत्नकीर्तिविजयः	९८
श्री जयरत्नकृत-सच्चायिका बत्तीसी	सं. म. विनयसागर	१०१
श्रीरत्नविजयजी रचित दो स्तवन	सं. म. विनयसागर	१०५
श्रीधनेश्वरसूरिजी रचित संवेगकुललम्	सं. म. विनयसागर	१०८
नवतत्त्व साहित्य अने एक अप्रगट चोपाई	सं. मुनिसुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ	१११
श्रीनवतत्त्व-विषयक संस्कृत-प्राकृत साहित्य	सं. मुनिसुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ	१२२
जैन कथा साहित्य : एक समीक्षात्मक सर्वेक्षण	प्रो. सागरमल जैन	१३२
निह्नव रोहगुप्त, श्रीगुप्ताचार्य अने त्रैराशिकमत	मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय	१४६

स्तम्भनकपुरमण्डन पार्श्वनाथ स्तोत्रयुगल

- सं. अमृत पटेल

स्तम्भनपुरमण्डन पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्वदेवनां अहीं प्रकाशित थतां बे स्तोत्रो घणां भाववाही छे. लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर अमदावादनां हस्तप्रतसंग्रहनी, एक एक पत्रनी बे प्रतो उपरथी आ बे स्तोत्रोनुं सम्पादन थयुं छे. तेमां पहेलां, अज्ञातकर्तृक स्तम्भनाधीश पार्श्वनाभ स्तोत्र(१५ पद्य)नो प्रारम्भ 'गीवार्णचक्र'थी थाय छे. तेनो क्रमांक भेट सूचि १५९३६ छे. २६ x ११ से.मीनुं परिमाण छे. प्रायः १८मा शतकमां लखायेल छे. बीजुं स्तोत्र 'जनानन्दमाकन्दथी प्रारंभातुं अज्ञातकर्तृक स्तम्भनक पार्श्वजिनस्तोत्र, ला.द.भेट सूचि ५८०९/१ एक पत्रनी पत्रमां १६मा शतकमां लखायेल छे.

'गीवार्णचक्र' पद्यथी शरु थतां, वसन्ततिलका छन्दमां निबद्ध, आ स्तोत्रमां रूपक, अनन्वय, (केनोपमा तव ततो मयका विधेया ॥६॥) उपमा वगेरे अलङ्कारोथी भावाभिव्यक्ति बहु सचोट बनी छे. १०मा पद्यमां राग-द्वेष अने मोहनां लक्षणो बहु सरळ रीते दर्शाव्यां छे. १२मा पद्यमां 'भक्तामरस्तोत्र' 'मत्तद्विपेन्द्र' पद्यनी, 'भयं भियेव' पदनी प्रतीति 'भीता व्रजन्ति च भया... (॥१२॥) पद द्वारा थाय छे. अन्तिम पद्यमां 'भुवनसङ्ख्यमितैः' पद 'भुवन' शब्दथी १४नी संख्या सूचवाई छे. तेमां संभव छे के कर्तानुं नाम 'भुवन' शब्दथी गर्भित रीते सूचवायुं होय. कारणके मोटे भागे स्तोत्र जेवी लघुकृतिओमां पद्य संख्या, शब्दाङ्कथी अपाई जेम तेवुं प्रायः जोवामां आव्युं नथी.

जनानन्दमाकन्दथी प्रारम्भ थतां स्तोत्रमां प्रसन्न पदलालित्य छे. तेमां पण उपमा वगेरे अलङ्कारो प्रयोजाया छे, तेमां 'शरुनां त्रण पदो वृत्यनुप्रासमण्डित छे. ४थुं पद 'मुदा स्तौमि पार्श्वं जिनं स्तम्भनेशं' ध्रुवपंक्तिरूपे छे. प्रस्तुत स्तोत्रमां वर्ण पुनरावर्तनथी लयमाधुर्य प्रगटे छे, जेथी भुजङ्गप्रयात छन्दमां लयनर्तन पण.

स्तम्भनक पार्श्वनाथनी स्तवना नवाङ्गवृत्तिकार अभयदेवसूरिजीए (ई.स. १०७५) करेली. तेमना अपभ्रंश भाषामय' जय तिहुअण स्तोत्र बाद लगभग १० जेटलां स्तोत्रो महिमामण्डित 'स्तम्भनपार्श्व'नां रचायां छे. तेमां आ बे स्तोत्रोथी प्रस्तुत जिनसम्बद्ध बे विशेष रचनानी वृद्धि थाय छे.

(१)

अज्ञातकर्तृकं स्तम्भनाधिपपार्श्वनाथ स्तोत्रम्

गीर्वाणचक्र-नरनायकवृन्दवन्द्यं
भव्यावलीकमलबोधनसूरराजम् ।
कल्याणकल्पतरुसेचनवारिवाहं
श्रीस्तम्भनाधिपमहं प्रणमामि पार्श्वम् ॥१॥
देवाधिदेव ! तव पादपयोजयुग्मं
सम्प्राप्य साधुजनलोचनषट्पदाली ।
प्राप्य प्रमोदमकरन्दरसं सुहृद्यं
संवेदयत्यतितरां सुखपङ्कमग्ना ॥२॥
आनन्दपूरकलिताऽमल एष घस्रो
यस्मिँस्त्वदीयवदनाम्बुजदर्शनं मे ।
पक्षोऽतिदक्षजनवर्ण्य इहातिजज्ञे
स्वान्तं त्वदीयगुणसङ्गरतं च यत्र ॥३॥
मासोऽयमत्र सुखराशिनिवासभूतो
वर्षं सहर्षमिति नाथ ! विचारयामि ।
एतद्युगं सुगममत्र विवेकपूर्णं
त्वद्पादपङ्कजमहं च यदा महेयम् ॥४॥
देवाद्रिरेष जिनराज ! न कोमलाङ्गो
रत्नाकरोऽपि लवणत्वरसो न रम्यः ।
पक्षद्वयेऽपि दिनमेकमयं विहाय
चन्द्रः कलापरिकराऽपरिपूर्णभावः ॥५॥
युक्तो महाविषधरैः किल चन्दनद्रुः
प्रत्युग्रतापजनकस्तरणिः प्रतीतः ।
कल्पद्रुमोऽपि तरुजातिरयं विचेताः
केनोपमा तव ततो मयका विधेया ॥६॥ (युग्मम्)
त्वं नाथ ! देवतरुतोऽभ्यधिकं वदान्य
आमुष्मिकैहिकसुखौघविधानदक्षः ।

ये त्वां विहाय परदेवकृतांह्रिसेवा-
स्तेभ्यो परो भुवि नरो न जडोऽस्ति कश्चित् ॥७॥
जानन्ति केऽपि किल लक्षणतर्कविद्यां
ज्योतिष्क-वैद्यक-कलासु विवेकिनोऽन्ये ।
मन्त्रादिभावनिपुणाः कतिचिज्जगत्सु
सन्तीह नो तव निरूपणभावदक्षाः ॥८॥
आस्तां तवाऽनघ ! गुणौघरसः परेषु
मुद्राऽपि नैव तव नाथ ! हि तैरवाप्ता ।
काम-क्रुधादिविगुणैरनिशं भृतास्ते
शान्तादिभावकलितो भगवंस्त्वमेव ॥९॥
रामारसाऽऽविलतया कलितो हि रागो
द्वेषस्तु शत्रुघनघातनहेतिलक्षः ।
मोहः परेष्वबुधताऽऽचरणेन गम्यो
नाऽमी मया त्वयि विभो !ऽपगुणास्तु दृष्टाः ॥१०॥
त्वद्वीक्षणाज्जिनवरेन्द्र ! शरीरभाजां
मोदातिशेषकलितं हृदयं क्षणात् स्यात् ।
धाराधराऽमलजलाद् भवति प्ररोहः
पृथ्व्यां यथा सफलभूरुहजातियोग्यः ॥११॥
कण्ठीरवा-ऽनल-करीन्द्र-गदा-ऽहि-नीर-
चौरा-ऽरि-सङ्गर-महोदर-बन्धनाद्याः ।
भीता व्रजन्ति च भया(याद्?) रवितस्तमांसि(स्तमिश्र?)-
वन्नाथ ! नामजपतस्तव नास्ति शङ्का ॥१२॥
येषां जिनेन्द्र ! तव नाम हृदि प्रशस्तं
नित्यं स्थितं भवति देव ! सुखानि तेषाम् ।
स्युः शाश्वतानि सुरराज-नरेन्द्रसम्पद्-
युक्तानि मङ्गलरमावरदानि मन्ये ॥१३॥
नागाधिपोऽनलदवानलविह्वलास्यः
पीयूषपूरतुलितं वचनं त्वदीयम् ।

श्रुत्वा विभो!ऽजनि स नागपदाधिकारी
सर्वोऽपि(?प्ययं?) जिनवरेन्द्र ! तव प्रभावः ॥१४॥
इत्थं सदा भुवनसङ्ख्यमितैः सुवृत्तैः
प्रातः स्तुतिं विदधते मनुजाः सदा ये ।
सद्ब्रह्म-निर्जर-नरेशसुखानि नित्यं
ते प्राप्नुवन्ति कमलाकलितानि देव ! ॥१५॥

(२)

अज्ञातकर्तृकम् स्तम्भनकपार्श्वजिनस्तोत्रम्

जनानन्दमाकन्दसच्चैत्रमासं, श्रितश्रीमहानन्दलक्ष्मीविलासम् ।
तमस्तोमसम्भारहिंसादिनेशं मुदा स्तौमि पार्श्वं जिनं स्तम्भनेशम् ॥१॥
पुराऽऽराधि राजराजेन्द्रदेवै(राजेन्द्रदेवेन्द्रराजै)-र्गृहीत्वा निजस्थानके क्लृप्तसेवैः ।
हृदि स्वे विधायाऽतिभक्तेः प्रवेशं, मुदा स्तौमि पार्श्वं जिनं स्तम्भनेशम् ॥२॥
सदा प्रातिहार्यैः शुभैः शोभमानं, जितोदारदुर्वारभावारिमानम् ।
फणाश्रेणिसंशोभिमौलिप्रदेशं, मुदा स्तौमि पार्श्वं जिनं स्तम्भनेशम् ॥३॥
निशाकान्तवच्चारुचारित्रपात्रं, लसद्वर्यवैडूर्यरोचिष्णुगात्रम् ।
शुभध्यानविध्वस्तकर्मप्रदेशं, मुदा स्तौमि पार्श्वं जिनं स्तम्भनेशम् ॥४॥
नवाऽऽषाढपर्जन्यगम्भीररावं, भवाम्भोधिमज्जज्जनोत्तारनावम् ।
स्वसद्देशनाबोधिताशेषदेशं, मुदा स्तौमि पार्श्वं जिनं स्तम्भनेशम् ॥५॥
सदा पन्नागाधीशसंसेव्यपादं, निजज्ञाननिर्धूतदुर्वारिवादम् ।
व्रताऽऽदानकालेप्सितश्रीनिवेशं, मुदा स्तौमि पार्श्वं जिनं स्तम्भनेशम् ॥६॥
परिच्छिन्नसंसारवासैकपाशं, यशःपूरकर्पूरसम्पूरिताऽऽशम् ।
मुखश्रीपराभूतसम्पूर्णभेशं, मुदा स्तौमि पार्श्वं जिनं स्तम्भनेशम् ॥७॥
प्रभूतप्रभावं प्रचण्डप्रतापं, रमामन्दिरं त्यक्ततृष्णादितापम् ।
कदाचित् कथञ्चिन्न लब्धाऽघलेशं, मुदा स्तौमि पार्श्वं जिनं स्तम्भनेशम् ॥८॥
ज्वर-श्वास-कासादिनिर्नाशहेतुं, वधच्छेद-बन्धादिदुःखाब्धिसेतुम् ।
स्मरावेगविध्वंसने व्योमकेशं, मुदा स्तौमि पार्श्वं जिनं स्तम्भनेशम् ॥९॥
एवं प्रभुं **स्तम्भनका**वतंसं, वामातनूजं कृतविश्वशंसम् ।
स्तवीति यः, स्वस्य भवेऽत्र भक्तिः, क्रमाच्च जायेत [भवाद्वि]मुक्तिः ॥१०॥

नवग्रह-स्तम्भनकपार्श्वदेवस्तवः

- सं. अमृत पटेल

नवग्रह-स्तम्भनकपार्श्वदेवस्तव अहीं प्रस्तुत लघुस्तोत्र छे. आ भक्ति कृतिमां विविध छन्दोबद्ध १२ पद्यो छे. तेमां अज्ञात भक्त कविओ एक एक विशेषणोना बे बे अर्थो द्वारा स्तम्भनपार्श्वनाथ तथा तत्संगत सूर्य आदि नवग्रहोनी पण स्तुति करी छे. भाषानी प्रासादिकता, भावाभिव्यक्ति अने शैलीने लक्षमां लेता प्रस्तुत स्तुति १३मा शतकनी रचना होवानुं अनुमान थाय छे.

लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अमदावादना हस्तप्रतसंग्रहमां - जम्बूकविकृत 'जिनशतक' काव्यनी प्रतनुं ७०मुं फुटकर पत्र छे. तेमां प्रायः ७५ अक्षरनी अन्तिम आठ पंक्तिओमां प्रस्तुत स्तोत्र झीणा पण सुन्दर/सुवाच्य अक्षरोथी लखायेलुं छे. पञ्चपाठ अने मध्यफुल्लिक-मण्डित प्रस्तुत प्रत प्रायः १६मा शतकमां लखाई हशे.

प्रस्तुत सम्पादनमां अन्य प्रतनी सहाय प्राप्त थई नथी. आथी मुख्य मुख्य क्षतिओनी विगतवार नोंध आपवी इष्ट लागे छे.

(१) बीजा पद्यमां 'गोभिर्जनानामपि विस्तृतप्रमोदं' पद हतुं तेमां इन्द्रवज्रा वृत्तनुं लक्षण घटतुं न हतुं. आथी 'गोभिर्जनानां विसृतप्रमोदं' सुधारीने छन्दोभङ्ग निवार्यो छे.

(२) तृतीय पद्यमां उपजाति वृत्त छे. प्रथम पादमां - 'डष्टम्यान्वितो न जननोत्सवेन' पंक्ति छे. तेमां छन्दोलक्षण प्रमाणे पांचमो स्वर लघु होवाथी छन्दोभङ्ग थाय छे तथा 'अष्टमीथी युक्त, अने जन्मोत्सवथी युक्त नहीं' एम अर्थ पण संगत नथी. 'एटले'-ष्टम्यां वितेने जननोत्सवेन' आवी पदशुद्धि करी छे जेथी छन्द अने अर्थ बे संगत थया छे.

(३) चतुर्थ पद्य पण उपजातिवृत्तमां छे. प्रथम पाद 'दृष्ट्या प्रयात्यतुलं फलं यः' मां एक असर खूटे छे. अने 'दृष्टिथी अतुल फलने पामो आ अर्थ पण सन्दर्भ जोता संगत नथी. आथी 'दृष्ट्या प्रयच्छत्वतुलं फलं यः' आवुं पदसंशोधन कर्युं छे. जेथी 'दृष्टिथी अतुलफलने आपो.' एवो अर्थ संगत थाय

छे. अने छन्दनुं बंधारण जळवाई रहे छे.

(४) १२मा पद्यमां वंशस्थ वृत्त छे. प्रथम पादमां 'इति स्तुतः स्तम्भन सपुरस्थः' - मां १३ वर्णो छे. त्यां 'सत्पुरस्थितः' संशोधन कर्युं छे. जेथी छन्दोभङ्ग तो दूर थयो ज, साथोसाथ बीजा पादमां 'परामितः' पद साथे अन्त्यानुप्रास पण जळवाई जशे. आम आ स्तोत्रमां चार महत्त्वनां संशोधनो छे.

(५) श्लेष अलङ्कारनां बळथी उपमेयनां विशेषणो उपमाननां विशेषण तरीके पण घटावाय छे. जेथी काव्यमां चमत्कृति सर्जाय छे. अहीं पण पार्श्वनाथ भगवाननां विशेषणोने सूर्य वगेरे दरेक ग्रहोनां विशेषण तरीके पण घटावायां छे. श्लेषनी करामतथी उभयत्र अर्थसम्बन्ध धरावतां विशेषणोना बे बे अर्थो समजावतुं संस्कृतमां निबद्ध टिप्पनक मूळ कृतिनी साथे लखायेल छे. जे टांचण रूपे छे एटले खूब ज अस्पष्ट अने संक्षिप्त छे. तो अमुक अर्थो घटावाया नथी. आथी में तेमां सुधारा-वधारा कर्या छे. त्यार बाद भावानुवाद स्तोत्रमां बे अर्थो छे. तेथी 'गीवार्णगिरानी गरिमाने गूर्जरा गिरा'मां माणी शकाय' ए हेतुथी आप्या छे.

(६) पार्श्वः श्रियेऽस्तु भास्वान्'थी शरु थतुं, अन्य एक 'नवग्रहस्तवगर्भ पार्श्वस्तव' (१० पद्य) छे. तेना कर्ता सोमसुन्दरसूरि शिष्य रत्नशेखरसूरि छे. तेमां पण अज्ञातकर्तृतक अवचूरि द्वारा श्लेषथी नवग्रह तथा पार्श्वनाथनी स्तुति करवामां आवी छे– ते (सं. मुनि श्री चतुर विजयजी.-सन् १९२८ निर्णयसागर प्रेस)- जैन स्तोत्र समुच्चय भा. २, पृ. ७१-७२).

नवग्रह-स्तम्भनकपार्श्वदेवस्तवः

जीयाज्जगच्चक्षुरपास्तदोषः छायान्वितो धामनिधिः सभद्रः ।
नालीकबन्धुर्जडिमापहारी श्रीस्तम्भनस्थः प्रभुपार्श्वनाथः ॥१॥

टि :- अपास्ताः दूरीकृताः मोहादयोऽष्टादश दोषाः येन सः, नष्टदशाधिकाष्ट दोषो जिनः । अपास्ता दूरीकृता दोषा रात्रिर्येन सः निशानाशकृत् प्रभाकरः रविः । छाया धर्मोपदेशसदनस्य समवसरणस्य शोभा- ''लक्ष्मीच्छाया शोभायां'' (है. ना. १५१२), तया अन्वितः समवसरणे शोभायमानः तीर्थङ्करः । सूर्योऽपि

छायाभिधया भार्यया सहितः वर्त्तते 'छाया आदित्यपत्नी (हे.ना. १२० स्वो. वृत्ति) । धाम प्रतापः किरणानि वा, पार्श्वनाथः प्रतापस्य प्रभावस्य निधिः - महिमामण्डितः इति, सूर्यस्तु धाम्नां किरणानां निधिः । भद्रं कल्याणं भद्रा सूर्यपुत्रिका वा, भद्रेण सहितः पार्श्वनाथः, सूर्यस्तु भद्रया सहितः सभद्रः । अलीकस्य बन्धुः अलीकबन्धुः, न अलीकबन्धुः इति नाऽलीकबन्धुः - पार्श्वनाथः सत्यपक्षपातव्रतः आप्तः वीतरागत्वात् । सूर्यस्तु नालीकस्य कमलस्य बन्धुरिव इति कमलमित्रम् । जडिमा अज्ञानं शैत्यं वा, पार्श्वनाथः अज्ञानापहारी, सूर्योऽपि शैत्यविनाशकः । एवं द्वौ - (१) जगते ज्ञानदातृत्वात् पार्श्वनाथः चक्षुरिव, तथा जगतः पदार्थसार्थदर्शकत्वात् जगन्नेत्रः सूर्यः - एवं द्वौ अपि पार्श्वनाथः सूर्यश्च जीयात् ॥१॥

गोभिर्जनानां विसृतप्रमोदं सम्पादयन् भाऽऽश्रयतया(?ता) प्रतीतः ।
आनन्दकृत् कौशिकमानसानां पार्श्वस्तमस्तस्यतु वः कलावान् ॥२॥

टि :- गोभिः पञ्चज्ञानैः पार्श्वनाथः, चन्द्रमास्तु गोभिः किरणगणैः जनानां प्रमोदं सम्पादयति, पार्श्वनाथः चिदानन्दसम्पादयिता, चन्द्रमास्तु ज्योत्स्नया जनाह्लादकारी । भं ज्ञानं, भान्ति सर्वे पदार्था येन तद् भं, तस्य ज्ञानस्य, आश्रयता शरण्यत्वं, आश्रयः पार्श्वनाथः ज्ञानाश्रयतया प्रतीतः, चन्द्रस्तु भानि नक्षत्राणि, तेषामाश्रय इति प्रतीतः, चन्द्रस्य नक्षत्रगामित्वेन प्रसिद्धेः । कौशिकः इन्द्र उलूकश्च, पार्श्वप्रभुः कौशिकानां सौधर्मादिचतुःषष्टिसुरेन्द्राणां मानसानां मनसां आनन्दकृत्, चन्द्रस्तु रात्रौ उदयति, रात्रौ च घूकाः पश्यन्ति; अतो निशाकर उलूकानामानन्ददाता । कलावान् कलाधरश्चन्द्रमाः षोडशकलाभिः सहितः, पार्श्वनाथस्तु कलाभिः ज्ञानकलाभिः, सकलाभिर्वा कलाभिः सहितः वर्तते, अतः पार्श्वनाथोऽपि कलावान् । एवं तादृशौ पार्श्वनाथः निशानाथश्च तमः अज्ञानं अन्धकारं च । तस्यतु नाशयतु वो युष्माकमिति ॥२॥

यो रागभृत् सिद्धितया प्रसिद्धोऽष्टम्यां वितेने जननोत्सवेन ।
भुवः प्रमोदं परमं स पार्श्वः, सन्मङ्गलो मङ्गलमातनोतु ॥३॥

टि :- पार्श्वनाथो भगवान् श्रावणशुक्लाष्टम्यां तिथौ निर्वाणमाप्तः - अत उच्यते 'अष्टम्यां सिद्धितया प्रसिद्धः' सिद्धिप्राप्तः इत्यर्थः, अष्टम्यां तिथौ मङ्गलवासरः सिद्धितया सिद्धियोग इति प्रसिद्धिः । 'भौमे... जया षष्ठी च

सिद्धये'' इति **आरम्भसिद्धि**ग्रन्थे प्रोक्तत्वात्, मङ्गलग्रहस्तु सिद्धितया प्रसिद्धोऽर्थात् सिद्धियोगकारी । पार्श्वनाथः जननोत्सवेन निजजन्ममहोत्सवेन भुवः पृथिव्याः, लोकानामिति यावत्, प्रमोदं परमं महान्तं वा महानन्दं वितेने, मङ्गलस्तु ग्रहो भूमेः पुत्रोऽतः निजजनन्याः पृथिव्याः परमप्रमोददायक इति । सन्ति विद्यमानानि अष्टौ स्वस्तिकादीनि मङ्गलानि, आत्मोपकारीणि मङ्गलानि धर्मकृत्यानि, तेषामुपदेशकत्वात्, यस्य सः सन्मङ्गलः मङ्गलमूर्तिः मूर्तिमान् वा मङ्गलं पार्श्वनाथः मङ्गलं करोतु । मङ्गलस्तु सद्भिः शुभैः ग्रहैः सहितो यदा स्यात् तदा मङ्गलकृद् भवति, अथवा शुभः सन् मङ्गलः मङ्गलं करोति, अतः 'सन्मङ्गलः मङ्गल-मातनोतु' इति ।

द्वावपि पार्श्वनाथ-मङ्गलग्रहौ एवं सिद्धियोगवन्तौ, भूप्रमोदजनकौ मङ्गलकारिणौ स्तः, किन्तु एको विरोधस्तयोः - यथा पार्श्वनाथो भगवान् 'अरागभृत्', मङ्गलस्तु 'रागभृत्' इति । तदपहारस्तु इत्थं पार्श्वनाथो विगतराग इति 'अरागभृत्, मङ्गलस्तु रागभृत् रक्तरङ्गभृत् रक्तवर्णः, अतः 'यो रागभृत्' इति पदे विरोधाभासः ॥३॥

असद्ग्रहाऽऽसङ्गविमुक्तमूर्ति-र्दृष्ट्या प्रयच्छत्यतुलं फलं यः ।
कलानिधिः प्रीतिकरश्च सौम्यो ददातु पार्श्वः सबुधः सुबुद्धिम् ॥४॥

टि :- पार्श्वनाथो भगवान्, असद्ग्रहासङ्गैः कदाग्रहग्रहिलतया, कदाग्रहैः आसङ्गेन आसक्त्या वा विमुक्तदेहः, बुधस्तु ग्रहः असद्ग्रहौ यौ राहुकेतू, ताभ्यां विमुक्तः अदृष्टो वा, स्वदृष्ट्या वा अतुलं फलं यच्छति, पार्श्वनाथो भगवान् स्वदृष्ट्या सकरुणया, स्याद्वादचक्षुषा वा अतुलं निर्वाणरूपं फलं यच्छति । पार्श्वनाथः परमात्मा सौम्यः प्रशान्तः वर्त्तते प्रशमपीयूषपूर्णः इति, बुधस्तु 'सोमो पितापि देवता अस्य ''कसोमाट् ट्यण् (है.श. ६/२/१०७) अभि० चिन्ता. स्वो. वृत्ति श्लो. ११७) इति व्युत्पत्तेः सौम्यः सोमसुतः, चन्द्रपुत्र इति प्रसिद्धः । पार्श्वनाथः ज्ञानकलानां निधिः, सर्वेषां च प्रीतिकरः, सबुधः बुधैर्ज्ञानिभिः सहितो वर्तते, तथा सः बुधः ग्रहः अपि 'कलानिधिप्रीतिकरः' इति पदे वाच्ये कलानिधिभूतानां कलावतामित्यर्थः प्रीतिकरः इति षष्ठ्या विभक्त्या समासः, अत्र सविसर्गं 'कलानिधि' पदं, किन्तु 'श्लेषादिषु चित्रकाव्येषु विसर्गादीनि चित्रभङ्गाय न भवन्ति, यत उक्तं — **वाग्भटालङ्कारे** -

'यमक-श्लेषचित्रेषु ब-वयोर्ड-लयोर्न भित् ।
'नानुस्वारविसर्गौ तु चित्रभङ्गाय सम्मतौ ॥१/२०॥
तादृशो पार्श्वदेवो बुधश्च ग्रहः सद्बुद्धिं ददातु ॥४॥

यस्य प्रभावात् शुभराशिभाजः, पुण्यात्मनां द्राग् भवतीष्टसिद्धिः ।
पार्श्वः सुपर्वानतपादपद्मः स गीःपतिर्यच्छतु गीःप्रसादम् ॥५॥

टि :- शुभानां कल्याणानां, राशिः समूहः, तं भजति इति, पार्श्वनाथः सकलकल्याणयुक्तः, गुरुस्तु ग्रहः शुभां राशिं मेषादिकां भजति इति शुभराशिभाज्, तस्य शुभराशिभाजः प्रभावात् । अथवा पार्श्वनाथस्य प्रभावः शुभराशिभाज्, तस्मात् पुण्यशालिप्रभावात्, पुण्यात्मनां इष्टसिद्धिः सहसा भवति, गुरावपि शुभे सति पुण्यात्मनां इष्टसिद्धिः द्राग् भवति । पार्श्वनाथो भगवान् गीःपतिः वाणीस्वामी प्रवचनार्थस्य भाषकत्वात् । गुरुस्तु गीःपतिः एवोच्यते, यतो 'गीःपतिः' इति तस्य नामान्तरम् । सुपर्वभिः देवैः आ समन्तात् नते पादपद्मे यस्य सः सुर-सङ्घप्रणतचरणः, द्वावपि पार्श्वनाथ-गुरुग्रहौ देवैः प्रणतौ, पार्श्वनाथस्तु तीर्थकरत्वेन, गुरुश्चापि देवानां गुरुत्वात्, तादृशौ पार्श्वदेवः देवगुरुश्च, गिरां प्रसादं प्रयच्छतु, यत उपासितौ हि तौ वाणीप्रसादं प्रवरां प्रवचनप्रसत्तिं वा प्रयच्छतः ॥५॥

पार्श्वः प्रसर्पन्नयनाभिराम-द्युतिर्दितेः सूनुभिरर्चितांह्रिः ।
काव्यः सदानीरजसुप्रबुद्धः पदे विदध्यात् व्यसनव्ययं नः ॥६॥

टि :- पार्श्वनाथस्य प्रभोः नयनाभ्यां सकलजन्तुजीवातुभूतमैत्रीमयीत्वात् अभिरामा प्रमोदकारिणी कान्तिः प्रसर्पति, शुक्राच्च ग्रहात् नयनयोः अभिरामा द्युतिः प्रसर्पति । यतः शुक्रः ग्रहेषु सर्वकान्तिमत्तरः, अतः तौ द्वौ अपि कान्त्या मनोहारिणौ स्तः । पार्श्वनाथस्तु भगवान् दितेः सूनुभिः नागैः परिपूजितः, शुक्रस्तु दैत्याचार्यः, अतो दैत्यैः दितिसुतैः पूजितः । काव्यः 'कबृङ्वर्णने' इति (हेमधातुपाठस्य ७६७ तमात्) धातोः घ्यणि प्रत्यये सति-काव्यः स्तोतव्यः । भगवान् पार्श्वनाथः 'पुरुषादानीयः' इति प्रसिद्धः, शुक्रस्तु काव्यः इत्यपरं नाम दधाति, 'शुक्रो मघाभवः काव्यः इति अभिधान चिन्तामणि-देवकाण्डे ११९ तम पद्योक्तेः । निर्गतानि रजांसि कर्मरूपाणि यस्मात् सः 'नीरजः', नीरजश्चासौ प्रबुद्धश्चेति । पार्श्वनाथः परमेश्वरो जिनः कर्ममलरहितः, प्रबुद्धः केवलज्ञानवान् इति । शुक्रस्तु नीरे जायते नीरजं कमलं तद्वत् प्रबुद्धः विकस्वरः । पार्श्वनाथो

भगवान् व्यसनव्ययं दुःखापगमं करोति एवं, अतो विदध्यात् सदा करोतु इति प्रार्थ्यते । किन्तु उदित एव शुक्रः व्यसनव्ययं करोति ॥६॥

यो मन्द उद्दामखगोपहार-सत्कः सदा विष्टपसौख्यकारी ।
नामी न संस्थानरतः सुतेजाः, वामाङ्गजः शर्म करोत्यसौ वः ॥७॥

टि :- 'योऽमन्दः' यः पार्श्वजिनः अमन्दः सप्रभाव इत्यर्थः, शनिस्तु ग्रहः मन्द एव उच्यते, यतः सर्वासु राशिषु शनिः शनैः शनैः चरति । उद्दामैः श्रेष्ठैः खगैर्विद्याधरैर्देवैश्च कृतो य उपहारः पूजा, तस्मै सत्कः योग्य इति, पार्श्वनाथो भगवान् पूर्वं विद्याधराऽमराऽसुरै र्निज-निजस्थानके पूजितः, शनिस्तु ग्रहः उद्दामखगानां उग्रग्रहाणां उपहारेण । सन्ति विद्यमानानि कानि सुखानि येन सः, शनिः सदा उग्रग्रहेषु सत्सु सुखकर्ता भवति, पार्श्वनाथस्तु भगवान् सर्वदैव सुखकारी अस्ति । पार्श्वनाथो भगवान् 'न आमी' न रोगी-नीरोगी भावारोग्यवान्, न च संस्थानं समचतुरस्रादिका देहाकृतिः, तस्मिन् रतः आसक्तः । न देहाध्यासवान् किन्तु आत्मनि एव निरतः । शनिस्तु मीनानां मत्स्यानां, संस्थानं सं सम्यक् स्थानं यत्र मीनसंस्थानः समुद्रः, तस्मिन् रतः इति मीनसंस्थानरतः । न मीनसंस्थानरतः इति अमीनसंस्थानरतः, न अमीनसंस्थानरतः अर्थात् समुद्रे रतः एव । यतः शनिः समुद्रपौत्रः अस्ति । 'सुतेजाः' शुभेन अतिशयेन वा तेजसा युक्तः, **वामानाम्न्याश्च** मातुः अङ्गजः सूनुः पार्श्वनाथः वः शर्म करोतु, शनिस्तु सुतेजाः प्रभावेन युक्तः सन् उदित एव वामाङ्गजानां कलत्र-पुत्राणां शर्म इति वामाङ्गजशर्म करोतु ॥७॥

दृश्याऽमृतश्लिष्टगलप्रफुल्ल-नीलोत्पलाभाननमात्रदेहम् ।
सच्चक्रसङ्गं समयाम्बुराशिं पार्श्वं समस्तापदमानमामि ॥८॥

टि :- यदा मेघमालिना महामेघस्योपसर्गः कृतः, तदा पार्श्वप्रभोर्देहे मुखं एव अमृतोपरि जलोपरि दृश्यं अभवत्, राहुस्तु अमृतेन पीयूषेण श्लिष्टं गले प्रफुल्लं नीलकमलवन्मुखं एव देहमात्रं यस्य सः - अमृतपूर्णगल्लयुक्तं मुखं एव राहोः देहो विद्यते । पार्श्वनाथः सच्चक्रेण सज्जनसङ्घेन संयुक्तः अस्ति । अपरं च 'सिद्धान्त एवाम्बु, तस्य राशिरिव आगमसागरः, सम् सम्यक् अस्ताः आपदः येन स समस्तापद् विपन्नाशकः, तं पार्श्वं प्रभुं प्रणमामि । राहुः महोदधिमन्थनावाप्तपीयूषपूर्णगण्डः सन् पलायितः । तदा विष्णोश्चक्रेण तस्य

कन्धरा छिन्ना । अतो राहुरपि सतः सुदर्शननाम्नश्चक्रस्य सङ्गवान् अस्ति । अपरञ्च समये योग्यकालेऽम्बुनो जलस्य राशिर्मीनादिर्यस्य सः समयाम्बुराशिः । यदा राहुर्जलराशिसम्पृक्तः स्यात् तदा राहुणा आपदो दूरं पलायन्ते, अतो जलराशिस्थो राहुर्नमस्यः ॥८॥

गु(ग)रुत्मतः श्रीपरिभाविकान्ति-च्छटासृतव्योमदिगन्तरालः ।
महाप्रभावो नवमो ग्रहाणां स केतुरव्याद् भवतो जिनो माम् ॥९॥

टि :- गरुत्मतः गरुडस्य स्ववाहनीभूतस्य श्रिया परिभवति युक्तो भवति इत्येतावता गरुडवाहनो विष्णुः, तद्वत् कान्तिच्छटा, तया सृतं व्योम्नो दिशां चान्तरालं येन सः- पार्श्वप्रभुर्नीलकान्तिः, केतुरपि नीलवर्णः । जिनेश्वराणां पादाधः ग्रहाणां मूर्तय उत्कीर्णाः विद्यन्ते, अतः पार्श्वनाथः प्रभुरपि ग्रहाणां केतुभिर्युक्तः, ग्रहचिह्नैः सहित इति सकेतुः । ''णुक् स्तुतौ'' इति (हैमधातु-पाठस्थ १०८१तम) धातोः 'भावाऽकर्त्रोः अलि प्रत्यये - नवनं नवः स्तुतिः, भजनं सेवा, यावत्, नवेन मा लक्ष्मीः श्रीः येन स 'नवमः' इति, पार्श्वप्रभुः स्तुतिकरणेन स्तावकं लक्ष्मीं प्रददाति । पार्श्वप्रभुः ग्रहाणां च नवमः स केतुर्ग्रहः, भवतः भवात् भवदुःखात् च अव्याद् रक्षतु ॥९॥

इति ग्रहाभास्यपि चित्रमग्रहः पद्मावतीमुख्यमहासुरार्चितः ।
नागेन्द्रसान्निध्यभृदापदां भरं समुच्छिनत्त्वाशु फणीश्वरध्वजः ॥१०॥

टि :- ग्रहैः आभासि ग्रहाणां कारणेन ग्रहेषु वा आभासमानः, तथाऽपि अग्रहः ग्रहैर्विरहितः इति विरोधः, तस्यापहारः तु – 'अग्रहः' [ग्रहः] दूराग्रहः बन्धनं च, ततो मुक्त इति, पार्श्वप्रभुः ग्रहैः समविशेषणैः स्तुतः, सोऽनाग्रहोपि अस्ति ॥१०॥

स्तवं समाहात्म्यममुं महामणिं दधाति यः कण्ठतटे सदादरात् ।
दुष्टा ग्रहास्तं परिपीडयन्ति न, क्षतौजसः पार्श्वसुनामतेजसा ॥११॥

इति स्तुतः स्तम्भनसत्पुरस्थितः सद्दृष्टि-दृष्ट्युत्सवतां परामितः ।
पाश्वोंऽद्य शीतद्युतिवन्निजौजसा, मनश्चकोरप्रमदं तनोतु नः ॥१२॥

टि : अन्त्ये [इमे]द्वे पद्ये सुगमे ॥११-१२॥

भावानुवाद :

१. जगतनां 'ज्ञानचक्षु'स्वरूप, मोह आदि १८ दोषरहित, समवसरणनी शोभाथी युक्त, प्रभावसम्पन्न, कल्याणकारी, सत्यना पक्षपाती, जडता-अज्ञानने दूर करनारा सभद्र(=रवि)श्रीस्तम्भनपार्श्वनाथ प्रभु जय पामो.

२. ज्ञानकिरणो द्वारा प्रजाने आह्लाद-प्रमोद आपनार, ज्ञानना आश्रय, इन्द्रोनां पण चित्तने आनन्द आपनार, सकलज्ञानकलाविराजमान श्री पार्श्वजिन-चन्द्र अज्ञानतिमिरने दूर करो.

३. श्रावणसुद आठमना दिवसे सिद्धिपदने वरेला, नीरोगी, पोताना जन्मोत्सव द्वारा (पृथ्वी परना) प्राणीओने परम प्रमोद आपनारा, मङ्गलमूर्ति (मूर्तिमान्-साक्षात् मङ्गल) श्री पार्श्वप्रभु मङ्गलकारी थाओ.

४. कदाग्रह रहित जे भगवान दर्शनमात्रथी अतुल फल आपे छे. तथा कलाना भण्डार, प्रीतिकारी, सौम्यदर्शन अने बुधजनथी परिवरेला श्रीपार्श्वप्रभु तमने सद्बुद्धि आपो.

५. पुण्यप्रतापी अेवा जेओना प्रभावथी पुण्यात्माओने पोतानुं इष्ट सत्वरे सिद्ध थाय छे, देव-गण जेना चरणे नमे छे. एवा गी:पति (वाणीना स्वामी) श्री पार्श्वप्रभु वाणीनी प्रासादिकता आपो.

६. जेमनां नेत्रो उज्ज्वल कान्तिमान् छे, जेओ नागकुमार वगेरे (असुरो)थी पूजाया छे, काव्य (शुक्र)स्तुति योग्य, कर्मरज रहित, प्रबुद्ध अेवा श्री पार्श्वप्रभु तमारां व्यसनो-दु:खोने दूर करो.

७. उग्र ग्रहोनी साथे आवेल मन्द(शनि)समान छतां अमन्द (त्वरित) सुखदायक, उद्दाम=प्रगटप्रभावी, विद्याधरो अने देवताओ अे पोतानां भवनो विमानो निवासोमां लई जई जेमनी पूजा करी छे, विश्वसुखकारी दिव्यतेजोमय श्रीवामानन्दन पार्श्वप्रभु तमने सुख आपो.

८. मेघमालीअे करेला जल उपसर्ग समये जेमनुं शरीर जलमो आकण्ठ डूबी गयुं हतुं. तेथी अमृतपान करतुं होय तेवुं मात्र मुख ज देखातुं हतुं - नीलकमल समान शोभतुं हतुं, तथा सत्-सत्यरूप चक्र के सज्जन

समूहथी युक्त सिद्धान्त सागर, आपद् निवारण करनारा श्री पार्श्वप्रभुने हुं नमन करुं छुं.

९. विष्णु समान कान्ति(नीलकान्ति)वाळा, महान प्रभावशाली, ग्रहोनां चिह्नोथी युक्त श्री पार्श्वप्रभु संसारथी मारुं रक्षण करो.

१०. आम बधा सूर्य वगेरे समग्र ग्रहो, समान विशेषणोथी अथवा प्रतिमामां नीचला भागमां कोतरेला आ बधा 'ग्रहो'थी शोभता छतां 'अग्रह' कदाग्रह रहित, पद्मावती वगेरे देवगणोथी पूजित, तथा नागेन्द्र जेमनुं सान्निध्य करे छे- एवा फणिपति सहित (सेवित) श्री पार्श्वप्रभु तमारां विघ्नोनो विनाश करो.

११. महाप्रभाववंत महामणिसमान आ स्तोत्रने जे भाविक आदरपूर्वक कण्ठस्थ करे छे. तेने पार्श्वप्रभुनां नाम-तेजथी प्रभावहीन ग्रहो पीडता नथी.

१२. शुभदृष्टिवंत मानवोनी दृष्टि माटे उत्सवरूप बनेला स्तम्भन पार्श्वनाथ प्रभुनी स्तुति में करी. ते पार्श्वप्रभु, चन्द्रमानी समान निज ओजस्-प्रकाश-चांदनी द्वारा आपना मन-चकोरने प्रसन्न करो.

प्रस्तुत स्तोत्रमां अवचूरिने आधारे नवग्रह विषयक अर्थ –

सूर्य : जगन्नेत्र **:** सूर्यप्रकाशथी जगतने जोइ शकाय छे, रात्रिनो नाश थाय छे, सूर्यने छाया नामे पत्नी अने भद्रा नामे पुत्री छे. सूर्यने कारणे ठंडी दूर थाय छे. कमल (वगेरे) खीले छे. अहीं 'कमलः नाभिकमल समजीओ तो सूर्य आत्मानो कारक छे ए ज्योतिष सिद्धान्त सारी रीते समजी शकाय छे.

चन्द्र : चांदनी ने कारणे लोकप्रिय, रात्रे उगे छे माटे (कौशिक=) घुवडो पण खुश थाय छे. कलाओ ओछी-वत्ती थती होय छे. कलाधर चन्द्र अन्धकारने दूर करे छे. अन्धकार = जो मनमालिन्य, तो चन्द्र मननो कारक' समजी शकाय छे.

मङ्गळ : मङ्गळनो रंग लाल छे. आठमे मङ्गळवार होय तो 'सिद्धियोग बने छे. मङ्गळ भौम = भूमिपुत्र छे. जो शुभ होय तो मङ्गलकारी बने छे.

बुध : जो क्रूरग्रहोथी मुक्त होय तो बुधनी दृष्टि शुभ छे. बुध सौम्यग्रह छे, बुद्धिनो कारक छे.

गुरु : गुरु जो शुभराशिमां होय तो शीघ्र फळ आपे छे. गुरु वाणीनो कारक छे.

शुक्र : असुरगुरु शुक्राचार्य तेजस्वी ग्रह छे. तेनुं बीजु नाम 'काव्य' छे.

शनि : मन्द गति करे छे (=शनैश्चर) क्रूरग्रहोनो मित्र गणाय छे. समुद्र साथे तेने सम्बन्ध छे.

राहु : राहु ग्रह मात्र 'शीर्ष'रूप छे. योग्य समये मीन वगेरे जलराशिओमां शान्तिनो कारक बने छे.

केतु : नवमो ग्रह छे. श्यामवर्णनो छे.

C/o, २०३-बी, एकता एवेन्यू,
बेरेज रोड, वासणा
अमदावाद-७

श्रीकनककुशलगणि-रचिता

श्री रत्नाकरपञ्चविंशतिका-वृत्तिः ।।

- साध्वी समयप्रज्ञाश्री

'रत्नाकरपचीशी'ना नामे जैन संघमां प्रख्यात तथा सौने मान्य एवी संस्कृत रचना आचार्य श्रीरत्नाकरसूरि महाराजे बनावी छे तेनी कथा सर्वविदित छे. तेना गुजराती सहित विविध भाषाओमां गद्य-पद्यानुवादो उपलब्ध छे. तेना पर सम्भवतः १७मा सैकामां थयेल श्रीकनककुशल गणिवर्यनी रचेली टीका अप्रगट होवाथी अहीं प्रकाशित करेल छे. आनी एक प्रत मळी तेना आधारे आवड्युं तेवुं सम्पादन कर्युं छे. भूलो विद्वानो सुधारशे तेवी खातरी छे. आ टीकामां विशेषता ए छे के टीकाना छेडे गुर्जर भाषामां टबार्थ पण कर्ताए लख्यो छे. आ प्रत सं. १८१०मां पालणपुरमां लखाई छे तेवुं तेनी पुष्पिका परथी नक्की थाय छे.

प्रणम्य श्रीमदर्हन्त-मिष्टसिद्धिविधायकं ।
श्रेयः श्रियां मङ्गलस्य, वृत्तिं कुर्वे शिशूचिताम् ॥१॥

श्रेयः श्रियां मङ्गलकेलिसद्म ! नरेन्द्रदेवेन्द्रनताङ्घ्रिपद्म ! ।
सर्वज्ञ ! सर्वातिशयप्रधान ! चिरं जय ज्ञानकलानिधान ! ॥१॥

॥ श्रेय० ॥ व्याख्या ॥ हे ! 'नरेन्द्रदेवेन्द्रनताङ्घ्रिपद्म' ! नरेन्द्राश्चक्रवर्त्या-दयो देवेन्द्राद्यमराद्यास्ते नते वन्दिते अङ्घ्रिपद्मे चरणकमले यस्य स, तस्य सम्बोधनम् । नराणामिन्द्रा नरेन्द्रास्तत्पुरुषः । देवानामिन्द्रा देवेन्द्रास्तत्पुरुषः । नरेन्द्राश्च देवेन्द्राश्च नरेन्द्रदेवेन्द्रा द्वन्द्वः । ऽङ्घ्री एव पद्मे अङ्घ्रिपमे कर्मधारयः । नरेन्द्र-देवेन्द्रैर्नते नरेन्द्रदेवेन्द्रनते, नरेन्द्रदेवेन्द्रनते अङ्घ्रीपद्मे यस्य स नरेन्द्रदेवेन्द्र-नताङ्घ्रिपद्मो बहुव्रीहिः । तस्य सम्बोधनं हे ! 'नरेन्द्र० !' हे ! 'सर्वज्ञ !' सर्वं जानातीति 'सर्वज्ञः' तस्य सम्बोधनं हे 'सर्वज्ञ !'

हे ! 'सर्वातिशयप्रधान !' सर्वे समस्ता अतिशया नीरोगदेहाद्यास्तैः प्रधान उत्कृष्टस्तस्य सम्बोधनं, सर्वे च अतिशयाश्च 'सर्वातिशयाः' कर्मधारयः । सर्वातिशयैः 'प्रधानः' 'सर्वातिशयप्रधान' स्तपुरुषस्तस्य सम्बोधनम् ।

हे ! 'ज्ञानकलानिधान !' 'ज्ञानं' केवलज्ञानं । 'कला' लिखनादिकाद्याः सप्ततिसंख्याकास्तेषां 'निधानं' निधिस्तस्य सम्बोधनम् । ज्ञानं च कलाश्च ज्ञानकला द्वन्द्वः । ज्ञानकलानां निधानं 'ज्ञानकलानिधानं' तत्पुरुषस्तस्य सम्बोधनम् । 'चिरं' चिरकालं 'जय' ।

सर्वोत्कर्षेण वर्त्तस्वेति क्रियासण्टङ्कस्त्वमिति शेषः ! त्वं किम्भूतो ? 'मङ्गलकेलिसद्म !' मङ्गलानि कल्याणानि । तेषां 'केलिसद्म' क्रीडागृहं । केलेः सद्म केलिसद्म तत्पुरुषः । मङ्गलानां केलिसद्म 'मङ्गलकेलिसद्म' तत्पुरुषः । कासां ? 'श्रेयःश्रियां' । श्रेयो मोक्षस्तस्य । श्रियो लक्ष्म्यस्तासां, श्रेयसः श्रियः श्रेयःश्रियस्तत्पुरुषस्तासां मुक्तिलक्ष्मीकल्याणक्रीडनमन्दिरमित्यर्थः इति प्रथमवृत्तार्थः ॥१॥

टबार्थ : श्री गुरुभ्यो नमः ॥ - श्रीसद्गुरुभ्यो नमः ।

श्रेयःश्रियां - कल्याणलक्ष्मी, मङ्गलकेलिसद्म - मङ्गलीक क्रीडाघर, नरेन्द्र-देवेन्द्र - राजा-इन्द्र, नतांङ्घ्रिपद्म - प्रणमित पदकमल, सर्वज्ञ - वीतराग, सर्वातिशयप्रधान - चोत्रीस अतिशयप्रधान, चिरं जय ज्ञानकलानिधान - चिरकाल जयवंता वर्त्तो शास्त्र बहुत्तरि कलाथानक.

जगत्त्रयाधार ! कृपावतार ! दुर्वारसंसारविकारवैद्य ।
श्रीवीतराग ! त्वयि मुग्ध भावाद्विज्ञ ! प्रभो ! विज्ञपयामि किञ्चित् ॥२॥

॥ जग० ॥ व्याख्या ॥ हे ! 'जगत्रआ(या)धार !' जगतां भुवनानां त्रयं स्वर्ग-मर्त्त्य-पाताल लक्षणं, तस्याधारः स्थानं; रक्षकत्वात्तस्य सम्बोधनम् । जगतां त्रयं 'जगत्त्रयं' तत्पुरुषः । जगत्त्रयस्याधारो 'जगत्त्रयाधार'स्तत्पुरुषस्तस्य सम्बोधनम् ।

हे 'कृपावतार !' कृपायां दयायामवतारः प्रवेशो यस्य सः 'कृपावतारः' । प्रवेशस्तूपदेशद्वारेण भवत्यथवा कृपाया अवतारो यस्मिन्निति बहुव्रीहिस्तस्य सम्बोधनम् । हे 'दुर्वारसंसारविकारवैद्य' ! दुर्वारो वारयितुमशक्यो यः संसारविकारो रोग-वियोग-जरा-मरणादिलक्षणो भयविकारस्तस्य चिकित्सा कारित्वाद्वैद्य इव वैद्यस्तस्य सम्बोधनम् । दुःखेन वार्यते इति 'दुर्वार'स्तत्पुरुषः । संसारस्य विकारः 'संसारविकार'स्तत्पुरुषः । दुर्वारश्चासौ संसारविकारश्च 'दुर्वारसंसारविकारः' कर्मधारयः । दुर्वारसंसारविकारस्य वैद्यो 'दुर्वारसंसारविकार-वैद्य'स्तत्पुरुषस्तस्य

सम्बोधनम् । हे 'श्रीवीतराग !' वीतो गतो रागो यस्मात् 'वीतरागो' बहुव्रीहिः । श्रिया युक्तो वीतरागः 'श्रीवीतराग'-स्तस्य सम्बोधनं तत्पुरुषः ।

हे विज्ञ !' विदग्ध । हे प्रभो ! हे नेतः ! किञ्चित्किमपि 'विज्ञपयामि' विज्ञप्तिं करोमि । कस्मिन् विषये ? 'त्वयि' भवति विषये । कस्मात् ? 'मुग्धभावात् ?' मुग्धो विशो(शे)षज्ञानविकलो जनस्तस्य भावो भवनं तस्मात् । मुग्धस्य भावो मुग्धभावस्तस्मादिति द्वितीयवृत्तार्थः ॥

टबार्थ : जगत्रयाधार - त्रिहुं जगत्रनै आधार, कृपावतार - दयावंत, दुर्वारसंसारविकारवैद्य - दुःखें करी वारी सकैं संसार तेहनउ वैद्य, श्रीवीतराग - एहवा श्री वीतराग, त्वयि - ताहरे, मुग्धभावात् - भोलपणथको, विज्ञ प्रभो विज्ञपयामि - डाहो ठाकुर वीनती करुं, किंचित् - कांइक ।

किं बाललीलाकलितो न बालः, पित्रोः पुरो जल्पति निर्विकल्पः ।
तथा यथार्थं कथयामि नाथ ! निजाशयं सानुशयस्तवाग्रे ॥३॥

॥ किं बा० ॥ व्याख्या ॥ किमिति वितर्के । 'बालं'(लः) स्तनन्धयः । 'पित्रोः' माता च पिता च पितरौ द्वन्द्वस्तयोः पित्रोः । 'पुरो'ग्रे 'न जल्पति' न ब्रूते । अपितु जल्पति बालः । किंलक्षणो बालः ? 'लीलाकलितो' बालस्य शिशोर्लीलायां शिशुक्रीडनादि का क्रीडना, तया कलितः सहितः । बालस्य लीला बाललीला तत्पुरुषः । बाललीलया कलितो बाललीलाकलितः स्त(त)त्पुरुषः । पुनः किंलक्षणो बालः ? 'निर्विकल्पो' निर्गतो विकल्पाद्रोषणाभाषणरूपादिति निर्विकल्पः तत्पुरुषः । हे 'नाथ !' हे प्रभो ! तथेति बालभाषणन्यायेन 'तव' भवतोग्रे' पुरस्तात् । 'निजाशयं' स्वाभिप्रायं । निजस्याशयो निजाशयस्तत्पुरुषस्तं । 'कथयामि' प्रकटीकरोमि अहमिति शेषः । कथं ? 'यथार्थं' अर्थमनतिक्रम्य यथार्थमव्ययीभावः । यथा प्रयोजनं यथा वाच्यं वा । अर्थो हेतौ प्रयोजने निवृत्तौ विषये वा ये प्रकारद्रव्यवस्तुष्वि**त्यनेकार्थे** । ऽहं किंलक्षणः ? 'सानुशयो' बहुपापोपार्जनात्सपश्चात्तापः । सहानुशयेन वर्त्तते यः स सानुशयो ति(हि)बहुव्रीति(हि)रिति तृतीयवृत्तार्थः ॥३॥

टबार्थ : किं बाललीलाकलितो- किसुं छोरूं क्रीडासहित, बालः - बालक, पित्रोः पुरो जल्पति - जनक आगल बोले, निर्विकल्पः - विचाररहित, तथा - तिम, यथार्थं - यथार्थ, कथयामि - कहुं, नाथ - ठाकुर, निजाशयं

सानुशयस्तवाग्रे - आंपणा चित्तनुं अभिप्राय तुझ आगलइं ।

दत्तं न दानं परिशीलितं तु, न शालि शीलं न तपोभितप्तम् ।
शुभो न भावोभ्यभवद् भवेऽस्मिन्, विभो ! मया भ्रान्तमहो मुधैव ॥४॥

॥ दत्तं० ॥ व्याख्या ॥ 'हे विभो !' हे स्वामिन् ! 'मया दानं न दत्तं' कृपणत्वेन पात्रे धनं न नियोजितम् । तथा तु पुनर्मया 'शीलं' ब्रह्मचर्यं न 'परिशीलितं' न पालितं । शीलम् किंविशिष्टं ? 'शालि' मनोज्ञं तथा मया 'तपो' बाह्याभ्यन्तररूपं द्वादशविधम् 'नाभितप्तं' न कृतं । तथा 'भावोपि नाऽभवत्' न जातो भावः । किंविशिष्टः ? 'शुभः' प्रशस्योऽतो 'अहो' इति खेदे; 'मुधैव' वृथैव मया 'भ्रान्त'मटितं; क्व भवे ? किंलक्षणेऽस्मिन् प्रत्यक्षे ? ॥ इति चतुर्थ वृत्तार्थः ॥

टबार्थ : दत्तं न दानं - दान दीधुं नहीं, परिशीलितं तु - न रूडो आचार, न शालि शीलं - न शालि शील, न तपोभितप्तं - न तप कीधूं, शुभो न भावोप्यभवद् - रूडो भाव न कीधो, भवेऽस्मिन् - इणे संसारे, विभो मया - प्रभु में, भ्रान्तं - भम्यो, अहो मुधैन(व)-फोकट संसार ।

दग्धोऽग्निना क्रोधमयेन दु(द)ष्टेन, दुष्टेन लोभाख्यमहोरगेण ।
ग्रस्तोभिमानाजगरेण माया,-जालेन बद्धोऽस्मि कथं भजे त्वाम् ॥५॥

॥ दग्धो० ॥ व्याख्या ॥ हे नाथ ! 'त्वा-(त्वां)' भवन्तं 'कथं भजे ?' सेवेऽहमिति शेषः । ऽहं किंलक्षणो ? 'दग्धो'-ऽभितप्तः । केनाग्निना वह्निना, अग्निना किंलक्षणेन ? 'क्रोधमयेन' क्रोधस्वरूपेण । क्रोधस्य विकारः क्रोधमयस्तेन क्रोधाग्निनेत्यर्थः । पुनरहं किंलक्षणो ? 'दष्टो' दत्तडङ्कः । केन ? 'लोभाख्यमहोरगेण' लोभाभिधमहासर्पेण । लोभ इति आख्या यस्य लोभाख्यो बहुव्रीहिः । उरसा गच्छतीति उरगस्तत्पुरुषः । महांश्चासावुरगश्च महोरगः कर्मधारयः । लोभाख्यश्चासौ महोरगश्च लोभाख्यमहोरगः कर्मधारयस्तेन लोभाख्यमहोरगेण । किंलक्षणेन ? 'दुष्टेन' निर्दयेन । पुनः ऽहं किंविशिष्टो?'ग्रस्तः' कवलीकृतः । केना'ऽभिमानाजगरेण' अभिमानो ऽहंकारः स एवाजगरो बृहत्तरप्रमाणकायः सर्पजाति-विशेषस्तेन । अभिमान एवाजगरोऽभिमानाजगरः कर्मधारयस्तेन । पुनरहं किं लक्षणो ? 'बद्धो' नियन्त्रितः । केन ? 'मायाजालेन' माया शाठ्यं तदेव जालं मत्स्यबन्धनं तेन; मायैव जालं मायाजालं कर्मधारयस्तेनेति पञ्चमवृत्तार्थः ॥

टबार्थ : दग्धोग्निना क्रोधमयेन दष्टो - दग्ध अग्नि क्रोधे डस्यो पीडो, दुष्टेन लोभाख्यमहोरगेन(ण) - दुष्टै लोभइं रुपीयै मोटे सर्पे डसो, ग्रस्तोभिमानाजगरेण - ग्रस्यो अहंकाररूपीइं अजगरि, मायाजालेन - माया जालें, बद्धोऽस्मि - बांधो हुं, कथं भजे त्वाम् - किम सेवूं ? ।

कृतं मयाऽमुत्र हितं न चेह - लोकेऽपि लोकेश ! सुखं न मेऽभूत् ।
अस्मादृशां केवलमेव जन्म, जिनेश ! जज्ञे भवपूरणाय ॥६॥

॥ कृतं० ॥ व्याख्या ॥ 'मयाऽमुत्र' परलोके 'हितं' सुकृतं 'न कृतं' न विहितम् । 'हे लोकेश !' लोकानां षट्कायानामीशः स्वामी तत्पालकत्वात् । लोकानामीशो लोकेशस्तत्पुरुषस्तस्य सम्बोधनम् । 'च' पुनरिह 'लोकेऽपि' वर्तमानजन्मन्यपि मम 'सुखं' शर्म नाभून्न 'जज्ञे' । अतो 'हे जिनेश !' हे केवलिपते ! जिनानामीशो जिनेशस्तत्पुरुषस्तस्य सम्बोधनम् । 'अस्मादृशां' वयमिव दृश्यन्ते इत्यस्मादृशस्तेषामस्मत्तुल्यानामित्यर्थः । 'जन्मा'ऽवतारः, 'केवलं-भवपूरणाय'ऽवतारगणनाय । यथा पूर्वजन्मस्ववतारा अभूवन्, तथा अयमप्येकोऽवतारगणना । भवस्य पूरणं भवपूरणं तत्पुरुषः, तस्मै । 'जज्ञे' जातं, जनि प्रादुर्भावे इति धातुरेवेति निश्चये । ॥ इति षष्टवृत्तार्थः ॥६॥

टबार्थ : कृतं मयामुत्र हितं न चेह - न कीधूं मायाइं में परलोके-इहलोकइ हित, लोकेपि लोकेश सुखं न मेऽभूत् - लोकनें विषें लोकना ठाकुर सुख न हुइं मुझ, अस्मादृशां - अम्ह सरीखानें, केवलमेव जन्म - केवल जनम हूओ, जिनेश - वीतराग, जज्ञे - हूओ, भवपूरणाय - भव पूरवानें काजइं ।

मन्ये मनो यन्न मनोज्ञवृत्तं, त्वदास्यपीयूषमयूखलाभात् ।
द्रुतं महानन्दरसं कठोर-मस्मादृशां देव ! तदश्मतोऽपि ॥७॥

॥ मन्ये० ॥ व्याख्या ॥ हे नाथाऽहमेवं 'मन्ये' जानामि 'यदि'ति यस्मात् 'अस्मादृशां मन'श्चित्तं कर्तृपदं 'महानन्दरसं' महानन्दलक्षणमाह, सद्यो रसास्वादजन्माविगलितवेद्यान्तरा परमप्रीतिर्महानन्दरस एव परसं पानीयं कर्मपदं 'न द्रुतं' **न श्रविउं** इति लोकोक्तिः । कस्मात् ? 'मनोज्ञवृत्तत्वदास्यपीयूष-मयूखलाभात्'; मनोज्ञं सुन्दरम् । पुनर्वृत्तं वर्तुलमेवंविधं यत्त्वदास्यं भवद्वदनं, तदेव पीयूषमयूखोऽमृतकिरणश्चन्द्र इत्यर्थस्तस्य लाभः प्राप्तिः ततः, तवास्यं 'त्वदास्यं' तत्पुरुषः । वृत्तं तद् वृत्त त्वदास्यं च मनोज्ञत्वदास्यं कर्मधारयः ।

पीयूषवन्मयूखा यस्य स पीयूषमयूखो बहुव्रीहिः । मनोज्ञवृत्तत्वदास्यमेव पीयूषमयूखो मनोज्ञवृत्तत्वदास्यपीयूषमयूखः कर्मधारयः । मनोज्ञवृत्तत्व-दास्यपीयूषमयूखस्य लाभो मनोज्ञवृत्तत्वदास्यपीयूषमयूख-लाभस्तत्पुरुषस्तस्मात् । अथवा मनोज्ञवृत्तेति पृथक् पदं सम्बोधनसत्कं हे मनोज्ञवृत्त !' मनोज्ञं साधु वृत्तं शीलं यस्य स बहुव्रीहिस्तस्य सम्बोधनम् । अतो 'हे देव !' हे वीतराग ! 'अस्मादृशा'मस्मत्तुल्यानां, वयमिव दृश्यन्ते इत्यस्मादृशस्तेषां; मनश्चित्तं 'तदिति' तस्मात् 'अश्मतोपि' प्रस्तरतोपि । अर्थाच्चन्द्रकान्तरत्नतः 'कठोरं' कठिनं वर्त्तते इति शेषः । कोऽर्थः ? चन्द्रकान्तो हि विधुदर्शनतो रसं श्रवति । मन्मनसा तु महानन्दो नाश्रावि भवद्दर्शनत इति सप्तमवृत्तार्थः ॥७॥

टबार्थ : मन्ये, मनो यन्न मनोज्ञवृत्तं - असुं चित्त रूडूं नहीं, त्वदास्यपीयूषमयूख - ताहरा मुख अमृत, लाभात् - तेहना लाभ थकी, द्रुतं - शीघ्रं, महानंद रसं कठोरं - महा आनंद रस पामवानें आकरुं, अस्मादृशां - अम्ह सरीखुं, देव - हे वीतराग, तदश्मतोपि - पाषाण थकी ।

त्वत्तः सुदुःप्रापमिदं मयाप्तं, रत्नत्रयं भूरिभवभ्रमेण ।
प्रमादनिद्रावशतो गतं तत्, कस्याग्रतो नायक ! पूत्करोमि ॥८॥

॥ त्वत्तः० ॥ व्याख्या ॥ 'हे नायक !' हे स्वामिन् ! 'त्वत्तो' भवतो 'रत्नत्रयं' ज्ञान-दर्शन-चारित्र-लक्षणं रत्नानां त्रयं तत्पुरुषः, 'मया आप्तं' प्राप्तम् । रत्नत्रयं किं लक्षणम् ? 'सुदुःप्राप(पं)' सुदुर्लभं, दुःखेन प्राप्यते इति दुःप्रापं तत्पुरुषः । सुष्ठु अतिशयेन दुःप्रापं सुदुःप्रापं, तत्पुरुषः । पुनः रत्नत्रयं किंलक्षणम् ? इदं प्रत्यक्षं । केन ? 'भूरिभवभ्रमेण' बहुभवभ्रान्त्यापि दुःप्रापम् । भूरयश्च ते भवाश्च भूरिभवाः कर्मधारयः । भूरिभवेषु भ्रमो भूरिभवभ्रमस्तत्पुरुषस्तेन । 'तदिति' रत्नत्रयं, 'प्रमादनिद्रावशतः' प्रमादो मद्यादि निद्राः पञ्चधा प्रसिद्धास्तेषां वशतो माहात्म्यतः, प्रमादनिं(नि)द्रावशतत्पुरुषस्ततो गतं मत्तो दूरीभूतमित्यर्थः इति । 'कसा(स्या)ग्रतः' पुरतो रावां करोमि **पोकारुं** इति लोकोक्तिरिति ऽष्टमवृत्तार्थः ॥८॥

टबार्थ : त्वत्तः सुदुःप्रापमिदं मयाप्तं - तो दुःख पांमो कष्टै पामुं; रत्नत्रयं भूरिभवभ्रमेण - ज्ञान-दर्शन-चारित्र घणां भम(व) भमतां; प्रमादनिद्रा-वशतो गतं तत् - प्रमादनिद्रा तेहना वश थकुं गयुं ते; कस्याग्रतो नायक !

पूत्करोमि - कुण आगल ठाकुर पोकार करुं ? ॥८॥

वैराग्यरङ्गः परवञ्चनाय, धर्मोपदेशो जनरञ्जनाय ।
वादाय विद्याऽध्ययनं च मेऽभूत्, कियद् ब्रुवे हास्यकरं स्वमीश! ॥९॥

॥ वैरा० ॥ व्याख्या ॥ 'हे ईश !' हे स्वामिन् ! 'स्वं' स्वकीयकृतं, 'हास्यकरं' हास्यकारकं, हास्यकरं हास्यकारकं तत्पुरुषः । 'किं(कि)यदिति' कियत्प्रमाणम् । 'ब्रुवे' कथयामि । कृतमिति कर्तृपदस्याध्याहारो विधेयोऽत्र । यद्यपि सर्वकृतं वक्तुं न शक्यते तथाप्यहमिति शेषः कियत्कृतं ब्रुवे । तद्दर्शयति; 'मे' मम वैराग्यस्य रङ्गो 'वैराग्यरङ्ग'स्तत्पुरुषः, ऽभू'ज्जातः । कस्मै ? 'परवञ्चनाय' परेषामन्येषां वञ्चनं विप्रतारणं तस्मै परेषां वञ्चनं परवञ्चनं, तस्मै तत्पुरुषः । तथा मे 'धर्मोपदेशो' धर्मो दानादिःतस्योपदेशः कथनं धर्मस्योपदेशो धर्मोपदेशस्तत्पुरुषः, ऽभूत् । कस्मै ? 'जनरञ्जनाय' जना लोकास्तेषां रञ्जनमावर्जनं तस्मै । जनानां रञ्जनं जनरञ्जनं तत्पुरुषस्तस्मै । तथा मे 'विद्याध्ययनं' विद्यापठनमभूत् । विद्यानामध्ययनं विद्याध्ययनं तत्पुरुषः शास्त्रपठनमित्यर्थः । कस्मै ? 'वादाय' परवादिजयायेति नवमवृत्तार्थः ॥९॥

टबार्थ : वैराग्यरङ्गः - वैराग्य रंग; परवञ्चनाय - परवंचनानें कारण; धर्मोपदेशो - धर्मोपदेश दीधउ; जनरञ्जनाय - ते जननें रंजवानइं काजइ; वादाय विद्याऽध्ययनं च मेऽभूत् - वाद करवाने विद्या हुइ; कियद् ब्रुवे - केतलूं कहुं; हास्यकरं - हासनूं कारण; स्त्व(स्व)मीश - हा हा ! यतीश ! ।

परापवादेन मुखं सदोषं, नेत्रं परस्त्रीजनवीक्षणेन ।
चेतः परापायविचिन्तनेन, कृतं भविष्यामि कथं विभोऽहम् ॥१०॥

॥ परा० ॥ व्याख्या ॥ 'हे विभो !' मयेतिशेषः, 'मुखं' वदनं, 'सदोषं' सदूषणं, सह दोषैर्वर्तते यत्तत्सदोषं बहुव्रीहिः । 'कृतं' विहितं; केन ? 'परापवादेन' परेषामपवादः परापवादस्तत्पुरुषस्तेन । परेषामन्येषां द्वेषादिनामन्याऽसत्यदूषणोद्भावनमपवादस्तेन । तथा मया 'नेत्रं' लोचनं सदोषं कृत । केन ? 'परस्त्रीजनवीक्षणेन' सरागदृष्ट्या परनारी-विलोकनेन; परेषां स्त्रियः परस्त्रियः तत्पुरुषः, परस्त्रिय एव जनाः परस्त्रीजनाः कर्मधारयः । विशेषेणेक्षणं वीक्षणं तत्पुरुषः, परस्त्रीजनानां वीक्षणं तत्पुरुषस्तेन । तथा मया 'चेतो' हृदयं सदोषं कृतम् । केन ? 'परापायविचिन्तनेन' । परेषामन्येषामपाया अनर्थास्तेषां विचिन्तनं विचारणं तेन ।

परेषामपायाः परापायास्तत्पुरुषः, परी(रा)पायानां विचिन्तनं परापायविचिन्तनं त(तं) परापायविचिन्तनं तत्पुरुषस्तेन । अतो 'हे विभो!' हे प्रभोऽहं कथं भविष्यामि?' अथ अग्रे मे का गतिर्भविष्यतीति भावः । इति दशमवृत्तार्थः ॥१०॥

टबार्थ : परापवादेन मुखं सदोषं - बीजा लोकना अपवाद बोलवें करी मुख सदोष; नेत्रं परस्त्रीजनवीक्षणेन - लोचन परस्त्री जोवें करी सदोष; चेतः परापायविचिन्तनेन - चित्त लोकनें अर्थे चिंतवें करीनइं; कृतं भविष्यामि कथं विभोहं? - कीधूं । थाइस किम हे विभु हुं ? ।

विडम्बितं यत्स्मरघस्मरार्त्ति-दशावशात्स्वं विषयान्धलेन ।
प्रकाशितं तद्भवतो ह्रियैव, सर्वज्ञ ! सर्वं स्वयमेव वेत्सि ॥११॥

॥ विडं० ॥ व्याख्या ॥ हे नाथ ! यन्मया 'स्वमिति निजं, 'विडम्बितं' गर्हणीयतां नीतं, कस्मात् ? 'स्मरघस्मरार्त्तिदशावशात्' स्मरघस्मरार्त्तिदशावशात्। स्मरः कामः । स एव घस्मरोऽद्यरः ---- इति लोकोक्तिः, तस्यार्त्तिः - पीडा; तस्या या दशा अवस्थास्तासां वश आधीनस्तस्मात् । स्मर एव घस्मरः स्मरघस्मरः कर्मधारयः, स्मरघस्मरस्यार्त्तिः स्मरघस्मरार्त्तिस्तत्पुरुषः । स्मरघ-स्मरार्त्तेर्दशाः स्मरघस्मरार्त्तिदशास्तत्पुरुषः, स्मरघस्मरार्त्तिदशानां वशः स्मरघस्मरार्त्ति-दशावशस्तत्पुरुषस्तस्मात् । मया किंलक्षणेन ? 'विषयान्धलेन' विषयाः शब्दाद्यास्तैरन्धलो निमीलितविवेकलोचनो विषयैरन्धलो विषयान्धलस्तत्पुरुषस्तेन ते(त)द्विडम्बितं । 'ह्रिया' लज्जयाऽकथनरूपया भवतस्तव एव निश्चयेन प्रकाशितं प्रकटीकृतम् । कोऽर्थो ? मम लज्जया तव तन्निवेदितं मां लज्जमानं दृष्ट्वा त्वया मदाचरितं ज्ञातमित्यर्थः । यतो हे 'सर्वज्ञ !' सर्वं जानातीति सर्वज्ञस्तत्पुरुषस्तस्य सम्बोधनं साभिप्रायं विशेषणमेतत् सर्वं समस्तं, स्वयमात्मना एवेति निश्चये त्वमिति शेषः । 'वेत्सि' जानासीत्येकादशवृत्तार्थः ॥११॥

टबार्थ : विडम्बितं यत (यत्)स्मरघस्मरार्त्ति - विडम्बित जे कन्दर्पपीडा तेहनी आर्त्ति; दशावशात(त्)स्वं विषयान्धलेन - आपण पुंविषय सौख्य आन्धलेन; प्रकाशितं - कहूं; तद्भवतो ह्रियैव - ते तुम्ह आगल लज्जाइं; 'सर्वज्ञ ! सर्वं स्वयमेव वेत्सि - हे वीतराग ! सहू पोते जांणइं ॥११॥

ध्वस्तोऽन्यमन्त्रैः परमेष्ठिमन्त्रः, कुशास्त्रवाक्यैर्निहताऽऽगमोक्तिः ।
कर्तुं वृथा कर्म कुदेवसङ्ग,-दवाञ्छि ही नाथ मतिभ्रमो मे ॥१२॥

॥ ध्वस्तो० ॥ व्याख्या ॥ 'हे नाथ !' हे नेत ! 'मे' मम, 'ही' इति खेदे 'मतिभ्रमो' बुद्धिविपर्यासो, मते(र्भ्र)भ्रमो मतिभ्रमस्तत्पुरुषोऽभूदिति शेषः भ्रमं दर्शयति मयेति शेषः । मया 'परमेष्टिमन्त्रो' नमस्कारमन्त्रो नमो अरिहंताणमित्यादि नवपदात्मकः । परमे पदे तिष्ठन्तीति परमेष्ठिनः सप्तम्यलुक्तत्पुरुषः, परमेष्ठिभिरुपलक्षितो मन्त्रः परमेष्ठिमन्त्रस्तत्पुरुषः; 'ऽन्यमन्त्रैः' अन्ये च ते मन्त्राश्चान्यमन्त्राः कर्मधारयस्तैर्ध्वस्तो निरादरीकृतः । तथा मया 'आगमोक्तिः' सिद्धान्तवाक्यम् आगमस्योक्तिरागमोक्तिस्तत्पुरुषः । 'कुशास्त्रवाक्यैः' कुशास्त्राणि **वात्स्यायना**दीनि; तेषां वाक्यानि वचनानि तैः कुत्सितानि च तानि शास्त्राणि च कुशास्त्राणि कर्मधारयः । कुशास्त्राणां वाक्यानि तैस्तत्पुरुषो निहतानि तानीत्यर्थः । तथा मया कर्मेत्यत्र जात्यपेक्षयैकवचनं ज्ञानावरणीयादिपापम् । 'वृथा कर्तुं' मुधा कर्तुं, मया कर्तुमित्यर्थोऽवाञ्छि' अभ्यलषम् । कस्मात् ? 'कुदेवसङ्गात्' हरिहरादिदेवसेवनात् । कुत्सिताश्च ते देवाश्च कुदेवाः कर्मधारयः, कुदेवानां सङ्ग(ः) कुदेवसङ्गस्तत्पुरुष-स्तस्मादिति द्वादशवृत्तार्थः ॥१२॥

टबार्थ : ध्वस्तान्यमन्त्रैः परमेष्टिमन्त्रः - निराकर्यओ अनेरे मन्त्रे करी पंच परमेष्टिमन्त्र; कुशास्त्रवाक्यैर्निहतागमोक्तिः - पाडूआ शास्त्रनें वचनें करी सिद्धांत निराकरूं; कर्तुं वृथा कर्म कुदेवसंगा - कीधूं फोकट कर्म माता देवना संग थकी; सर्वत्र सर्वदाऽवाञ्छि ही नाथ ! मतिभ्रमो मे - वांछे नीचूं ठाकुर चित्त चमको रहइं।

विमुच्य दृग्लक्षगतं भवन्तं, ध्याता मया मूढधिया हृदन्तः ।
कटाक्ष-वक्षोज-गभीरनाभी,-कटीतटीयाः सुदृशां विलासाः ॥१३॥

॥ विमुच्य० ॥ व्याख्या ॥ हे जगदीश ! 'मया सुदृशां' मृगलोचनानां; सुष्ठु दृग् यासां ताः सुदृशस्तासां बहुव्रीहिः । तरललोचनानां 'विलासा' विभ्रमा 'ध्याता'श्चिन्तिताः । कथम् ? 'हृदन्त'र्मनोमध्ये, हृदोऽन्तर्हृदन्तस्तत्पुरुषः । कथंभूतेन मया ? 'मूढधिया' मन्दमतिना, मूढा धीर्यस्य स मूढधीर्बहुव्रीहिस्तेन । विलासाः किंलक्षणाः ? 'कटाक्ष-वक्षोज-गभीरनाभी-कटीतटीयाः' कटाक्षोऽक्षिविकूणितं, वक्षोजौ स्तनौ, गभीरा निम्ना या नाभिः प्रसिद्धो देहावयवः, कटीतटं कटीप्रदेशः, एतेषां सम्बन्धिनः । वक्षसि जायेते इति वक्षोजौ तत्पुरुषः । गभीरा चासौ नाभी च गभीरनाभी कर्मधारयः । कट्यास्तटं कटीतटं तत्पुरुषः । कटाक्षश्च वक्षोजौ च गभीरनाभी च कटीतटं च कटाक्षवक्षोजगभीरनाभीकटीतटं द्वन्द्वः

प्राणितूर्यसेनाङ्गानामेकवद्भावो द्वन्द्वे भवति । कटाक्षवक्षोजगभीरनाभीकटीतटे भवाः कटाक्षवक्षोजगभीरनाभीकटीतटीया; केनेयेका इति तद्धितसूत्रेणेयप्रत्ययः । किं कृत्वा ? 'विमुच्य' परित्यज्य । कम् ? 'कर्मतापन्नं त्वां 'भवन्तं' किंविशिष्टम् ? 'दृग् लक्ष्यगतं' दृग् दृष्टिस्तस्या लक्ष्यं वेध्यं तद्गतः प्राप्तस्तं दृग्गोचरीभूतमित्यर्थः; दृशो लक्ष्यं दृग्लक्ष्यं तत्पुरुषः । दृग्लक्ष्यं गतो दृग्लक्ष्यगतस्तत्पुरुषस्तं; लक्षशब्दो 'य'काररहितोप्यस्ति लक्षं लक्ष्यं शब्दकमि**त्यभिधानकोश**वचनादिति त्रयोदशवृत्तार्थः ॥१३॥

टबार्थ : विमुच्य दृग्लक्षगतं भवन्तं ध्याता - मूंकी करी लोचन गोचर गत तुझनइं ध्याया; मया मूढधिया हृदन्तः - में मूरख बूद्धि चित्तमांहइं; कटाक्ष-वक्षोजगभीरनाभी - लोचनविकार, स्तन गंभीरनाभि; कटीतटीयाः सुदृशां विलासा - कटि तटिना प्रदेश स्त्रीना विकार ॥१३॥

लोलेक्षणावक्त्रनिरीक्षणेन, यो मानसे रागलवो विलग्नः ।
न शुद्धसिद्धान्तपयोधिमध्ये, धौतोऽप्यगात्तारक ! कारणं किम् ? ॥१४॥

॥ लोले० ॥ व्याख्या ॥ हे त्रिकालवेदिन् ! यो मे 'मानसे' हृदये, 'रागलवो' रागलेशो, रागस्य लवो रागलवस्तत्पुरुषः 'विलग्नो' विशेषेण स्थितः । केन ? 'लोलेक्षणावक्त्रनिरीक्षणेन' । लोलेक्षणा - रमणी, तस्या वक्त्रं मुखं, तस्य निरीक्षणं विलोकनं, ति(ते)न । लोले चपले ईक्षणे लोचने यस्याः सा लोलेक्षणा बहुव्रीहिः । लोलेक्षणाया वक्त्रं लोलेक्षणावक्त्रं तत्पुरुषः, लोलेक्षणावक्त्रस्य निरीक्षणं लोलेक्षणावक्त्रनिरीक्षणं तत्पुरुषस्तेन । 'हि(हे)तारक!' हे संसारपारप्रापक ! स रागलवो 'नागा'न्न गतः । किंलक्षणो रागलवः ? धौतः-क्षालितोपि; कस्मिन् ? 'शुद्धसिद्धान्त-पयोधिमध्ये' शुद्धो निर्दूषणो यः सिद्धान्त – आगमः स एव पयोधिः समुद्रस्तस्य मध्यो मध्यभागस्तस्मिन् । शुद्धश्चासौ सिद्धान्तश्च शुद्धसिद्धान्तः कर्मधारयः; शुद्धसिद्धान्तपयोधेर्मध्यं शुद्धसिद्धान्तपयोधिमध्यं तत्पुरुषस्तस्मिन् । तत्र 'किं कारणम्' हेतुरभूदिति चतुर्दशवृत्तार्थः ॥१४॥

टबार्थ : लोलेक्षणावक्त्रनिरीक्षणेन - स्त्रीजन तेहना मुखनूं जोवूं तेणइं करी; यो मानसे रागलवो विलग्नः - जेम चित्तनइं राग थोडोई लागो; न शुद्धसिद्धान्तपयोधिमध्ये - नही निर्मल शास्त्ररूपीया समुद्रइं मांहइं; धौतोप्यगा(त्ता)रक

कारणं किं ? - धोयो हुं तो न गयो हे तारक ! तेसुं कारण ? ॥१४॥

अनंग (अङ्गं) न चङ्गं न गणो गुणानां, न निर्मलः कोपि कलाविलासः ।
स्फुरत्प्रधानप्रभुता च कापि, तथाप्यहङ्कारकदर्थितोऽहम् ॥१५॥

॥ अङ्गं० ॥ व्याख्या ॥ हे जिनेश ! मे 'अङ्गं' शरीरं, 'चङ्गं' सुन्दरं नास्ति । तथा 'गुणानां' विनयो(यौ)दार्य-धैर्य-गाम्भीर्यादीनां 'गणः' समूहोऽपि नास्ति । तथा 'कोऽपि कलाविलासः' कलोद्दीपनं; कलानां विलासः कलाविलास-स्तत्पुरुषः, नास्ति कलाविलासः । किंलक्षणो ? 'निर्मल'श्चोक्षो निर्गतो मलादिभिर्निर्मलः तत्पुरुषः । तथा च पुनः 'कापि स्फुरत्प्रधानप्रभुता' स्फुरन्ती देदीप्यमाना या प्रधानानामग्रेमराणां राज्ञामिति यावत् । प्रभुः स्वामी तस्य भावस्तत्ता चक्रवर्त्तिता । अथवा प्रधानानामधिकारिणां प्रभुता ऐश्वर्यं, प्रधानानां प्रभुः प्रधानप्रभुस्तत्पुरुषः, प्रधानप्रभोर्भावः प्रधानप्रभुता, स्फुरन्ती चासौ प्रधानप्रभुता च स्फुरत्प्रधानप्रभुता कर्मधारयः, नास्ति । तथापि हे प्रभो ! अहं 'अहङ्कारकदर्थितो-ऽभिमानाऽभिभूतोऽहङ्कारेण कदर्थितोऽहङ्कारकदर्थितस्तत्पुरुषः, ऽस्मीति शेषः । इति पञ्चदशवृत्तार्थः ॥१५॥

टबार्थ : अङ्गं न चङ्गं न गु(ग)णो गुणानां - अंग निर्मल हूओ नही न हूआ गुण घणा; न निर्मलः - न हूउ निर्मल; कोपि कलाविलासः - कोई कलाविलास नथी; स्फुरत्प्रभा न प्रभुता च कापि - न देदीप्यमांन महिमा नही प्रभुताई पण; तथाप्यहङ्कारकदर्थितोहं - तो ही पण अहंकार कदर्थन हूओ ॥१५॥

आयुर्गलत्याशु न पापबुद्धि,-र्गतं वयो नो विषयाभिलाषः ।
यत्नश्च भैषज्यविधो(धौ) न धर्मे, स्वामिन् ! महामोहविडम्बना मे ॥१६॥

॥ आयु० ॥ व्याख्या ॥ 'हे स्वामिन्' हे नेतर्मम 'महामोहविडम्बना' प्रबल मोहनीयकर्मकदर्थना । महांश्चासौ मोहश्च महामोहः कर्मधारयः, महामोहस्य विडम्बना तत्पुरुषः, अस्ति । ता मोहविडम्बना दर्शयति; मम 'आयु'र्जीवितं 'गलति' याति । कथम् ? 'आशु' शीघ्रं, 'पापबुद्धिः' पापपरिणामः । पापस्य बुद्धिः पापबुद्धिस्तत्पुरुषः, न गलति मे वयो यौवनलक्षणं 'गतमतिक्रान्तं'; 'विषयाभिलाषः विषयाः शब्द १ रूप-२, गन्ध-३, रस-४, स्पर्शा-५स्तेषामभिलाषः स्पृहा । विषयाणामभिलाषो विषयाभिलाषस्तत्पुरुषः, 'न गतः' । च पुन'र्भैषज्यविधौ' औषधविधाने; विधानं विधिर्भैषज्यस्य विधिर्भैषज्यविधिस्तत्पुरुषः तस्मिन् यत्न

आदरोऽभूत् 'धर्मे' सुकृतकर्म्मणि यत्नो नाभूदिति षोडशवृत्तार्थः ॥१६॥

टबार्थ : आयुर्गलत्याशू(शु) न पापबुद्धि - आउखुं जाइ छइ शीघ्र पापबुद्धि न जाइं; गतं वयो नो विषयाभिलाषः - गयो योवन न गयो संसारनो अभिलाष; यत्नश्च भैषज्यविधौ न धर्मे - यत्ने करी उद्यम कीधो उषधनें, न धर्मनइं विषइं; स्वामिन् महामोहविडम्बना मे - हे नाथ ! मोटी मोहनी विटंबना माहरी ॥१६॥

नात्मा न पुण्यं न भवो न पापं, मया विटानां कटुगीरपीयम् ।
अधारि कर्णे त्वयि केवलार्के, पुरिः(परि)स्फुटे सत्यपि देव ! धिग्माम् ॥१७॥

॥ नात्मा० ॥ व्याख्या ॥ हे भगवन् ! 'मया विटानां' नास्तिकादि-विटपुरुषाणां 'इयं कटुगीरपि' कर्कशोक्तिरपि; कटुश्चासौ गीश्च कटुगीः कर्मधारयः । 'कर्णे' श्रवणेऽ'धारि' धृता । इयं का ? आत्मा जीवो नास्ति, तथा 'पुण्यं' सुकृतं नास्ति, तथा 'भवो'ऽवतारो नास्ति, तथा 'पापं' दुरितं नास्ति । कस्मिन् सति ? 'त्वयि सति' । त्वयि कथम्भूते ? 'केवलार्के' केवलं केवलज्ञानं तदेवार्को यस्य स पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् केवल स(श)ब्देन केवलज्ञानमुच्यते । त्वयि किंलक्षणे ? 'परिस्फुटे' अतिप्रकटे । त्वयि कथन्भूते ? 'सत्यपि' विद्यमानेऽपि । त्वयि सत्यपि विटानां वाणी कर्णे श्रुता । अतो हे देव ! हे केवलपते ! 'मां धिगस्तु' धिक्कारो भवतु गुणागुणेऽविवेकत्वादिति सप्त(दश)वृत्तार्थः ॥१७॥

टबार्थ : नात्मा न पुण्यं न भवो न पापं - न कीधूं आत्मानूं हित न पुण्य कीधूं न भवफेरो वारो न पाप फेडो; मायाविटानां कटुगीरपीयं - मायाकुटनीनी कडूई वांणीइं; अधारि कर्णे त्वयि केवलार्के - धरी कांननें विषें तुझ केवलज्ञानसूर्य आगलि प्रगटे छइ; परिस्फुटे सत्यपि दैव । धिग(ग्)मां - तोही पिण हे देव ! धिकार हुवो मुझनइं ॥१७॥

न देवपूजा न च पात्रपूजा, न श्राद्धधर्मश्च न साधुधर्मः ।
लब्ध्वापि मानुष्यमिदं समस्तं, कृतं मयाऽरण्यविलापतुल्यम् ॥१८॥

॥ न देव० ॥ व्याख्या ॥ हे परमेष्टिन् ! यन्मया 'देवपूजा'ऽर्हदर्चा; देवानां पूजा देवपूजा तत्पुरुषः, न कृता । च पुनर्यन्मया 'पात्रपूजा' साधुदानं; पुनर्यन्मया

'श्राद्धधर्मः' सम्यक्त्वमूलद्वादशव्रतलक्षणः । श्राद्धानां धर्मः श्राद्धधर्मः, श्राद्धधर्मस्तत्पुरुषः, न विहितः तथा यन्मया 'साधुधर्मः' पञ्चमहाव्रतलक्षणः । साधूनां धर्मः साधुधर्मस्तत्पुरुषः, न निर्मितः । किं कृत्वा ? 'लब्ध्वाऽपि' प्राप्याऽपि; किं कर्मतापन्नं ? 'मानुष्यं' मनुजत्वं; मनुष्यस्य भावो मानुष्यं; तत् लब्ध्वा मानुष्यमिति पदयुगलं देवपूजादिपदेष्वपि योज्यं । तत् इदमिति देवार्चाद्यऽकरणलक्षणं; 'समस्तं' सकलं 'कृतं' निर्मितं इदं; कीदृशं कृतं ? 'अरण्यविलापतुल्यं' अरण्यं कान्तारं, तत्र विलापो रोदनं तस्य तुल्यं सदृशं । अरण्ये विलापोऽरण्यविलापस्तत्पुरुषः, ऽरण्यविलापस्य तुल्यमरण्यविलापतुल्यं तत्पुरुषः । कोऽर्थो ? यन्मया नरत्वं प्राप्यार्हत्पूजादिकसुकृतं न कृतं, तन्मयाऽरण्ये रोदनं कृतम् । अरण्ये रोदनं त्वकिञ्चित्करं प्रसिद्धमस्ति । यत उक्तं;

अरण्यरुदितं कृतं शबशरीरमुद्वर्त्तितं,
श्वपुच्छमवनामितं बधिरकर्णजापः कृतः ।
स्थले कमलरोपणं सुचिरमूखरे वर्षणं,
तदभ्रमुखमण्डनं यदबुधे जने भाषितम् ॥ इत्यष्टादशवृत्तार्थः ॥१८॥

टबार्थ : न देवपूजा - में देवनी पूजा न कीधी; न च पात्रपूजा - पात्रपूजा न कीधी; न श्राद्धधर्मश्च न साधुधर्मः - श्रावकनो धर्म न कीधो साधूनो पिण धर्म न कीधओ; लब्ध्वाऽपि - लही करी; मानुष्यमिदं समस्तं - मनुष्यभव ए सगलओ; कृतं मयारण्यविलापतुल्यं - कीधूं में रुदन कीधूं वनखंड सेवउ ॥१८॥

चक्रे मयाऽसत्स्वपि कामधेनु - कल्पद्रुचिन्तामणिषु स्पृहार्त्तिः ।
न जैनधर्मे स्फुटशर्मदेऽपि, जिनेश ! मे पश्य विमूढभावम् ॥१९॥

॥ चक्रे० ॥ व्याख्या ॥ 'हे जिनेश !' जिनाः केवलिनः तेषामीशः स्वामी, जिनानामीशो जिनेशस्तत्पुरुषस्तस्य सम्बोधनम् । मया 'स्पृहार्त्तिः' वाञ्छापीडा प्राप्त्यऽध्यवसाय इति यावत् । स्पृहाया अर्त्तिः स्पृहार्त्तिस्तत्पुरुषः । 'चक्रे' कृता, केषु ? 'कामधेनु-कल्पद्रु-चिन्तामणिषु' कमधेनुः कामगवी, कल्पद्रुर्देवतरुः, चिन्तामणि-श्चिन्तारत्नं; तिषु(तेषु), कामस्य पूरिका धेनुः कामधेनुस्तत्पुरुषः, कल्पश्चासौ द्रुश्च कल्पद्रुः कर्मधारयः, चिन्तायाः पूरको मणिश्चिन्तामणिर्मध्यपदलोपी तत्पुरुषः । कामधेनुश्च कल्पद्रुश्च चिन्तामणिश्च कामधेनुकल्पद्रुचिन्तामणयो द्वन्द्वस्तेषु । किं लक्षणेषु कामधेनु-कल्पद्रु-चिन्तामणिषु ? 'असत्स्वपि' अविद्यमानेष्वपि, न

सन्तोऽसन्तस्तेषु तत्पुरुषः । पुन'जैनधर्मे' जिनोक्ततत्त्वे, जिनस्यायं जैनो, जैनश्चासौ धर्मश्च जैनधर्मः कर्मधारयस्तस्मिन् । स्पृहार्त्तिर्जिनधर्मकरणलक्षणा चिन्ता न चक्रे। जिनधर्मे किंलक्षणे ? 'स्फुटशर्मदेऽपि' प्रकटसौख्यकारकेऽपि । स्फुटं च तत् शर्म च स्फुटशर्म कर्मधारयः, स्फुटशर्म ददातीति स्फुटशर्मदस्तस्मिन्। हे जिनेश ! 'मे' मम 'विमूढभावं' विशेषेण मन्दत्वं; मूढस्य भावो मूढभावस्तत्पुरुषः। विशेषेण मूढभावो विमूढभावस्तत्पुरुषस्तं पश्य विलोकयेत्येकोविंशतितमवृत्तार्थः ॥१९॥

टबार्थ : चक्रे मया – कीधी में छइं; सत्स्वपि कामधेनुकल्पद्रु चिन्तामणिषु स्पृहार्त्तिः – ते कामधेनु कल्पद्रुम वृक्ष चिन्तामणि विषय वांछा पीडइ; न जैनधर्मे स्फुटशर्मदेपि – न जिनधर्मनें विषें प्रगट मोक्ष देणहार; जिनेश ! मे पश्य विमूढभावं – हे ठाकुर ! मुझनइं पश्य देखि मूर्खपणऊ ॥१९॥

सद्भोगलीला न च रोगकीला, धनागमो नो निधनागमश्च ।
दारा न कारा नरकस्य चित्ते, व्यचिन्ति नित्यं मयकाऽधमेन ॥२०॥

॥ सद्भो० ॥ व्याख्या ॥ हे पुरुषोत्तम ! 'मयका' मया, 'नित्यं' निरन्तरं, 'सद्भोगलीला' प्रधानभोगक्रीडा, सन्तश्च ते भोगाश्च सद्भोगाः कर्मधारयः, सद्भोगानां लीला सद्भोगलीला तत्पुरुषः । 'चित्ते' चेतसि, 'व्यचिन्ति' विचारिता । च पुनः 'रोगकीलाः' गदशङ्कवो, रोगा एव कीला लोहोपकरणविशेषाः **खीला** इति लोकोक्तिः । कीलाशब्दः पुंस्त्रीलिङ्गे । रोगा एव कीला रोगकीलाः कर्मधारयः । नव्यचिन्तिषत मयका । 'धनागमो' धनप्राप्तिर्धनस्यागमो धनागमस्तत्पुरुषः, व्यचिन्ति च पुन'र्निधनागमो' मरणागमो, निधनस्यागमो निधनागमस्तत्पुरुषः, न व्यचिन्ति नो मखेधि(?) मयका 'दाराः' कलत्रं चित्ते व्यचिन्तिषत । 'दार' शब्दो बहुवचनान्तः पुल्लिङ्गश्च ज्ञेयः । पुनर्नरकस्य कारा गुप्तिगृहं चित्ते न व्यचिन्ति । यतो मयका किंलक्षणेनाऽधमेन पापेन अव्ययसर्वादेरकं चेति तद्धितसूत्रेणाऽक् प्रत्यये रूपसिद्धिरिति विंशतितमवृत्तार्थः ॥२०॥

टबार्थ : सद्भोगलीला न च रोगकीला – रूडा भोग चिंतवा न रोगपीडा चिंतवी; धनागमो नो निधनागमश्च – लक्ष्मीनो धनागम चींतवो न निर्धन पणउ; दारा न कारा नरकस्य चित्ते – स्त्री मन चिंतवी गोतहरूं मन धरुं नही; व्यचिन्ति नित्यं मयकाधमेन – चिंतवूं निरंतर में अधमइं ॥२०॥

स्थितं न साधोर्हृदि साधुवृत्त्या, परोपकारान्न यशोऽर्जितं च ।
कृतं न तीर्थोद्धरणादि कृत्यं, मया मुधा हारितमेव जन्म ॥२१॥

॥ स्थितं० ॥ व्याख्या ॥ हे जगत्प्रभो ! मया 'जन्मा'ऽवतारो 'मुधा' वृथा 'हारितं' निर्गमितं । एवेति निश्चये तद्दर्शयति; मया साधोरुत्तमस्य 'हृदि' हृदये 'न स्थितं' नाश्रितं; कस्मात् ? 'साधुवृत्तात्' शोभनाचारतः । साधु च तद्वृत्तं च साधुवृत्तं तस्मात् । साधुवृत्त्या इत्यपि क्वापि पाठः । तत्र साधुः शोभनवृत्तिः सदाचरणरूपा प्रवृत्तिस्तया । च पुनर्मया 'यशः' प्रसिद्धा(द्धं) ख्यातिरूपं 'नार्जितं' नोपार्जितम् । कस्मात् ? 'परोपकारात्' अन्योपकृतितः । परेषामुपकारः परोपकारस्तस्मात्तत्पुरुषः । तथा मया 'कृत्यं' कार्यं, न कृतं न विहितं; कृत्यं किंलक्षणम् ? 'तीर्थोद्धरणादि' पतितजिनमन्दिरोद्धारप्रवृत्तिः । तीर्थानामुद्धरण(णं) तीर्थोद्धरणं तत्पुरुषः । तीर्थोद्धरणमादिर्यस्य तत्तीर्थोद्धरणादि बहुव्रीहिरित्येक-विंशतितमवृत्तार्थः ॥२१॥

टबार्थ : स्थितं न साधोर्हृदि साधुवृत्तान् (त्) - न हूओ ते साधो हीया साधू वृत्त आचार करी; परोपकारान्न यशोर्ज्जितं च - परोपकारी(रिं) यश नोपार्ज्यो; कृतं न तीर्थोद्धरणादि कृत्यं - न कीधओ तीर्थ उद्धरणादिक करणी; मया मुधा हारितमेव जन्म - मै वृथा हारो जनम ॥२१॥

वैराग्यरङ्गो न गुरूदितेषु, न दुर्जनानां वचनेषु शान्तिः ।
नाध्यात्मलेशो मम कोपि देव !, तार्यः कथङ्कारमयं भवाब्धिः ॥२२॥

॥ वैरा० ॥ व्याख्या ॥ 'हे देव !' मया 'कथङ्कार'मिति 'कथंकथमादिषु स्वार्थे कृञ्' इति कृदन्तसूत्रेण रूपसिद्धिः । 'अयं भवाब्धि'रसौ संसारसमुद्रः । भव एवाब्धिः कर्मधारयः । 'तार्य'स्तरणीयः यस्मात् सुकृतं विना संसारार्णवस्तरीतुं न शक्यते तत्तु मया नाचरितं तद्दर्शयति । मे 'वैराग्यरङ्गो' वैराग्यवासना; वैराग्यस्य रङ्गो वैराग्यरङ्गस्तत्पुरुषः नाजनि । केषु सत्सु ? 'गुरूदितेषु' सत्सु । गुरुभाषितेषु गुरुभाषितश्रवणे वैराग्यरङ्गो भवति । यदुक्तं;

''धर्माख्याने स्मशाने च, रोगिणां या मतिर्भवेत् ।
यदि सा निश्चला बुद्धिः, को न मुच्येत बन्धनात् ॥१॥''

मम तु स नाभूत् । गुरुभिरुदितानि गुरूदितानि तत्पुरुषस्तेषु । तथा 'दुर्जनानां' असज्जनानां; दुष्टाश्च ते जनाश्च दुर्जनाः कर्मधारयस्तेषां 'वचनेषु'

वाक्येषु शान्तिरुपशमो मा भूत् । तथा मम 'कोप्यध्यात्मलेशः' पठनपाठना-ष्टाङ्गयोगलवः, आत्मानमधिकृत्य यद्वर्त्तते तदध्यात्ममव्ययीभावः, ऽध्यात्मस्य लेशोऽध्यात्मलेशस्तत्पुरुषो नाभवदिति द्वाविंशतितमवृत्तार्थः ॥२२॥

टबार्थ : वैराग्यरङ्गो न गुरूदितेषु - संवेगरंग न हूओ गुरुवचननइं विषें; न दुर्जनानां वचनेषु शान्तिः - न दुष्टजन बोलितनें विषें शांति; नाध्यात्मलेशो मम कोपि देवः - अध्यात्मलेश हूओ नही हे देव !; तार्यः कथङ्कारमयं भवाब्धिः - तरइं किम संसारसमुद्र ॥२२॥

पूर्वे भवेऽकारि मया न पुण्य,- मागामिजन्मन्यपि नो करिष्ये ।
यदीदृशोऽहं मम तेन नष्टा, भूतोद्भवद्भाविभवत्रयीश ! ॥२३॥

॥ पूर्वे० ॥ व्याख्या ॥ हे नेतर्मया 'पूर्वे' अतिक्रान्ते 'भवे' जन्मनि 'पुण्यं' सुकृतं 'नाऽकारि' न निरमायि । कथमेतद् ज्ञायते? उच्यते-तादृग् सौख्याऽप्राप्तितो ज्ञातम् । तथा 'आगामि जन्मनि' भाव्यऽवतारेपि, आगमिष्यतीत्येवंशीलमागामि तत्पुरुषः, आगामि च तज्जन्म चागामिजन्म कर्मधारयस्तस्मिन् । 'पुण्यं नो' नैव 'करिष्ये' विधास्ये। कथमेतद् ज्ञातं ? उच्यते; वर्त्तमानभवस्वरूपं तु 'दत्तं न दानं परिशीलितं तु' इत्यादिना प्रतिपादितं, अस्मिन् जन्मनि पुण्याऽकरणादग्रेऽप्यहं न करिष्ये । यतः पुण्येन पुण्यं वर्धते, पापेन पापमिति । यदिति यस्मात् ईदृश इति पुण्योपार्जनविवर्जितोऽहमस्मीति शेषः । तेन कारणेन मम 'भूतोद्भवद्भा-विभवत्रयी' भूतोऽतिक्रान्तः, उद्भवन् वर्त्तमानो भवः, आगामी, ईदृशा ये भवास्तेषां त्रयी-त्रिकं; भूतश्चोद्भवंश्च भावी च भूतोद्भवद्भाविनो द्वन्द्वः । भूतोद्भवद्भाविनश्च ते भवाश्च भूतोद्भवद्भाविभवाः कर्मधारयः; भूतोद्भवद्भाविभवानां त्रयी भूतोद्भवद्भाविभवत्रयी तत्पुरुष इति त्रयोविंशतितमवृत्तार्थः ॥२३॥

टबार्थ : पूर्वे भवेऽकारि मया न पुण्यं - पूर्वभवइं मइं पुण न कीधऊ; आगामिजन्मन्यपि - आवतइं भवइं पण नही; नो करिष्ये - करीस; यदीदृशोऽहं - जो एहवो छुं तो; मम तेन नष्टा - माहरा नाठा; भूतोद्भवद्भाविभवत्रयीश - अतीत अनागत वर्त्तमांन भवत्रयी हे नाथ ! ॥२३॥

किं वा मुधाऽहं बहुधा सुधाभुक्- पूज्य ! त्वदग्रे चरितं स्वकीयं ।
जल्पामि यस्मात् त्रिजगत्स्वरूप - निरूपकस्त्वं कियदेतदत्र ॥२४॥

॥ किं वा० ॥ व्याख्या ॥ 'हे सुधाभुक्पूज्य !' हे देवाचार्य्य(देवार्च्य) ! सुधां भुञ्जते इति सुधाभुज-स्तत्पुरुषः, सुधाभुग्भिः पूज्य सुधाभुक्पूज्यस्तत्पुरुषस्तस्य सम्बोधनं वेति पक्षान्तरे । 'त्वदग्रे' भवत्पुरतः; तवाग्रे त्वदग्रे तत्पुरुषः । 'स्वकीयमात्मीयं; स्वकस्येदं स्वकीयं, चरितं-चरित्रं, मुधा वृथा बहुधा नानाप्रकारेण, बहवः प्रकारा अस्येति बहुधा । ऽहं किं जल्पामि - कथयामि ? यस्मात्कारणात्त्वं वर्त्तसे । त्वं किंलक्षणः ? 'त्रिजगत्स्वरूपनिरूपकः' त्रिभुवनलक्षणकथकः; त्रयाणां जगतां समाहारस्त्रिजगत् द्विगुः; त्रिजगतः स्वरूपं त्रिजगत्स्वरूपं तत्पुरुषः; त्रिजगत्स्वरूपस्य निरूपकस्त्रिजगत्स्वरूपनिरूपकस्तत्पुरुषः तस्मादत्रेति त्वयि विषये एतदिति मदीयचरित्रं; कियदिति कियत्प्रमाणमस्ति ? यस्मात् सर्वेषां त्रिभुवनजनानां स्वरूपं त्वं जानासीति चतुर्विंशतितमवृत्तार्थः ॥२४॥

टबार्थ : किंवा मुधाऽहं बहुधा सुधाभुक् - सुं वा अथवा घणुं अमृतभुक्; पूज्य त्वदग्रे - हे पूज्य तुझ आगल; चरितं स्वकीयं - चरित्र आपणुं; जल्पामि यस्मात्त्रिजगत्स्वरूपं - कहुं जेह भणी त्रिजगत्स्वरूप; निरूपकस्त्वं कियदेद(त)दत्र - प्ररूपक तुं केतलो संसारमांहइं ॥२४॥

दीनोद्धारधुरन्धरस्त्वदपरो नास्ते मदन्यः कृपा-
पात्रं नात्र जने जिनेश्वर ! तथाप्येतां न याचे श्रियम् ।
किंत्वर्हन्निदमेव केवलमहो सद्बोधिरत्नं शिवं,
श्रीरत्नाकर ! मङ्गलैकनिलय ! श्रेयस्करं प्रार्थये ॥२५॥

॥ इतिश्रीसाधारणजिनस्तवनं रत्नाकरसूरिविरचितम् ॥

॥ दीनो० ॥ व्याख्या ॥ 'हे जिनेश्वर !' हे केवलीश ! जिनानामीश्वरो जिनेश्वरस्तत्पुरुषस्तस्य सम्बोधनं, 'त्वदपरो' भवदन्यः, त्वत् अपरस्त्वद-परस्तत्पुरुषः त्वदिति पृथग्पदं वा पुरुषो 'नास्ते' न वर्त्तते पुरुषः । किं लक्षणो ? 'दीनोद्धारधुरन्धरो' दुःस्थितोद्धरणतत्परः । दीनानामुद्धारो दीनोद्धार-स्तत्पुरुषः, धुरन्धरतीति धुरन्धरस्तत्पुरुषः, दीनोद्धारधुरन्धरो दीनोद्धारधुरन्धर-स्तत्पुरुषः, ऽत्र इह, 'जने' लोको(के) 'मदन्यो' मद्भिन्नो मत् अन्यो मदन्यस्तत्पुरुषः । मदिति पृथग्पदं वा । पुरुषो नास्ति न वर्त्तते पुरुषः । किंलक्षणम् 'कृपापात्रं' दयास्थानं ? कृपायाः पात्रं कृपापात्रं तत्पुरुषः । यद्यप्येतदस्ति 'तथापि एतां' गजवाजिकोशादिकां जगव्(त्)प्रसिद्धां 'श्रियं' लक्ष्मीं न ययाचे

न प्रार्थयामि । तु पुनः किमिति विशेषार्थे । 'हे अर्हन्!' हे भगवन् ! 'हे शिवश्रीरत्नाकर !' हे मोक्षलक्ष्मीसमुद्रा (द्र!) शिवस्य श्रीः शिवश्रीस्तत्पुरुषः, रत्नानामाकरो रत्नाकरस्तत्पुरुषः । शिवश्रियो रत्नाकरः शिवश्रीरत्नाकर-स्तत्पुरुषस्तस्य सम्बोधनम् । 'हे मङ्गलैकनिलय !' हे भद्रैक मन्दिर ! एकश्चासौ-निलयः(च) कर्मधारयः, मङ्गलानामेकनिलयो मङ्गलैकनिलयस्तत्पुरुषस्तस्य सम्बोधनम् । इदं 'सद्बोधिरत्नं' प्रधानजिनधर्मप्राप्तिचिन्तामणिः, बोधिरेव रत्नं बोधिरत्नं कर्मधारयः; सच्च तद्बोधिरत्नं च सद्बोधिरत्नं कर्मधारयः । पुनर्द्वि(र्द्वि)तीयाज्ञापनाय तदिति । सदिति पृथक् पदं वा बोधिरत्नस्य विशेषणीभूतम् । सद्बोधिरत्नं किंविशिष्टम् ? 'श्रेयस्करं' मोक्षकारकम् । श्रेयः करोतीति श्रेयस्करं तत्पुरुषः । पुनर्द्वितीयाज्ञापनाय तदिति । 'अहो' इति सम्बोधने, 'एवेति निश्चये । 'प्रार्थये' याचे । कथम् ? केवलमद्वितीयं, 'शिवश्री रत्नाकरे'ति सम्बोधनं कथयता स्तोत्रकर्त्रा स्वनामाऽसूचि **श्रीरत्नाकरसूरि**रिति पञ्चविंशतितमवृत्तार्थः ॥२५॥

श्रीमत्तपागणगगना-ङ्गणदिनमणि**विजयसेनसूरी**णां ।
शिष्याणुना विरचिता, वृत्तिरियं **कनककुशले**न ॥१॥
ससूत्रवृत्तेर्ग्रन्थाग्रं, श्लोकसङ्ख्या शतत्रयी ।
प्रत्यऽक्षरं गणनया, सञ्जाताऽस्मिन् स्तवोत्तमे ॥२॥
अङ्कतोपि ३०० इतिश्री साधारणजिनवरस्तवनम् ॥

टबार्थ : दीनोद्धारधुरन्धर - दीनभव उधरवा धोरी; स्त्वदपरो- तुं थकी अनेरो; नास्ते मदन्य - कोई नथी परोपकारी; कृपापात्रं नात्र - अनेरुं कृपानुं पात्र नथी; जने जिनेश्वर तथाप्येतां न याचे श्रियं - हे जिनेश्वर ! तो पिण एतुं न वाछुं लक्ष्मी; किन्त्वर्हन्निदमेव केवलं - किसुं तु पुन एह जिने केवल; महो ! सद्बोधिरत्नं शिव - रूडूं बोधबीज मोक्षश्री; श्रीरत्नाकरमङ्गलैकनिलयः - हे रत्नाकर ! हे मङ्गलीक निलय; श्रेयस्करं प्रार्थये - कल्याण करो वांछऊ ॥२५॥

इतिश्री साधारणजिनस्तोत्रसम्पूर्णः - इति श्री सर्वजिनेश्वरस्तुतिरूप स्तोत्र सम्पूर्णः ।

संवत् १८१० ना वर्षे कार्त्तिकशुदि ५ दिनइं बूधवारइं - ग्रन्थाग्रंथ १०१,
संवत १८१० वर्षे कालि शूद ५ बूधवारइं, लिखितं संघवी फतेचंद
सूरसंघ श्री पालणपुरमधइं शुभं भवतु । श्रीरस्तुः ॥

श्रीजिनवल्लभसूरिरचितं
प्रश्नोत्तरशतम् (सटीकम्)

- सं. मुनि रत्नकीर्तिविजय
मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय

खरतरगच्छीय श्रीजिनवल्लभसूरिजी-विरचित 'प्रश्नोत्तरशतम्'काव्य प्रहेलिकामय विशिष्ट रचना छे. आ काव्य पर रचायेली अनेक टीकाओ ज आ काव्यनी प्रसिद्धिनो पुरावो छे. काव्यना नाममां सो-नी संख्या सूचित थती होवा छतां, काव्यनी प्रायः दरेक वाचनामां दोढसोथी पण वधु श्लोक मळे छे. अत्रे सम्पादित सटीक वाचनामां १५८ श्लोको छे.

सम्पादित करेली अज्ञातकर्तृक टीका अवचूरि स्वरूपनी छे. मूळ काव्यमां अेक के बे श्लोकमां अेक साथे घणा बधा प्रश्नो पूछी तेना जवाब तरीके कूटाक्षरो लखवामां आव्या छे. आ कूटाक्षरोमांथी सन्धिविच्छेद, अक्षरोनी आगळ-पाछळ गोठवणी वगेरे द्वारा दरेक प्रश्ननो जवाब मेळववानी रीत टीकामां सरस रीते देखाडवामां आवी छे. टीका प्रमाणमां घणी संक्षिप्त होवा छतां वांच्या पछी अस्पष्टता लगभग नथी रहेती, ते अेनी विशेषता छे.

अत्रे सम्पादनमां कूटाक्षरमय जवाब घाटा अक्षरे छापवामां आव्यो छे. वाचकोनी सरळता माटे श्लोकगत प्रश्नो अने टीकागत उत्तरोने अलग-अलग करी दरेकने क्रमांक आपवामां आव्या छे. केटलांक स्थाने चित्रालंकारनी आकृतिओ प्रतमां हती ते प्रमाणे मूकी छे.

आ टीकानुं सम्पादन वि. १६१८मां लखायेली हस्तप्रत परथी करवामां आव्युं छे. प्रत अत्यन्त अशुद्ध अने त्रुटित पाठ धरावे छे. जो म. विनयसागरजी अने आ. सोमचन्द्रसूरिजी द्वारा सम्पादित थयेला, आ ज काव्यनी अन्य टीका साथेना 'प्रश्नोत्तरैकषष्टिशतककाव्यम्' नामना पुस्तकनी सहाय न होत तो मात्र आ प्रतना आधारे प्रस्तुत स्वरूपनुं सम्पादन अशक्य ज हतुं. काव्य अने टीकामां शुद्धीकरण, त्रुटित अंशोनी पूर्ति व. आ पुस्तकने सहारे ज थयुं होवाथी तेओनुं अत्रे कृतज्ञभावे स्मरण करीअे छीअे.

क्रमनखदशकोद्यद्दीप्रदीप्तिप्रतानै-र्दशविधतनुभाजामुज्ज्वलं मोक्षमार्गम् ।
युगपदिव दिशन्तं पार्श्वमानम्य सम्यक्,
कतिचिदबुधबुद्ध्यै वच्म्य[थ?][प्र]श्नभेदान् ॥१॥
[१]कीदृग्वपुस्तनुभृतामथ [२]शिल्पि-शिक्य-देहानुदाहरति काध्वनिरत्र कीदृग्? ।
[३]काश्चाऽऽरु[ह]न् समवसृत्यवनौ भवाम्बु-मध्यप्रपातिजनतोद्धृतिरज्जुरूपाः? ॥२॥

जिनदन्तरुचयः ।

१. जिनत्- हानिं गच्छत् । ज्या हानौ, शन्तृ इ, ना विकरणे, ग्रहिज्यावयी-त्यादिना... [सम्प्रसारणम्], दीर्घेत्यादिना दीर्घत्वम्, प्वादीत्या[दि]ना ह्रस्वत्वम्, क्र्यादीत्यादिना आकारलोपः । २. रुश्च चश्च यश्च रुचयास्तेऽन्ते यस्य काध्वनेः । ततो यथाक्रमं 1 कारु - 2 काच - 3 काय इति भवति । ३. अर्हद्दशनदीप्तयः ॥२॥

[१]सश्रीकं यः कुरुते स कीदृगित्याह जलचरविशेषः ।
[२]अप्सु ब्रुडत्किमिच्छति? [३]कीदृक्कामी? च [४]किं वाञ्छेत्? ॥३॥

समुद्रतरणम् ।

१. सह मया- लक्ष्म्या वर्त्तते इति समः । तं करोति इन्, ततः क्विप् । उद्रः कश्चिज्जीवविशेषः । हे उद्र!, सम् । २. तरणम्- प्लवनम् । ३. सह मुदा-हर्षेण वर्त्तते यः स समुद् । ४. कामी रते- मोहने रणं- युद्धम् ॥३॥

[१]कीदृक् पुष्पमलिव्रजो न भजते? [२]वर्षासु केषां गति-
र्न स्यादध्वनि? [३]कं श्रितश्च कुरुते कोकं सशोकं रविः? ।
[४]लङ्केशस्य किल स्वसारमकरोद् रामानुजः कीदृशीं?
[५]केषां वा न [मनो]मुदे मृगदृशः शृङ्गारलीलास्पृशः? ॥४॥

अपरागमनसाम् ।

१. अपगतो रागः- किञ्जल्को यस्मात् तदपरागम् । २. अनसां- शकटानाम् । ३. अपरस्यां दिशि अगः- पर्वतः अपरागस्तम् । ४. अनसां- नासारहिताम् । नासाया नस् विशेषलक्षणतः । ५. अपगतो रागो मनसि- चित्ते येषां ते अपरागमनसस्तेषाम् । द्विर्व्यस्तसमस्तजातिः ॥४॥

[१]प्रभविष्णुविष्णुजिष्णुनि युद्धे कर्णस्य कीदृगभिसन्धिः? ।
[२]नकुलकुलसङ्कुलभुवि प्रायः स्यात् कीदृगहिनिवहः? ॥५॥

विलसदनरतः ।

१. अश्च विष्णुर्नरश्चाऽर्जुनस्तौ अनरौ । विलसतौ च तौ अनरौ च, तस्यति-क्षयं नयति इति [क्विप्] । धातुत्वान्न दीर्घः । २. बिलसदनरतः- छिद्रगृहासक्तः ॥५॥

[१]ब्रूतो ब्रह्मस्मरौ के रणशिरसि जिताः केन जेत्राऽऽह [२]विद्वा-
नुद्यानं स्यान्न कीदृग्? [३]जलधिजलमहो कीदृशं स्यान्न गम्यम्? ।
[४]को मां वक्त्याऽऽह कृष्णः? [५]क्व सति पटु वचः? स्यादुतः केन वृद्धि-
[७]स्त्याज्यं कीदृक् तडागं? [६]नतिमति लघु[का] किं करोत्युत्कटं किम्? ॥६॥

वीराज्ञाविनुदतिपापम् । शृङ्खलाजातिः ।

१. उश्च इश्च वी - हे वी! । वीराः- सुभटाः । केन जेत्रा? राज्ञा- भूपेन। २. जानातीति ज्ञः - हे ज्ञ! । न विद्यन्तेऽवयः पक्षिणो यत्र तत् अवि उद्यानं न भवति । ३. विगता नौर्बेटिका यत्र तत् विनु । ४. नौतीति नुत् । हे आ!-विष्णो! यस्त्वां नौति स वक्ति । ५. दति- दशने सति । दन्तस्य दतीति दत् । पटुवचनो भवतीत्यर्थः । ६. तिपा- तिप्रत्ययेन, 'उतो वृद्धि'रित्यादिना । ७. अपगताः आपः- पानीयानि यत्र तत् पापम् । 'वष्टी'त्यादिना अलोपः । [८. वीराज्ञा उत्कटं पापं विनुदति ।] ॥६॥

[१]दृष्ट्वा राहुमुखग्रस्यमानमिन्दुं किमाह तद्दयिता? ।
[२]असुमेति पदं कीदृक् कामं लक्ष्मीं च बोधयति? ॥७॥

अवतमसम् ।

१. अवत- रक्षत मसं- चन्द्रम् । २. न विद्यन्ते उश्च अश्च तश्च मश्च सश्च-वतमसो यत्र तत् अवतमसं, ततो हे ए!- काम!, हे इ!- लक्ष्मि! इति भवति ॥७॥

[१]कमभिसरति लक्ष्मीः? [२]किं सरागैरजय्यं?,
[३]सकलमलविमुक्तं कीदृशं ज्ञानमुक्तम्? ।
[४]सततरतविमर्दे निर्दये बद्धबुद्धिः,
किमभिलषति कान्ता? [५]किं च चक्रे हनूमान्? ॥८॥

अक्षरणम् । चलद्बिन्दुजातिः ।

१. अं- विष्णुम् । २. अक्षं- इन्द्रियम् । ३. अक्षरं- ज्ञानम् । न क्षरति- चलतीति । ४. अक्षरणं- अचलनम् । ५. अक्षैः- पाशैः रणं- सङ्ख्यं सङ्ग्रामो वा ॥८॥

भूरापृच्छति किल चक्रवाकमेषोऽपि भूमिमप्राक्षीत् ।
[१]पीतांशुकं किमकरोत् कुत्र? [२]क्व नु मादृशां वासः? ॥९॥

कोकनदे ।

१. हे को!- पृथिवि!, अकनत्- अशोभत ए- विष्णौ । २. हे कोक!- चक्रवाक!, नदे- ह्रदे ।

[१]हरि-रति-रमा यूयं कान् किं कुरुध्वमदोऽक्षरं,
किमपि वदति? [२]भ्रेजे गीतश्रियाऽपि च कीदृशा? ।
[३]जिनमतजुषां का स्यादस्मिन् कियच्चिरमङ्गिनां?,
[४]गतशुभधियां का स्यात् कुत्राऽभियोगविधायिनाम् ॥१०॥

यानताम स समतानया विभुता सदा दासता भुवि । मन्थानकजातिः ।

१. ईश्च इश्च अश्च यास्तान् अताम- गच्छाम हे स! । हरिः ईं- लक्ष्मीं, रतिः इं- कामं, लक्ष्मीः अं- विष्णुं यातीत्यर्थः । २. समः तानो यस्यां सा समताना, तया । ३. विभुता नायकत्वम्, सदा सर्वकालम् । ४. दासता कर्मकरत्वम्, भुवि पृथिव्याम् ॥१०॥

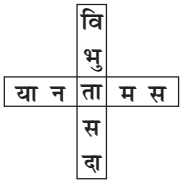

[१]प्रतिवादिद्विरदभिदे गुरुणेह किमक्रियन्त के कस्य? ।
[२]उरशब्दः कल्याणद-बल-हिम-शृङ्गान् वदति कीदृग्? ॥११॥

आदिश्यन्तरवविशिखानुः ।

१. आदिष्टा, रवविशिखाः- शब्दबाणाः, नुः- पुरुषस्य । २. न विद्यते उर्यत्र स अनुः । आदौ शिः अन्तरे- मध्ये वश्च विश्च शिश्च खश्च यस्य स चाऽसौ अनुश्च स तथा । ततो यथाक्रमं शिवरः शिबिरं शिशिरं शिखरं इति भवति ॥११॥

[१]हरति क इह कीदृक् कामिनीनां मनांसि?,
[२]व्यरचि सचिवभावः केन [धू]मध्वजस्य? ।
[३]क्षयमुपगमिता रुक् कीदृशेनाऽऽतुरेण?,
[४]प्रसरति च विबाधा कीदृशीहाऽर्शसानाम्? ॥१२॥

नायुवा वायुना जायुपा पायुजा ।

१. ना- पुरुषः युवा- तरुणः । २. वायुना- वातेन । ३. जायु- औषधं पिबति, विच्, जायुपाऽनेन । ४. पायौ- अपाने जाता- पायुजा ॥१२॥

वाजि-बलीवर्द-विनाश-सुष्ठुनिष्ठुर-मुरद्विषो यमिह ।
प्रश्नं विदधुर्वपुषस्तस्मिन्नेवोत्तरमवापुः ॥१३॥

हेतुरङ्गमोक्षान्तसुखराजिनयेकः ।

१. मोक्षान्तं च तत्सुखं च मोक्षान्तसुखम्, तस्य राजिः श्रेणिस्तस्यां नये प्रापणे, हे अङ्ग!- शरीर!, हेतुः- कारकं कः? । तुरङ्गमश्चाऽश्वं(श्वः), उक्षा च गौः, अन्तश्चाऽवसानम्, सुखरं चाऽतिकठिनम्, अश्च विष्णुः, ते तथा, तस्य सम्बोधनम् - हे तुरङ्गमोक्षान्तसुखराः!, जिन एकः ॥१३॥

[१]क्रव्यादां केन तुष्टिर्जगदनभिमता का? [३]रिपुः कीदृगुग्रः?,
[५]कं नेच्छन्तीह लोकाः? प्रणिगदति गिरिर्वृश्चिकानां विषं क्व? ।
[६]कुत्र क्रीडन्ति मत्स्याः? प्रवदति मुरजित् कापिले भोगभाक् कः?,
कीदृक् का कीदृशेन प्रणयभृदपि चाऽऽलिङ्ग्यते न प्रियेण? ॥१४॥

अस्त्रातास्त्रीमङ्गलेप्सुना । अष्टदलकमलम् ।

१. अस्ना- मांसेन । २. अता- अलक्ष्मीः । ३. अस्त्रं- शस्त्रं विद्यते यस्य स अस्त्री । ४. अमं- रोगम् । ५. हे अग!- पर्वत!, अले- पुच्छे । ६. अप्सु- पानीयेषु । ७. हे अ!- विष्णो!, [1]ना-पुरुषः । [८. अस्नाता स्त्री मङ्गलेप्सुना नाऽऽलिङ्ग्यते ।] ॥१४॥

1. आत्मा इति टि० ।

[१]कीदृश्यो नाव इष्यन्ते तरीतुं वारि वारिधेः? ।
[२]अशिवध्वनिराख्याति तिर्यग्भेदं च कीदृशः? ॥१५॥

अपराजयः ।

१. न विद्यन्ते छिद्राणि यासु ता अपराजयः ।

२. अकारात् परो अच्- स्वर इकारः असौ अपराच्, तस्याऽयः- क्षयो यत्राऽशिवध्वनौ स तथा । ततोऽश्व इति भवति ॥१५॥

[१]पीनकुचकुम्भलुभ्यन् किमाह भगिनीं स्मरातुरः [१]कौलः? ।
[२]हर-निकर-पथ-स्वः-सृष्टिवाचि ननर्गपदं कीदृग्? ॥१६॥

भवमास्वसादिशस्तनम् ।

१. भव- स्तात्, मा निषेधे, स्वसा- भगिनी, दिश- प्रयच्छ स्तनं- कुचम् । २. शस्तौ- क्षिप्तौ नौ[२] यत्र तत् शस्तनम् । भश्च वश्च मा च स्वश्च सश्च ते आदौ यस्य तत् भवमास्वसादि तच्च तत् शस्तनं च यथाक्रमं भर्ग-वर्ग-मार्ग-स्वर्ग-सर्ग इति ॥१६॥

[१]नाभ्याम्भोजभुवः स्मरस्य च रुचो विस्तारयेति श्रियः,
पत्युः प्रत्युपदेशनं कथमथो[२] पत्नीष्यते कीदृशी? ।
इत्याख्यत् कमला, तथा [३]कलियुगे कीदृक् कुराज्यस्थितिः?,
[४]कीदृश्याऽहनि चण्डभास्करकरे[3] नक्षत्रराज्याऽजनि? ॥१७॥

विभावितानया । गतागतद्विर्गतः ।

१. उश्च इश्च वी, व्योर्भा- दीप्तयः विभास्ता वितानय- विस्तारय, हे अ!- विष्णो! २. या- पत्नी नता विभौ- भर्त्तरि, हे इ!- हे लक्ष्मि! । ३. विभावितः- प्रकटितः अनयो यस्यां सा । ४. विगतो भाया वितानो- विस्तारो यस्याः सा तथा तया ॥१७॥

[१]प्रभुमाश्रित्य श्रीदं किमकुर्वन् के कया समं लक्ष्मि!? ।
[२]कह केरिसया के मरणमुवगया लुद्धयनिरुद्धा? ॥१८॥

---

1. नास्तिकमतिः इति टि० । 2. नकारौ इति टि० । 3. किरणे इति टि० ।

समगंसतासामया ।

१. समगंसत- गतवन्तः असा- अलक्ष्मीका मया- लक्ष्म्या । २. समगं एककालं सत्रासा मृगाः ॥१८॥

वसुदेवेन मुररिपुयै(यैं)र्हिंसाहेतुतां श्रियां पृष्टः ।
तेर्हिं विअ अक्खरेर्हिं से उत्तरं सिद्धं ॥१९॥

तायकमनयंतरयम् ।

ता- लक्ष्म्यः, हे अ!- कृष्ण!, कं पुरुषमनयन्त- नीतवत्यः रयं-क्षयं इति प्रश्नः । इदमुत्तरम्- हे तात!, क्रमनययोरन्तः क्रमनयान्तः, तत्र रतं पुमांसम् ॥१९॥

[१]किं प्राहुः परमार्थतः कमृषयः? [२]किं दुर्गमं वारिधे-
र्विद्या [३]कं न भजन्ति? [४]रागिमिथुनं कीदृक् [५]किमर्द्धं स्मृतम्? ।
[६]रक्षांसि स्पृहयन्ति किं? तनुमतां [७]कीदृक् सुखार्थादिकं?,
कीदृक् कर्षकलोकहर्षजनकं न व्योम वर्षास्वपि ॥२०॥

विगतजलदपटलम् । विपरीतमष्टदलकमलम् ।

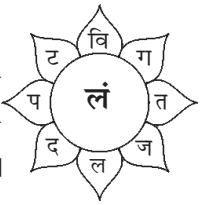

१. विलं- विवरम् गलं- कण्ठम् । २. तलं- पर्यन्तम्। ३. जलं- जडं- मूर्खम् । ४. ललं-ईप्सितम्- सविलासमित्यर्थः । ५. दलं- खण्डम् । ६. पलं- मांसम् । ७. टलं- चञ्चलम्। [८. विगतजलदपटलं- अपगत-मेघवृन्दम्] ॥२०॥

[१]अभिसारिकाऽऽह किञ्चित्तरुणाः किं कुर्वतेऽत्र कं कस्याः? । **समयन्ते** ।
[२]रतिसङ्गरे मृगदृशः किं किमकार्षीत् कथं कामी? ॥२१॥ **अधरदलम्** ।

१. समयन्ते- समागच्छन्ति समयं- सङ्केतम् ते- तव । २. अधरदलं- ओष्ठपुटं अधरत्- धृतवान्, अलं- अत्यर्थम् ॥२१॥

[१]कामाः प्राहुरुमापते! तव रुषः प्रागत्र कीदृक् सती,
का केषां किमकारि वारितनुदे रत्याः स्वचेतोमुदे? ।
[२]पश्चादुद्भव-जानुसम्भवि-नरान् दैत्या-ऽन्त्यदंष्ट्रा-गजान्,
मन्दं च क्रमशो मुजध्वनिरगात् कीदृक् क्व कस्मिन् सति? ॥२२॥

अजामदहतभापूर्वोमेने ।

१. हे अजाः!- कामाः!, मेने- मनिता, का? पूः- शरीरं, कीदृक्? मदहतभा, मया अहता भाः- प्रभा यस्याः, केषां? वो- युष्माकम् । २. अजामदहतभाः पूर्वे यस्य मुजध्वनेः स, तथा मकारस्य नकारे सति ॥२२॥

जलस्य जारजातस्य हरितालस्य च प्रभुः ।
मुनिर्यं प्रश्नमाचष्टे तत्रैव प्रापदुत्तरम् ॥२३॥

काकुलालेनमृद्यते ।

कं च अकुलश्च आलश्च ते तथा तेषां इनः- स्वामी स तथा, तस्य सम्बोधनम्- हे काकुलालेन! । एतद् यतेर्विशेषणम् । मृद्- मृत्तिका ॥२३॥

[१]ब्रूते पुमांस्तन्वि तवाऽधरं कः क्षणोति? [२]को वा मनुजव्रजच्छित्? ।
[३]प्रिये स्वसान्निध्यमनभ्युपेते किमुत्तरं यच्छति पृच्छतः श्रीः? ॥२४॥

नारदः । त्रिगर्त्तः ।

१. हे नः!- पुरुष!, रदो- दशनः । 'रो रे लोप'मित्यादिना दीर्घः । २. नराणां समूहो नारम्, तं द्यति- खण्डयति यः स तथा । ३. न आरत्- नागतः । ऋ मृ गतावित्यस्य ह्यस्तनीप्रथमपुरुषैकवचने विकरणलोपे अवर्णस्याऽऽकार इति वृद्धौ च रूपम् । अः- विष्णुः ॥२४॥

[१]किमिष्टं चक्राणां? [२]वदति बलमर्कः किमतनोत्?,
[३]जिनैः को दध्वंसे? [४]विरहिषु सदा कः प्रसरति? ।
[५]भरं धौरेयाणां निरुपहतमूर्त्तिर्वहति कः?,
[६]सुरेन्द्राणां कीदृक् भवति जिनकल्याणकमहः? ॥२५॥

असममोदावहः । मञ्जरीसनाथजातिः ।

१. अहर्दिनम् । २. हे सहः!- बल! । सहस्शब्दो बलवाचकः । महस्तेजः । ३. मोहः । ४. दाहो- विरहसम्भवं दहनम् । ५. वहो- गलप्रदेशः । ६. असमं- असदृशं मोदं- प्रमोदमावहति ॥२५॥

[१]प्राह द्विजो गजपतेरुपनीयते का ? [२]पात्री प्रभुश्च जिनपङ्क्तिरवाचि कीदृक्? । [३]कीदृग्विधेह वनिता नृपतेरदृश्या? [४]प्रस्थास्नुविष्णुतनुरैक्षत कीदृशी च? ॥२६॥

विप्रविधाविनाविग्राविप्रधानाग्रा । पद्मजातिः ।

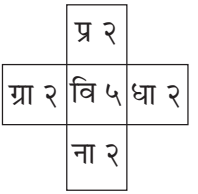

१. हे विप्र!- द्विज!, विधा- हस्तिपिण्डः । २. अवतीति ऊ- रक्षकः, इना- स्वामिनी, विना । ३. विग्रा- विगतनासिका । ४. विः- पक्षी प्रधानम् अग्रे यस्याः सा तथा ।

[१]वदति विहगहन्ता कः प्रियो निर्धनानां?,
[२]भणति नभसि भूतः कीदृशः स्याद् विसर्गः? ।
[३]वदति जविनशब्दः कीदृशः सत्कवीन्द्राः,
कथयत जनशून्यं कज्जलं भर्त्सनं च? ॥२६॥

व्यन्तरादिव्यस्तः ।

१. हे व्यन्त!- पक्षिहन्तः!, रा- द्रव्यम् । २. दिवि भवो दिव्यः । दिगादिद्वारेण यप्रत्ययः । हे दिव्य!, स्तः- सकारं तस्यतीति क्विप् । ३. विश्च अंश्च तरश्च एते आदौ यस्य स तथा विरस्तः- क्षिप्तो यत्र स, स चासौ व्यस्तश्च स तथा [तथा च यथाक्रमं विजन-अञ्जन-तर्जन इति भवति ।] ॥२६॥

[१]वीतस्मरः पृच्छति कुत्र चापलं स्वभावजं? [२]कः सुरते श्रियः प्रियः? ।
[३]सदोन्मुदो विन्ध्यवसुन्धरासु क्रीडन्ति काः कोमलकन्दलासु? ॥२८॥

अनेकपावलयः ।

१. न विद्यते इः- कामो यस्याऽसौ अनिस्तस्य सम्बोधनं - हे अने!- निष्काम!, कपौ- वानरे । २. अस्य- विष्णोर्लय- आश्लेषः । ३. अनेकपा हस्तिनस्तेषामावलयस्तास्तथा ॥२८॥

[१]मूषिकानिकरः कीदृक् खलधानादिधामसु? ।
[२]भीरुसम्भ्रमकारी च कीदृगम्भोनिधिर्भवेत्? ॥२९॥

बिलसद्मकरः ।

१. बिलान्येव सद्मानि- गृहाणि बिलसद्मानि, तानि करोति । २. विलसन्तो मकरा यत्र स तथा ॥२९॥

[१]किं लोहाकरकारिणामभिमतं? [२]सोत्कर्षतर्षाकुलाः,
किं वाञ्छन्ति? [३]हरन्ति के च हृदयं दारिद्र्यमुद्राभृताम्? ।

[४]स्पर्द्धावद्भिरथाऽऽहवेषु सुभटैः कोऽन्योन्यमन्विष्यते?,
[५]जैनाज्ञारतदान्तशान्तमनसः स्युः कीदृशाः साधवः? ॥३०॥

अपराजयः । मञ्जरीसनाथजातिः ।

१. अयो- लोहम् । २. पयः- पानीयम् । ३. रायो- द्रव्याणि । ४. जयः । ५. न विद्यते परेषु आजिः- सङ्ग्रामो येषां तेऽपराजयः ॥३०॥

[१]पापं पृच्छति विरतौ को धातुः? [२]कीदृशः कृतकपक्षी? ।
[३]उत्कण्ठयन्ति के वा विलसन्तो विरहिणीहृदयम्? ॥३१॥

मलयमरुतः ।

१. हे मल!- पाप!, यम् । २. न विद्यते रुतं- शब्दितं यस्य स तथा । ३. मलयस्यपर्वतस्य मरुतो- वायवो मलयमरुतः- दक्षिणाऽनिलाः ॥३१॥

[१]केनोद्वहन्ति दयितं विरहे तरुण्यः? [२]प्राणैः श्रिया च सहितः परिपृच्छतीदम् । तार्क्ष्यस्य का नतिपदं? [३]सुखमत्र कीदृक्?,
[४]किं कुर्वताऽन्यवनितां किमकारि कान्ता? ॥३२॥

मनसा सानम विनता तानवि नमता असाबि । मन्थानान्तरजातिः ।

१. मनसा- हृदयेन । २. आनाः- प्राणाः मा- लक्ष्मीः ताभिः सह वर्त्तते इति सानमस्तस्य सम्बोधनं- हे सानम!, विनता स्त्री । ३. तनोर्भावस्तानवं, इमताच्चैत्यादिना अञ्, तानवं विद्यते यस्य तत्तानवि । ४. नमता- प्रणामं विदधता असावि- प्रेरिता । षू प्रेरणे इति ॥३२॥

	म ३	
वि ३	न ५	ता ३
	सा ३	

[१]भवति चतुर्वर्गस्य प्रसाधने क इह पटुतरः प्रकटः? ।
[२]पृच्छत्यङ्गावयवः कः पूज्यतमस्त्रिजगतोऽपि? ॥३३॥

नाभेयः । वर्द्धमानाक्षरजातिः ।

१. ना- पुमान् । २. हे नाभे!- अङ्गावयव!, नाभेयः- आद्यजिनः ॥३३॥

वैदिकविधि[1]...

---

1. अस्य काव्यस्य मुद्रितपुस्तके (पुण्यसागरकृतटीकासहित, सं.- म. विनयसागर) 'वैदिकविधिविशस्त....' इति श्लोकः ३४ क्रमाङ्के दृश्यते । स एवाऽत्र लिखितुमिष्टः स्यादिति सम्भाव्यते । 'औषधं प्राह' इति श्लोकस्तत्र ३५ क्रमाङ्के ।

[१]औषधं प्राह रोगाणां मया कः प्रविधीयते? ।
[२]जामातरं समाख्याति कीदृशो वठरध्वनिः? ॥३४॥

अगदशमः ।

१. हे अगद!- औषध!, शम- उपशमः । २. न विद्यते गकाराद्दशमो ठकारो यत्र स अगदशमस्ततो वर इति भवति ॥३४॥

[१]अग्रे गम्येत केन? [२]प्रविरलमसृणं कं प्रशंसन्ति सन्तः?,
[३]पाणिर्ब्रूते जटी कं प्रणमति? [४]विधवा स्त्री न कीदृक् प्रशस्या? ।
[५]वक्ति स्तेनः क्व वेगो? [६]रणभुवि कुरुतः किं मिथः शत्रुपक्षा-
वुद्वे[७]गावेगजातारतिरथ वदति स्त्री सखीं किं सुषुप्सुः? ॥३५॥

हलासंस्तरंसारयेतः । अष्टदलकमलम् ।

१. हला- व्यञ्जनेन । २. हसं- ईषद्धसितम् । ३. हे हस्त!- कर!, हरं- शम्भुम् । ४. हसतीति हसा । ५. हे हर!- चौर!, हयेऽश्वे । ६. हतः, 'हन् हिंसागत्योः' वर्तमाना तसि रूपम् । [७. हला- हे सखि! संस्तरं- शयनीयं सारय- प्रगुणीकुरु इतः- अत्र ।] ॥३५॥

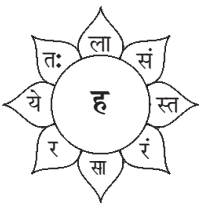

[१]व्यथितं किमाह सदयः क्षितकं क्षुत्क्षामकुक्षिमुद्वीक्ष्य? ।
[२]दारुणधन्वनि समरे कीदृक् कातरनरश्रेणिः? ॥३६॥

हावराकनिरशन । गतागतः ।

१. हा खेदे, वराक!- तपस्विन्! निरशन!- गतभोजन! । २. न- नो शरनिकरं बाणसङ्घातं आवहति या सा तथा ॥३६॥

[१]चन्द्रः प्राह वियोगवानकरवं किं रोहिणीं प्रत्यहं?,
[२]शम्भो! केन जवाददाहि सरुषा कस्याऽङ्गयष्टिः किल? ।
[३]शीघ्रं कैः पथि गम्यतेऽथ[४] कमला ब्रूते मुहुर्वल्लभ!,
ध्यानावेशवशादलाभि पुरतः कैर्वैश्वरूप्यं मम? ॥३७॥

मयैः । चतुःसमस्तम् ।

१. हे मस्!- चन्द्र! ऐस्[1]त्वम् । इण् गतौ, ह्यस्तनी सि, विकरणलोपे अवर्णस्याऽऽकार इति वृद्धौ रूपम् । २. मया एः- कामस्य । ३. मयैः- उष्ट्रैः । ४. हे मे!- लक्ष्मि!, यैर्विष्णुभिः[2] ॥३७॥

[१]गुरुरहमिह सर्वस्याऽग्रजन्मेति भट्टं,
समदम[3]मदयिष्यन् कोपि कुप्यन् किमाह? ।
[२]त्वमलदयपदं वा आश्रया-ऽभाव-मूर्च्छा-
कटक-नगविशेषान् कीदृगामन्त्रयेत? ॥३८॥

आविप्रवमाद्यत्वमदम् ।

१. आः खेदे, हे विप्र!- द्विज!, वम- मुञ्च आद्यत्वमदं- प्रथमत्वा-ऽहङ्कारम्। २. आश्च विश्च प्रश्च वश्च मश्च आदौ यस्य स चाऽसौ (तच्च तत्), न विद्यन्ते त्वश्च मश्च दश्च यत्र स च तम् (तच्च तद्) ॥३८॥

[१]कीदृग् मया सह रणे दैत्यचमूरभवदिति हरिः प्राह? ।
[२]लोको वदति किमर्थं का विदिता दशमुखादीनाम्? ॥३९॥

क्षीणारिहयवाहनाज । गतागतः ।

१. क्षीणानि अरीणां हयवाहनानि यस्यां सा तथा, हे अज!- हरे!। २. हे जन!- लोक!, आहवाय- सङ्ग्रामाय हरिणाक्षी- सीता ॥३९॥

[१]दृष्ट्वाऽग्रतः किमप्यवसादवन्तं,
स्वामी पुरःस्थितनरं किमभाषतैकम्? ।
[२]कश्चिद् ब्रवीत्यधिजिगीषुनृपा अकार्षीत्,
किं कीदृशो वदत राजगणोऽत्र केषाम्? ॥४०॥

अयंसीदतिरेकोनः ।

१. रे नः!- पुरुष! अयं सीदति कः? । २. अयंसीत्- उपरमितः, अतिरेकोऽधिको नोऽस्माकम् ॥४०॥

---

1. अगच्छः इति टि० । 2. अः विष्णुः, तद्भक्तैः ऐः वैष्णवैः - इति स्यात् सं. ।
3. मदं निवारयन् इति टि० ।

[१]सीरी पाणिं क्व धत्ते? [२]क्रतुरथ मुदगात् स्यात् कया देहिनां भी-
[३]ब्रूतेऽश्वः क्वाऽरिविष्णुर्व्यधित? [४]सविधगं हन्तुकामः किमाह? ।
[५]शम्भुं घ्नन्तं गजं द्राक् सदयऋषिरगात् किं नु काक्वा? तथाऽस्मिन्
हारं किं नाऽपि धत्से विरहिणि! नभसीत्यूचिषीं सा वदेत् किम्? ॥४१॥

हलेवर्षत्यायस्तेम्भोदेहारस्तीतः । द्वादशदलं पद्मम् ।

१. हले- लाङ्गले । २. हे हव!- क्रतो!, हे हर्ष!- मुद्!, हत्या- ब्राह्मणघातेन । ३. हे हय!- अश्व!, हस्ते- करे । ४. हंभो! आमन्त्रणे, हदे- पुरीषोत्सर्गं करोमि । 'हद पुरीषोत्सर्गे' इति धातोः । ५. हहा, अयं च दयाप्रकाशकः, हर!- शङ्कर!, हस्ती- गजो, हतो- विनाशितः, ६. हले!- सखि, वर्षति- वृष्टिं कुर्वति आयस्ते- विस्तीर्णे अम्भोदे- मेघे हारस्तीतः- आर्द्रभावं गतः ॥४१॥

[१]मधुरिपुणा निहते सति दनुजविशेषे तदनुगताः किमगुः? ।
[२]अभिदधते च विदग्धाः सत्कवयः कीदृशीर्वाचः? ॥४२॥

अमृतमधुराः ।

१. अमृत- प्राणत्यागं कृतवान् मधुर्दानवः [आः खेदे] २. अमृतवन्मधुराः ॥४२॥

[१]ब्रूते पुमान् मुरजिता रतिकेलिकोपे,
सप्रश्रयं प्रणमता किमकारि का काम्? ।
[२]दुःखी सुखाय पतिमीप्सति कीदृशं वा?,
[३]कामी कमिच्छति सदा रतये प्रयोगम्? ॥४३॥

नरनारीप्रियङ्करम् ।

१. हे नः!- पुरुष!, अनारि- नीता, नृ नये इति धातुः, का? ई- श्रीः, कां? प्रियम्- प्रणयं प्रीणतीति प्रीः, सम्पदादित्वात् क्विप् । २. कं- सुखं रातीति करस्तं पुमांसम् । ३. नरश्च नारी च तयोः प्रियं- प्रीतिं करोति यः स तथा, तम् ॥४३॥

[१]यूयं किं कुरुत जनाः स्वपूज्यमिति शिल्पिशिशु-खगौ ब्रूतः ।
[२]स्मरविमुखचित्तजैनः कथमाशास्ते जनविशेषम्? ॥४४॥

संनमामकारुकुमारवी । गतागतः ।

१. कारुकुमारश्च विश्च कारुकुमारवी, तयोः सम्बोधनम्, सन्नमाम-प्रणमाम । २. हे वीर! मा कुरु त्वं काममानसम् ॥४४॥

[१]सुभटोऽहं वच्मि रणे रिपुगलनालानि केन किमकार्षम्? ।
[२]चेटीप्रियो ब्रुवेऽहं किमकरवं काः स्वगुणपाशैः? ॥४५॥

असिनादासीः ।

१. असिना- खड्गेण(न) अदासीर्लूनवान् । २. असिनाः बद्धवान्, काः? दासीः । षिञ् बन्धने, ह्यस्तनी सि ॥४५॥

[१]भूषा कस्मिन् सति स्यात् कुचभुवि? [२]मदिरा वक्ति कुत्रेष्टिकाः स्युः?,
[३]कस्मिन् योधे जयश्रीर्युधि सरति? [४]रतिः प्राजने कुत्र नोक्ष्णः? ।
[५]कामद्वेषी ततोडुर्वदति दधि भवेत् कुत्र? [६]किं वा वियोगे,
दीर्घाक्ष्याः कोऽपि पीनस्तनघनघटितप्रीतिरन्यं ब्रवीति? ॥४६॥

हासुस्तनीसायताक्षीरे । व्यस्तं कमलमष्टदलम् ।

१. हारे । २. हे सुरे!- मदिरे!, स्तरे । ३. नितराम् ईरयति- क्षेपयति यः स नीरस्तस्मिन् । ४. सह आरया वर्त्तते इति सारस्तस्मिन् । ५. एः- कामस्य अरिः-शम्भुर्यरिस्तस्य सम्बोधनं - हे यरे!, हे तारे!- नक्षत्र!, क्षीरे । ६. हा खेदे, सुस्तनी- शोभनकुचा, सा आयताक्षी- दीर्घनेत्रा [रे इति सम्बोधने] ॥४६॥

[१]किं कुर्याः कीदृक्षौ रागद्वेषौ समाधिना त्वमृषे!? ।
[२]कीदृक्षः कक्षे स्यात् किल भीष्मग्रीष्मदवदहनः? ॥४७॥

तृणहानिकारी ।

१. कस्य- सुखस्याऽरी तृणहानि । तृह हिसि हिंसायाम्, पञ्चमी आनि रूपम् । [२. तृणानां हानिकारी] ॥४७॥

[१]शुभगोरसभूमीरभि[1] किमाह तज्ज्ञः स्मरेन्दिरापृष्टः? ।
[२]विरा(र)होद्विग्नः कामी निन्दन् दयितां किमभिधत्त११े? ॥४८॥

क्षीरादिमनोहारीमासु । गतागतः ।

१. क्षीरादि मनांसि हरतीत्येवंशीलं मनोहारि, इश्च मा च इमं तत्सम्बोधनं - हे इम!, आसु भूमिषु । २. सुमारी, हा खेदे, नोऽस्माकं मदिराक्षी ॥४८॥

इह के मृषाप्रसक्ता नरनिकरा इति कृते सति प्रश्ने ।
यत् समवर्णं तूर्णं तदुत्तरं त्वं वद विभाव्य ॥४९॥

केलीकरतामनुजनिवहाः ।

के अलीकरता मनुजनिवहाः- पुरुषसङ्घाः? । केलीकरस्य भावः केलीकरता तां अनु आश्रित्य जनिं- उत्पत्तिं वहन्ति ये ते जनिवहाः ॥४९॥

[१]बभ्रुः प्रभूततुरगान् स्वजनास्तवेति, राज्ञोदितः कृपणकोऽपलपन् किमाह? ।
[२]पीत्वाच्छलेन दशनच्छदमुग्रमानां, भर्त्ता किमाह दयितां किमपि ब्रुवाणाम्? ॥५०॥

अधरंतवाहमपिबंधवोनमे ।

१. नोऽधरन्त- न भृतवन्तः, वाहमपि- अश्वमपि, बन्धवो मे- मम। २. तवाऽधरमोष्ठमहमपिबम् । धवो- भर्त्ता न मे, साहङ्कारम् ॥५०॥

[१]श्रीराख्यदहं प्रियमभि किमकरवं? [२]का च कस्य जनयित्री? ।
[३]अदिवारी शब्दो वा कैस्त्यक्तः प्राह गृहदेशम्? ॥५१॥

यैः । त्रिः समस्तः ।

१. हे इ!- लक्ष्मि!, ऐः- अगच्छस्त्वम् । २. या- लक्ष्मीः, एः- कामस्य। ३. इश्च ईश्च अश्च यास्तैः [द्वार इति भवति ।] ॥५१॥

[१]कीदृक् सरः प्रसरदम्भसि भाति काले?,
[२]भुक्त्यर्थतेह विहिता कतमस्य धातोः? ।
[३]उत्कण्ठयेद् विरहिणं क इह प्रसर्प्पन्?,
[४]ब्रूते शिफाध्वनिरथ श्रियमत्र कीदृक्? ॥५२॥

---

1. लक्षीकृत्य इति टि० ।

विशदपञ्चमः । व्यस्त-द्विःसमस्तः ।

१. विशत्यः- प्रविशत्यः आपो यत्र तत् तथा। २. चमो अदने इत्यस्य । ३. विशदपञ्चमः- निर्मलपञ्चमरागः । ४. विगतशकारोच्चमं (विगतः शकारो दकाराच्च) पञ्चमः फकारो यत्र स तथा, 'या' इति भवति ॥५२॥

[१]वदति मुरजित् कुत्राता प्रिया वरुणस्य का?,
[२]स च भणति यः क्रुद्धो नैव द्विषः परिरक्षति ।
दशमुखचमू[ः] काकुस्थेन व्यधीयत कीदृशी?
[३]रवरवकवर्णाली कीदृग् ब्रवीति गतारतिम्? ॥५३॥

अपरावणा । वर्द्धमानाक्षरजातिः ।

१. हे अ!- विष्णो!, तथा हे अपः!- कुत्सितं पातीति अपः, कुत्सितार्थे नञ्, अपरा- पश्चिमा । २. न परान् अवतीति अपरावस्तस्य सम्बोधनं- हे अपराव!, न विद्यते रावणो यस्यां सा तथा । ३. अकारात् पराऽपरा, वकारयोर्णौ यत्र सा वणा, ततो [अ]रणरणक इति भवेत् ॥५३॥

[१]निःप्रस्वः (निःस्वः) प्राह लसद्विवेककुलजैः सम्यग् विधीयेत को?,
[२]मुग्धे! स्निग्धदृशं प्रिये! किमकरोः? [३]किं वा तदोष्ठं व्यधाः? ।
[४]लोकैः कोऽत्र निगद्यते [बलिवधूवैधव्यदीक्षागुरुः?,
[५]कीदृग् भूमिशुभासशब्द इह भो! विश्रम्भवाची भवेत्? ॥५४॥]

[**अतनवमदशमः** । द्विर्व्यस्तसमस्तजातिः ।]

[१. न विद्यते] ता- लक्ष्मीर्यस्याऽसावतस्तस्य सं० हे अत!, नवश्चासौ मदश्च स तथा, [तस्य] शमः । २. अतनवं- विस्तारितवती । ३. अदशम्- अधरचुम्बनमकरवम् । ४. अः- विष्णुः । ५. न विद्येते तकारान्नवमदशमौ यत्र स तथा, ततश्च 'विश्वास' इति भवति ॥५४॥

[१]शशिना प्रमदपरवशः पृच्छति कः स्वर्गवासमधिवसति? ।
[२]च्युतसत्पथाः किमाहुर्लौकिकसन्तो विषादपराः? ॥५५॥

मयानंदवशनाकी । गतागतः ।

१. मसा- चन्द्रमसा आनन्दः स तथा तेन वशः परवशस्तस्य सम्बोधनम्, नाकी । [२. किनाशवदनं याम वयम् ।]

[१]उष्ट्रः पृच्छति किं चकार मदृते कस्मिन् शमीवृक्षकः?,
[२]कीदृक् सन्नधिकं स्वभक्ष्यविरहे दुःखी किलाऽहं ब्रुवे? ।

[३]यूनः प्राह सरोजचारुनयना सम्भोगभोगक्रमे-
ष्वारब्धेऽधरचुम्बने मम मुखं यूयं कुरुध्वे किमु? ॥५६॥

हेमयाननंदवनेचलोलमक । गतागतः ।

१. हे मय!- उष्ट्र!, आननन्द- समृद्धि गतवान् वने । चलश्चञ्चलः, अलमत्यर्थम्, हेऽक!- दुःखसहित! [३. हे कमललोचने! तव वदनं नयामहे ।] ॥५६॥

[१]चक्री चक्रं क्व धत्ते? [२]क्व सजति कुलटा? [३]प्रीतिरोतोः क्व? [४]कस्मै,
कूपः खन्येत? [५]राज्ञां क्व च नयनिपुणैर्नेत्रकृत्यं निरुक्तम्? ।
[६]कन्दर्पापत्यमूचे रणशिरसि रुषा ताम्रवर्णः क्व कर्ण-
श्चक्षुश्चिक्षेप? विष्णुर्वदति वसुपुरःस्तेन! किं त्वं करोषि? ॥५७॥

[५]युज्यन्ते कुत्र मुक्ताः? [९]क्व च गिरिसुतयाऽसङ्गि? [१०]कस्मिन् महान्तो,
यत्नं कुर्वन्ति? [११]चौर्यं निगदति विदिता क्वैकदिक्तिग्मधारा? ।
[१२]कस्मिन् दृष्टे रटन्ति क्व च सति करभाः? [१३]पक्ष्मलाक्ष्याः किलोक्तः,
कश्चित् किं वा ब्रवीति स्मरशरनिकराकीर्णकायः सदेश्यान्? ॥५८॥

कजाक्षीवाचास्मानहहसहसाचुक्षुभदरे । षोडशदलं कमलं विपरीतंयुगलम् ।

१. करे- हस्ते । २. जारे- परस्त्रीगन्तरि । ३. क्षीरे- दुग्धे । ४. वारे- पानीयाय । वार् इत्ययं पानीयवाचकः । ५. चारे- चरे, राज्ञां चरनेत्रमद्वितीयमित्यर्थः । ६. स्मरस्याऽपत्यं स्मारिस्तस्य सम्बोधनं - हे स्मारे !, नरेऽर्जुने । ७. हे हरे!- विष्णो!, हरे- हृग् हरणे, वर्तमाना ए रूपम्, चोरयामि । ८. सरे । ९. हरे- शङ्करे । १०. सारे- प्रधाने । ११. हे चुरे!- चौर्य!, क्षुरे । १२. भरे- उपेये द्रव्ये, दरे- भये सति । १३. कजाक्षी स्त्री वाचा- वचनेनाऽस्मान् कर्मतापन्नान् अहह सहसा इत्यर्थेऽ(त्यव्यये, अचुक्षुभत्- क्षोभितवती । क्षुभ संवलने, पुष्पादिद्वारेण अण् ॥५७-५८॥

[१]जलनिधिमध्ये गिरिमभिवीक्ष्य क्षितिरिति व(वि)दन् किमाह विवादे? ।
[२]स्निग्धस्मितमधुरं पश्यन्ती हरति मनांसि मुनीनामपि का? ॥५९॥

नाचलोङ्गरसा । गतागतः ।

१. न अचलः- पर्वतोऽङ्ग!, रसा- पृथ्वी । २. सारङ्गलोचना । सारंगा हरिणाः, तद्वल्लोचना यस्याः सा तथा ॥५९॥

[१]धर्मेण किं कुरुत काः क्व नु – यमार्याः?,
[२]कीदृश्यहिंसनफलेन तनुः सदा स्यात्? ।
[३]पुंसां कलौ प्रतिकलं किल केन हानिः?,
[४]कीदृग् व्यधायि युधि काऽर्जुनचापनादिः? ॥६०॥

मन्थानजातिः । **यामतागविविगतामया सारतादिनानादितारसा ।**

१. याम- गच्छाम ताः- लक्ष्मीः कर्मतापन्नाः गवि- देवलोके । २. विगतामया- गतरोगा [३. सारतादिना । ४. नादिता रसा ।] ॥६०॥

	सा र	
या म	ता	ग वि
	दि ना	

[१]कीदृशः स्यादविश्वास्यः स्निग्धबन्धुरपीह सन्? ।
[२]न स्थातव्यं च शब्दोऽयं प्रदोषं प्राह कीदृशः? ॥६१॥

वितथवचनः ।

१. वितथं- अलीकं वचनं यस्याऽसौ वितथवचनः । २. विगतास्तथवचना यस्य सः । तथा च सायमिति भवति ॥६१॥

[१]नृणां का कीदृगिष्टा? [२]वद सरसि बभुः के? [३]स्मरक्रीडितोष्ट्राः,
साधुः श्रीशश्च सर्वे पृथगभिदधतो बोधनीयाः क्रमेण ।
[४]कुर्वेऽहं ब्रह्मणे किं वदति मुनिविशेषोऽथ [५]कीदृक् समग्रः,
स्यात्? [६]किं वा पङ्कजाक्षीमुखविमुखमना भुक्तभोगोऽभिदध्यात्? ॥६२॥

सारामारमयतेमनोनः (**तेनमनोनः**) । शृङ्खलाजातिः ।

१. सा- लक्ष्मीः सारा । २. रामाः- सारसाः । ३. मार!- काम!, रम!- क्रीडित!, मय!- उष्ट्र!, यते!, ताया- लक्ष्म्या इनः, तस्य सं०- हे तेन! ४. नमतो (नम मनो!-) ऋषे! ५. न ऊनः- नोनः । [६. सा रामा- स्त्री नः-

अस्माकं मनो न रमयते- मोहयति ।] ॥६२॥

[१]स्वजनः पृच्छति जैनैरघस्य कः कुत्र कीदृशे कथितः? ।
[२]कथयत वैयाकरणां(णाः) सूत्रं कात्यायनीयं किम्? ॥६३॥

बन्धोऽधिकरणे ।

१. हे बन्धो!- स्वजन! बन्धः, कुत्र? अधिकरणे- पापव्यापारे, किं-विशिष्टे? अधिको रणो यत्र तत् तथा तस्मिन् । [२. बन्धोऽधिकरणे (कातन्त्रव्या० ४-६-२५)] ॥६३॥

[१]ब्रवीत्यविद्वान् गुरुरागतः कौ सावित्र्यं मे(त्र्युमे) किं कुरतः सदैव ।
[२]आशैशवात् कीदृगुरभ्रपोतः पुष्टिं च तुष्टिं च किलाऽऽप्नुवीत? ॥६४॥

अविदूसरतः ।

१. वेत्तीति वितन् (द्, न) विदवित्, तस्य सं०- हेऽवित्!, उर्ब्रह्मा उः शङ्करः, उश्च उश्च ऊ कर्मतापन्नौ सरतौ- गच्छतः । २. अवि(वे)र्गड्डुरिकाया दूसं-दुग्धं, तत्र रतः स तथा ॥६४॥

[१]तन्वि! त्वं नेत्रतूणोद्धृतमदनशराकारचञ्चत्कटाक्षै-
र्लक्ष्यीकृत्य स्मरार्त्तान् सपदि किमकरोः सुभ्रु! तीक्ष्णैरभीक्ष्णैः? ।
[२]किं कुर्वाते भवाब्धि सुमुनिवितरणा(?)श्रीजिनाज्ञासु सक्तौ?[1],
[३]श्रद्धालुः प्राप्तमन्त्राद्युचितविधिपरः प्रायसः(शः) कीदृशः स्यात्? ॥६५॥

अविध्यंतरतः ।

१. अविध्यमिति व्यध ताडने इत्यस्य दैवादिकस्य ह्यस्तन्यमि रूपम् । २. तरतः- पारं गच्छतः । ३. अविधेरन्तो विनाशस्तत्र रतः स तथा ॥६५॥

[१]कीदृग् दृष्टमदृष्टः स्यादित्यक्षकीलिका ब्रूते ।
[२]भणइ पिया ते पिययम! कीए कहिं अभिरमइ दिट्ठी ॥६६॥

मुद्धेतुहरमणे ।

१. मुदो- हर्षस्य हेतवस्ते तथा तानरहरनि (तान् हरति) तथा, हेऽणे! शकटकीलिके! । २. हे मुग्धे! तुह- तव रमणे- सुरतव्यापारे ॥६६॥[2]

1. 'सुमुनिवितरणाद्यायकस्तावकौ द्राक्' इति पाठः समस्ति म.विनयसागरसम्पादितपुस्तके - सं. ।
2. मुद्रितपुस्तके इतः परं 'कीदृग्जलधरसमय...' इति श्लोकोऽधिकः । - सं. ।

[1]म(प)द्मस्तोमो वदति कपिसैन्येन भोः कीदृशा प्राक्,
सिन्धौ सेतुर्व्यरचि? [2]रुचिरा का सतां वृत्तजातिः? ।
[3]को वा दिक्षु प्रसरति सदा कण्ठकाण्डात् पुरारेः?,
[4]किं कुर्याः कं हरमिति(रह इति)सखीं पृच्छतीं स्त्री किमाह? ॥६७॥

नालिननलिना मालिनीनीलिमा । मानानिइनमालि । मन्थानान्तरजातिः ।

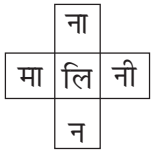

१. नलिनानां पद्मानां समूहो नालिनं तस्य सम्बो० – हे नालिन!, नलो विद्यते यत्र तन्नलि, तेन नलिना सैन्येन। २. मालिनीच्छन्दः । [३. नीलिमा ।] ४. मानानि- पूजयामि इनं- स्वामिनं, हे आलि!- सखि! ॥६७॥

[1]पथि विषमे महति भरे धुर्याः किं स्म कुरुथ कां कस्य? ।
[2]अत्याम्लतामुपगतं किं वा के नाऽभिकाङ्क्षति? ॥६८॥

दधिमधुरमनसः ।

दधिम- भूतवन्तः, परोक्षा परस्मैपदोत्तमपुरुषबहुवचनं स्यांस्त्रादिनियमादिदम्, धुरमनसः- शकटस्य । २. दधि कर्मभूतं, के कर्त्तारः? मधुरमनो येषां ते तथा ।

[1]भानोः केष्येत पद्मैरुडु[2] वदति पदं पप्रथे किं सहार्थे?,
[3]कामो वक्ति व्यवायोऽपि च पदनिपुणैः पञ्चमी केन वाच्या? ।
[4]सप्राणः प्राह पुंसि क्व सजति जनता? [5]भाषतेऽप्यार्द्रभावः,
कुर्वेऽहं क्लेदनं किं? [6]क्व च न खलु मुखं राजति(ते) व्यङ्गितायाम् ?,
[7]सत्यासक्तं च सेर्ष्याः किमथ मुररिपुं रुक्मिणीसख्य आख्यन्? ॥६९॥

भामारतसानतेमनसि । शृङ्खलाजातिः ।

१. भा- प्रभा । २. हे भ!- नक्षत्र!, अमा, एतत् सहार्थे पदम् । ३. मार!- काम!, तर(रत)!- व्यवाय!, तसा प्रत्ययेन । ४. सहाऽऽनेन- प्राणेन वर्त्तते सानस्तस्य सम्बोधनम् – हे सान!, नते । ५. हे तेम!- आर्द्रभाव!, मन- अभ्यस, मनाभ्यास (म्नाऽभ्यासे) इत्यस्य भौवादिकस्य पञ्चम्यां रूपम् । ६. नसि- नासिकायाम् । ७. हे भामारत!- सत्यासक्त! विष्णो! सा- रुक्मिणी न ते मनसि ॥६९॥

[१]तरुणेषु कीदृशं स्यात् कुर्वत् कीदृक् किमक्षि तरलाक्ष्याः? ।
[२]सा जोघ(व्व)णभयंती भणह करं केरिसं कुणइ? ॥७०॥

उवलद्धवलयं ।

१. किं कुर्वद्? वलत्, कीदृक् स्याद्? अवतीति ऊ- रक्षकं, 'स्वरो ह्रस्व' इति ह्रस्वत्वम्, नपुंसकत्वादक्षिशब्दस्य, कीदृक् सत्? धवलयं- धवे लयो यस्य तत् । २. उपलब्धं वलयं यस्य स तथा तम् ॥७०॥

[१]सत्यक्षमार्त्तिहर आह जयद्रथाजौ पार्थ! त्वदीयरथवाजिषु का किमाधात् ? ।
[२]अप्पोवमाइ किर मच्छरिणो मुणंति किं रूत(प?)मिच्छसुयणं भण केरिसं ति ॥७१॥

सच्छमतुच्छरसरिच्छं ।

१. सत्- सत्यं, शमः- क्षमा, तुदतीति तुत् क्विप् - अर्त्तिः, सच्च शमश्च तुच्च सच्छमतुतः, तान् व्यतिहरति स तथा तस्य सम्बोधनम् - हे सच्छमतुच्च्!, शरास्तेषां सरिन्नदी धोरणिरिति यावत्, सा शं- सुखं, आधादिति सम्बन्धः । २. स्वच्छरूपं स्वच्छस्वभावं सन्तं प्राणिनमतुच्छः प्रभूतो मत्सरो यस्य स तथा तेन सदृशम् ॥७१॥

[१]कीदृक्षः कथयत दौषिकापणः स्यात्? [२]न्रा केन व्यरचि च पट्टसूत्ररागः? ।
[३]क्षुद्रारिर्वदति किमुत्कटं जिगीषोः? [४]किं जघ्रे शकरिपुणेति वक्ति रङ्कः ॥७२॥

शाटकीकीटशा कण्टककटकम् शाकंकीकट । मन्थानकजातिः ।

	कं	
शा	ट	की
	क	

१. शाटका विद्यन्ते यत्र शाटकी । २. कीटान् श्यति कीटश् तेन कीटशा । ३. हे कण्टक!- क्षुद्रारे!, कटकं- सैन्यम् । ४. शाकानां राज्ञां समूहः शाकम्, हे कीकट!- रङ्क! ॥७२॥

[१]ब्रह्मास्त्रगर्वितमरिं [र]णसीम्नि शत्रु-ख[ड्गा]क्षमं हरवितीर्णवरः किमाह? ।
[२]कामी प्रियां भणति किं त्वरितं रतार्थी?

वस्त्रं परास्यसह! सादयितेभबाधः ॥७३॥

१. ओः ब्रह्मणोऽस्त्रं वस्त्रं; परस्याऽसिः- खड्गं(ड्गः), तं न सहते परास्यसहस्तस्य सम्बोधनम् - हे परास्यसह!, तत्प्रति सादयिता- खण्डनशीलः, इभबाधो, हर इभं बाधते इति । २. वस्त्रं- वसनं परास्य- परित्यज्य, सहसा

इत्य[त्य]र्थं, दयिते!- भार्ये! भव अधः ॥७३॥

[१]प्रत्याहारविशेषा वदन्ति नन्दी निगद्यते कीदृग्? ।
[२]आपृच्छे गणकोऽहं किमकार्षं ग्रहगणान् वदत? ॥७४॥

अजगणः । त्रिः समस्तः ।

१. अच्च अक् च अणु (ण् च) अजगणस्तस्य सम्बोधनम् - हे अजगण!, अजस्य- हरस्य गणः प्रथमः (प्रमथः) अजगणः । २. गणितवान्, गण सङ्ख्याने, अद्यतनी सिव्, णि 'ईश्च गण' इत्यद्भावे रूपम् ॥७४॥

[१]कीदृक्षे कुत्र कान्ता रतिमनुभवति? [२]ब्रूत वल्लिं? [३]क्व मे मुत्,
प्राहर्षिः? [४]कोऽत्र कस्याः स्मरति गतधनः श्रीतया पृच्छ्यतेऽदः ।
[५]क्व स्यात् प्रीतिस्तृतीयं वदति युगमिह क्वोद्यमी कामशत्रुः?,
[७]कामी रज्येत् प्रियायाः क्व च? [८]नयविनयी कुत्र पुत्रः प्रतुष्येत्? ॥७५॥

[९]स्पृहयति जनः कस्मै नाऽस्मिन्[१०] मुखे वद कीदृशे,
न सरति सुधीः? [११]स्यात् कीदृक्षे क्व वा वपुरव्यथम्? ।
[१२]सुदृशमभितः वश्यां पश्यन् किमाह सखीर्युवा?,
तरलनयना मामत्रेयं स्मितास्यमितीक्षते ॥७६॥

षोडशदलकमलं विपरीतं युगलम् ।

१. ततेः- विस्तीर्णे रते- क्रीडने । २. हे लते!- वीरुद्! । ३. नते- प्राणने, हे यते!- साधो! । ४. ना- पुरुषस्ते- तव, माया- लक्ष्म्या भावो माता, हे माते! । ५. मते- अभिमते । ६. त्रेते!- तृतीययुग!, एः- कामस्याऽन्ते- विनाशे यन्ते । ७. स्मिते- ईषद्धसिते । ८. ताते- पितरि । ९. षोऽन्तकर्मणि, स्यतीति स्यत्, तस्मै स्यते । १०. मिते- स्तोके । ११. तीतेऽतीते क्षते- व्रणादौ । १२. तरलनयना- चञ्चलनेत्रा मां कर्मतापन्नमत्र प्रदेशे, इयं स्मितास्यं यथा भवतीतीक्षते- अवलोकयति ॥७५-७६॥

[१]राजन्! कः समरभरे किमकारयदाशु किं रिपुभटानाम्? ।
[२]कुच्छियविलास पभणइ केरिसं पिसुणहिययं? ॥७७॥

अहमलीलवंकं ।

१. अहं कर्त्ता अलीलवम्- लूनवान् कं- मस्तकम् । २. अधमा लीला यस्य स तथा हे अधमलील!, वङ्कं- कुटिलम् ॥७७॥

[१]अयि सुमुखि! सुनेत्रे! सुभ्रु! सुश्रोणि! मुग्धे!,
वरतनु! कलकण्ठि! स्वोष्ठि! पीनस्तनि! त्वम् ।
वद निजगुणपाशैः कं करोषीह केषां?,
[२]सुगुरुरपि च दद्यात् कीदृशां मन्त्रविद्याः? ॥७८॥

नाहंयूनाम् ।

१. नह बन्धने, नहनं नाहस्तं बन्धनम्, यूनाम्- तरुणानाम् । २. नाहंयूनाम्- अ[न]हङ्कारिणामित्यर्थः ॥७८॥

[१]पृच्छामि जलनिधिरहं किमकरवं सपदि शशधराभ्युदये? ।
[२]अलमुद्यमैः सुकृतिनामित्युक्ते कीदृशः कः स्यात्? ॥७९॥

समुदलसः ।

१. सम् उद् अलसः शब्दितवान् । तुस ह्रस ह्लुस शब्दे, ह्यस्तनी सि रूपम् । २. समुद्- सहर्षो अलस- आलस्योपहतः ॥७९॥

[१]वदति हरिरम्भोधे! पाणिं श्रियः करवाणि किं?,
[२]किमु कुरुत भो! यूयं लोकाः! सदा निशि निद्रया? ।
[३]मुनिरिह सतां वन्द्यः कीदृक्? [४]तथा च गुरुर्ब्रुवे,
तव जडमते! तत्त्वं भूयोऽप्यहं किमचीकरम्? ॥८०॥

असस्मरः । वर्द्धमानाक्षरजातिः ।

१. हे अ!- हरे!, अस- आप्नुहि, अस् दीप्त्यादानयोश्चेति रूपम् । २. असस्म- सुप्तवन्तः, षस स्वप्ने, ह्यस्तनी म । ३. सह स्मरेणेति सस्मरो, न सस्मरोऽसस्मरः, कामरहित इत्यर्थः । ४. असस्मरः- स्मारितवान्, स्मृ ध्यै चिन्तायाम्, अद्यतनी सि, अत्वरादित्वादतअभ्यासश्च ॥८०॥

[१]रतये किमकारयतां परस्परं दम्पती ची(चि)रान्मिलितौ? ।
[२]मोक्षपथप्रस्थितमतिः परिहरति च कीदृशीं जनताम्? ॥८१॥

अतत्वरताम् ।

१. कामाय शीघ्रभावयताम् । २. अतत्त्वे रता अतत्त्वरता, ताम् ॥८१॥

[१]हे नार्यः! किमकार्षुरुद्गतमुदो युष्मद्वराः काः किल?,
[२]क्रुद्धः कामरिपुः स्मरं किमकरोदित्याह कामप्रिया? ।
[३]इच्छ[न्]लाभमहं मनोगृहगतं रक्षामि शम्भुं सदा,
प्रीतः स्वं मतमूचुषे किल मुनिः कामाशिषं यच्छति? ॥८२॥

उपायंसतनोतुभद्रते ।

१. उपायंसत- परिणीतवतः(न्तः) नः- अस्मान् । २. अतुभद्- विनाशितवान्, हे रते!- कामप्रिये!, णभ तुभ हिंसायाम्, अद्यतनी दि, पुष्पादित्वादङि । ३. उपायं स महेश्वरस्तनोतु- विस्तारयतु, भद्रं ते- तव ॥८२॥

[१]सरभसमभिपश्यन्ती किमकार्षीः कं मम त्वमिन्दुमुखि!? ।
[२]नयनगतिपदं कीदृक् पूजयतीत्यर्थमभिधत्ते? ॥८३॥

अ[प]प्रथमंगजम् ।

१अ[प]प्रथम्- विस्तारितवती अङ्गजं- कामम् । २. न विद्य(द्ये)ते पकारात् प्रथमौ नकारौ यत्र तत् तथा, गश्च जो- जकारो यत्र तद्गजम्, ततो यजतीति भवति ॥८३॥

[१]विधुन्तुदः प्राह रविं ग्रहीतुं कीदृक्षमाहुः स्मृतिवादिनो माम्? ।
[२]का वा न दैवज्ञवरैः स्तुतेह प्रायेण कार्येषु शुभावहेषु? ॥८४॥

राहोनिशविरलगमम् । गतागतः ।

१. हे राहो!, निशि- रात्रौ अविरलो गमो यस्य स तथा तम् । निशाया निश् । २. मङ्गलरविअ(श)निहोरा । रविरादित्यः । होराशब्दः प्रत्येकम् ॥८४॥

अग्निज्वालादिसाम्याय यं प्रश्नं श्रीरुदीरयेत् ।
तेनैव समवर्णेन प्रापदुत्तममुत्तरम् ॥८५॥

कोपमानलाभाद्ये ।

का उपमाऽनलाभाद्ये वस्तुनि? । अनलस्येवाऽग्नेरिवाऽऽभा छाया

यस्याः सा कोपमानलाभाद्या । हे इ!- लक्ष्मि! । अयमत्र भावोऽग्निज्वालासदृशः कोपः, आदिशब्दादवाप्तः पर्वतादिस्ततः पर्वतसदृशो मानः, खञ्जनसदृशो ला(लो)भः । उत्तरेऽनुवचनेऽप्यादिशब्दान्माया तया सदृशा गोमूत्रिकाऽतीववक्रा ॥८५॥

[१]कीदृक्षोऽहमिति ब्रवीति वरुण[:]? [२]काऽप्याह देवाङ्गना,
हंहो! लुब्धक! को निहन्ति करिणश्रेणीं वनान्याश्रिताम्? ।
[३]कान्तन्यस्तपदं स्तने रमयति स्त्रीं किं विधिर्वक्त्यदः?,
[४]किं अन्नोन्नविरोहवारणकए जंपंति धम्मत्थिणो? ॥८६॥

अवरोप्परंभेमच्छरोनखमो ॥

१. अपः पातीति अप्पः, सम्बोधने हेऽप्प!, अवरोऽवरदिग्वर्त्ती, अवरस्यां दिशि यतो वसति । २. हे रम्भे!- देवाङ्गने!, मम शरो मच्छरः । ३. नखम्, उर्ब्रह्मा, तस्य सम्बोधनम् [-ओ] । ४. हे (अवरोप्परं-) परस्परं भे- भवतां मच्छरो[-मत्सरः] न खमो- न युक्तः ॥८६॥

खड्गश्रियौ यमब्रवीत् प्रश्नं मुनिः किल स्वकम् ।
तत्रैव चाऽऽपदुत्तरं **कामेसिसेविषायते** ॥८७॥

का मे- मम, असिश्च खड्गं सा च लक्ष्मीः, तयोः सम्बोधनम्- हेऽसिसे!, विषायते- विषवदाचरति? । हे यते!, कामे सिसेविषा- सेवितुमिच्छा ॥८७॥

[१]कीदृग्भवेत् करक(ज)कर्त्तनकारिशस्त्रं? [२]क्वाऽकारि किं रहसि केलिकलौ भवान्या ? ।
[३]कश्चित्तरुः प्रवयणश्च पृथग् विबोध्यौ, [४]किं वा मुनिर्वदति बुद्धभवस्वभावः ? ॥८८॥

नखलुभवेकोपिशमितोत्र ।

१. नखान् लुनातीति नखलु । २. भवे- हरे, अकोपि- कुपितम् । ३. हे शमि!- वृक्षभेद!, हे तोत्र!- प्राजन! ४. नैव खलु- निश्चयेन भवेऽत्र कोऽपि शमितोऽत्र संसारे न कोऽपि शान्त इत्यर्थः ॥८८॥

कुमुदैः श्रीमत् कश्चिद् गदपात्रं प्रश्नमाह यं भूमेः ।
तत्रैवोत्तरमलभत **कैरवनिवहैरमामत्र** ॥८९॥

कैर्वहै- वहामि, हे अवनि!- पृथिवि!, रमां- लक्ष्मीं, अत्र- जगति ? वह प्रापणे, पञ्चमी ए । अमा- रोगास्तेषाममत्रं- भाजनं, तस्य सम्बोधनम् - हे अमामत्र!, कैरवनिवहैः- पद्मसमूहैः । अयमत्र भावः - यः किल कुमुदैः श्रीमान् स तैरेव लक्ष्मीमावहति ॥८९॥

[१]सदाऽऽहिताग्नेः क्व विभाव्यते का? [२]पावृष्युपास्ते शयितं क्व का कम् ? ।
[३]दीर्घेक्षणा वक्ति पुरस्थिताऽहमवीक्ष्यमाणा प्रिय! किं करोमि? ॥९०॥

आयतनेत्रेतापयसिमां ।

१. आयतने- गृहे, त्रेता- [अग्नित्रयम्,], त्रेता अग्नित्रियते युगे इति वचनात् । २. पयसि- जले मा- लक्ष्मीः, अं- विष्णुम् । ३. हे आयतनेत्रे!- विशाललोचने!, तापयसि मां कर्मभूतम् ॥९०॥

[१]लक्ष्मीर्वदति बलिजितं त्वमीश! किं पीतमंशुकं कुरुषे? ।
[२]अपरं पृच्छामि प्रिय! कुर्वेऽहं किं भवच्चरणौ? ॥९१॥

सेवसे । गतागतः ।

१. हे से!- लक्ष्मि!, वसे- परिदधामि । वस आच्छादने, वर्त्तमाना ए । २. सेवसे- सेवां कुरुषे ॥९१॥

[१]प्रवीरवरशूद्रकं किमु जगुर्जनाः कीदृशं?,
[२]पयो वदति कीदृशीं नृपतिं श्रयन्त्यर्थिनः? ।
[३]चकार किमगं हरिर्वदँत विस्मये किं पदं?,
[५]निनीषुरमृतास्पदं कथमिवाह जैनो जनान्? ॥९२॥

सदाजिनवरागमम्बुधनरावरा(मुदा)सेवत ॥

१ सदा-नित्यम् आजिषु- सङ्ग्रामेषु नवो- नूतनो रागो यस्याऽसौ स तथा। २. हेऽम्बु!- जल!, धनं राति- ददाति धनरा[म्] । ३. उदासे- उत्पाटितवान् । उत्पूर्वोऽसु क्षेपणे, परोक्षा ए । ४. बत । ५. हे बुधनराः!, सदा- नित्यं, जिनवरागमं- जिनेन्द्रसिद्धान्तं मुदा- हर्षेण सेवत, जिनागमे सेवां कुरुत इत्यर्थः ॥९२॥

का दुरिता(त?)- सदू(द्दू)षणसान्त्वक्षि(क्ष)तिभूमिरिति सति प्रश्ने ।
यत् तत्समानवर्णं तदुत्तरं कथयत विभाव्य ॥९३॥

कामलालसामहेला ।

मला(लो)- दुरितं, आलो- विद्यमानदूषणं, साम- समता तां हन्ति सामहः । मलश्चाऽऽलश्च सामहश्च ते तथा तेषामिला- भूमिः का? । कामलालसा महेला- मारलम्पटा स्त्री ॥९३॥

[१]विधित्से किं शत्रून् युधि नरपते!? [२]वक्ति कामल (कमला),
वराश्चीयं कीदृक्? [३]क्व च सति नृपाः स्युः सुमनसः? ।
[४]विहङ्गः स्यात् कीदृक्? [५]क्व रजति रमा? [६]पृच्छति हर-
प्रतीहारी भीरो! किमिह कुरुषे? [७]ब्रूत मदनम् ॥९४॥

विजये । गतागतः अनुर्गतः ।

१. विजये । विपूर्वो जि जये, वर्त्तमाना ए, 'विपराभ्यां जि'- रित्यात्मनेपदम् । २. या श्रीस्तत्सम्बोधनम् - हे ये!, जवो- वेगो विद्यते यस्य तज्जवि । ३. विशेषेण जयः- परेषां हननं, तस्मिन् विजये सति । ४. वेः- पक्षिणो जातो विजः । ५. अ- विष्णुस्तस्मिन् ए । ६. हे विजये!- शाङ्गर- प्रतीहारि!, विजे- भयं करोमि । ओविजी भयचलनयोर्वर्त्तमाना ए । ७. इः- कामस्तस्य सम्बोधनम्- हे ए! ॥९४॥

[१]हंहो! शरीर! कुर्याः किमनुकलं त्वं वयोबलविभाद्यैः? ।
[२]मदनरिपोर्दृक् कीदृक्? [३]जैनः कथमुपदिशति धर्मम्? ॥९५॥

जिनान्यजध्वंसदा ।

१. जिनानि- हानिं गच्छामि एभिः कृत्वा । २. अजः- कामस्तस्य ध्वंसं ददातीति अजध्वंसदा सा हरदृग् । ३. जिनान् यजध्वं सदा- नित्यम् ॥९५॥

[१]कीदृग् भाति नभो? [२]न के च सरुजां भक्ष्या? [३]नृपः पाति कं?,
[४]वादी पाशुपतो विवाद उदय[द्]दुःखः शिवं वक्ति किम् ।
[५]निर्दम्भेति यदर्थतः प्रणिगदेद् रूपं विपूर्वाच्च त-
न्मीनातेः कमपेक्ष्य जायत इति क्त्वाप्रत्ययः पृच्छति ॥९६॥

भवद्यवादेशं । व्यस्तः द्विसमस्तः ।

१. भं- नक्षत्रं विद्यते यत्र तद् भवत् । २. यवाः । ३. देशम् । ४.

हे भव!- शङ्कर!, द्य- खण्डय वादे- पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहरूपे, शं- सुखम् । ५. भवतः- क्त्वाप्रत्ययस्य यबादेशो भवद्यबादेशस्तम् । यादृशं निर्दम्भशब्देनाऽर्थतो रूपमभिधीयते तादृशं विपूर्वस्य मीनातेः क्त्वाप्रत्ययस्य यबादेशे सति भवति। तथाहि - निर्दम्भशब्देन निर्गतमाय उद्यते, विमाय - अनेनाऽपि स एवेति भावः ॥९६॥

स्मृत्वा पक्षिविशेषेण जग्धं कमपि पक्षिणम् ।
वृष्णिवंशोद्भवो लक्ष्मी[मप्राक्षी]त् किं समोत्तरम्? ॥९७॥

यादवकङ्कः ।

हे इ!- लक्ष्मि!, आद- भक्षितवान् बकं- पक्षिणम् कः? । हे यादव!- वृष्णिवंशोद्भव!, कङ्कः- पक्षिविशेषः ॥९७॥

प्रपञ्चक्व(वञ्च)नव(च)णं ध्यात्वा कि(क)मपि देहिनम् ।
विश्वम्भरा यदप्राक्षीत् ततः प्राह(प) तदुत्तरम् ॥९८॥

कोनालीकः ।

कः ना- पुरुषोऽलीकः? । हे को!- पृथ्वि!, नालिको दुंवालिकः (?) ॥९८॥

जात्यतुरगाहितमति-ल(र्ल)क्ष्मीपतिमप्सरोविशेषपतिः ।
यैर्वर्णैर्यदपृच्छत् तैरेव तदुत्तरं प्रापत् ॥९९॥

मेनकाजानेययुता ।

माया इनो मेनस्तत्सम्बोधनम् - हे मेन!- लक्ष्मीपते!, काऽऽजानेययुता- का अश्वयुता? । मेनका जाया यस्य स मेनकाजानिस्तस्य सम्बोधनम् - हे मेनकाजाने!- ऽप्सरोविशेषपते!, ययुता- अश्वता । जायाया जानिरिति विशेषलक्षणात् ॥९९॥

[१]केन केषां प्रमोदः स्या-दिति पृच्छन्ति को(के)किनः? ।
[२]सङ्गीतके च कीदृक्षाः प्राह शम्भुर्न भान्ति के? ॥१००॥

नीरवारवेणवः ।

१. नीरवाहो मेघस्तस्य रवः- शब्दस्तेन वो- युष्माकम् । २. निर्गतो

रवः शब्दो येषां ते नीरवाः, हे हर!- शङ्कर!, वेणवः- वंशाः ॥१००॥

[१]कश्चिद्दैत्यो वदति दनुजान् घ्नन् हरे! किं किमाधाः?,
शक्रात् प्राहः पृथगुदधिजाकान्त-वैवस्वता-ऽन्ताः ।
क्षिप्तः कश्चित् किल ललनया मन्मथोन्माथदुस्थः,
सख्याऽऽस(च)ख्ये कथमथ मनःखेदविच्छेदहेतोः? ॥१०१॥

कंसमानमायमकालावसान । गतागतः ।

१. हे कंस!- दैत्य!, मानं- पूजाम् आयं- लेभे । इण् गतौ इत्यस्य ह्यस्तन्यवि वृद्धौ सत्यां रूपम् । २. हे [अ!-] विष्णो!, हे काल!, हे अवसान!, सा अबला- स्त्री कामयमानम्- अभिलषन्तं कं नाऽऽस- चिक्षेपे? अपि तु सर्वमपि क्षिप्तवती ॥१०१॥

जननीरहितनरोद्भवलक्ष्मीः सितकुसुमभेदगतबुद्धिः ।
सध्रीचीं यदपृच्छत् तदुत्तरं प्रापत् तत एव ॥१०२॥

प्रसूनपुञ्जेऽनवमालिका ।

प्रसूनपुञ्जे- कुसुमनिवहेऽनवमा- प्रधाना आलि!- सखि! का इत्यर्थः? । प्रसूत इति प्रसूस्तया ऊनः प्रसूनो जननीरहित इत्यर्थः, स चासौ पुमांश्च प्रसूनपुमान्, तस्माज्जाता प्रसूनपुञ्जा च सा [ईः-] लक्ष्मीश्च, तस्याः सम्बोधनम्- हे प्रसूनपुञ्जे!- जननीरहितपुरुषोद्भवलक्ष्मि!, नवमालिका- नवा चाऽसौ मालिका च ॥१०२॥

देवीं कमलासीनामन्तकचिरनगररक्षकः स्मृत्वा ।
यदपृच्छत् तत्रोत्तरमवाप **कालीयमानवपुरत्र** ॥१०३॥

का लीयमानशरीरा त्रिजगति? । यमस्याऽनवं- पुरातनं पुरं- नगरं, तत् त्रायते यः स तथा, तस्य सम्बोधनम् - हे यमानवपुरत्र!, काली देवता ॥१०३॥

[१]सैन्याधिभूरभिषिषेणयिषुस्तदीयः, कं किं करोति विजयी नृपतेह(र्ह)वेन? ।
[२]कीदृक् क्व(च) मन्मथवतः प्रतिभाति कान्ता,
पत्नीहितो वदति चेतसि कस्य पुंसः? ॥१०४॥

मदनमञ्जरीगृह्यते ।

१. मम न नमतीति मदनम्, यो मम नमस्कारं न करोतीत्यर्थः । तं जरीगृह्यतेऽत्यर्थं गृह्णाति । २. गृहीः- कलत्राणि, तासां हितो गृह्यस्तस्य सम्बोधनम्- हे गृह्य!- पत्नीहित!, ते- तव मदनस्य- मन्मथस्य मञ्जरीव मदनमञ्जरी ॥१०४॥

[१]कीदृशा किं कुरुते रवि(ति)समये कुत्र गोत्रभिदि भामा? ।
[२]कस्मै च न रोचन्ते रामा यौवनमदोद्दामाः? ॥१०५॥

भवदरतीरमतये ।

१. भवति अरतिर्यस्याः सा भवदरतिः सती रमते ए- विष्णौ । २. भवाद् दरो भवदरस्तस्य तीरं- मोक्षस्तत्र मतिर्यस्य स तथा तस्मै, मोक्षार्थिने इत्यर्थः ॥१०५॥

[१]सिन्धुः काचिद् वदति विदधे किं नु या(त्वया) कर्म जन्तो!?,
[२]यज्वा कस्मिन् सजति? [३]हरिणाः क्वोल्लसत्युद्विजन्ते? ।
[४]ब्रूते वज्रः पदमुपमितौ किं? [५]रविः पृच्छतीदं,
देहिन्! बाधाभरविधुरितः कुत्र किं त्वं करोषि? ॥१०६॥

मञ्जरीसनाथजातिः ।

[१]संतो कम्मि परम्मुहा? [२]घरमुहे सोहा कहिं कीरए?,
[३]रूढे कम्मि रसंति दुट्ठकरहा? [४]कम्मि बहुत्तं वि(ठि)यं? ।
[५]दिट्ठे कत्थ य दूरओ नियमणे कत्थुल्लसंते दुयं
के मुंचंति धणुधरत्ति भणिरे मज्जायमामंतसु ॥१०७॥

विपरीत-मञ्जरीसनाथजातिः ।

[[१]मिथ्याज्ञानग्रहग्रस्तैः किं चक्रे क्व किलाऽङ्गिभिः? ।
[२]क्वाऽभीष्टे का भवेत् कीदृगिति जैन! वद क्षितेः? ॥१०८॥ [गतागतः]

रेमेसदपवाभदेवे ।]

१. हे रेवे!- नर्मदे!, मेवे- बद्धम् । २. सवे- यज्ञे । ३. दवे- दावानले । ४. हे पवे!, वा-शब्दो विकल्पोपमानयोरिति वचनात् । ५. हे अवे !- आदित्य!, 'अवयः शैलमेषार्का' इति वचनात्, भवे- संसारे देवे- शुचं

करोमि, ते(दे)वृ देवने ॥१०६॥

विपरीतमञ्जरीसनाथजातिः - १. वेरे- वैरे । २. देरे- द्वारे । ३. भरे । ४. वारे- सङ्घाते । ५. परे दृष्टे, दरे- भये उल्लसति, सरे- शरान् मुञ्चन्ति, मेरे!- मर्यादे! ॥१०७॥

गतागतः - १. रेमे- रमितम्, पुनातीति पवा- पवित्रा, न पवाऽपवा- ऽपवित्रा, सा चाऽसावाभा च साऽपवाभा, सती- विद्यमानाऽपवाभा यस्य(x) तं, स तथा(x) स चाऽसौ देवश्च स तथा, तस्मिन् । २. वेदेऽभीष्टे, भवापत्- संसारापदसमा- अनन्यतुल्या, हे इरे!- भूमे!, 'इरा भूवाक्सुराप्सु' इति वचनात् ॥१०८॥

भाद्रपदवारिबद्धः सितशकुनिविराजितं वियद् वीक्ष्य ।
कं प्रश्नं सदृशोत्तर-मकष्टमाचष्ट विस्पष्टम्? ॥१०९॥

नभस्यकनद्धबलाका ।

नभसि- आकाशेऽकनत्- शुशुभे धवला- शुभ्रा [का]? । नभस्यं- भाद्रं च तत् कं- पानीयं च तन्नभस्यकं, तेन नद्धो- बद्धस्तस्य सम्बोधनम् - हे नमस्यकनद्ध! बलाका ॥१०८॥

[१]भूरभिदधाति शरदिन्दुदीधितिः केह भाति पुष्पभिदा? ।
[२]प्रथमप्रावृषि वर्षति जलदे कः कुत्र सम्भवति? ॥११०॥

हेऽवनिनवमालिका । गतागतः ।

१. हेऽवनि!- पृथ्वि!, नवा चाऽसौ मालिका च सा तथा । २. कालिमा- कृष्णता, कस्मिन्? वननिवहे ॥१०९॥

[१]कीदृक्षः सन्निह परभवे कीदृशः स्याद्धितैषी? **सदयः**
[२]कीदृक् का स्याद् वद गदवतामत्र दोषत्रयच्छित्? **मधुरता**
[३]का कीदृक्षा पुरि न भवतीत्याहतुर्वारि-भृङ्गौ? **विपण्याबली**
[४]कीदृश्यो वा कुवलयदृशः कामिनः कीदृशः स्युः? । **गौरवपुषः** ॥१११॥

१. सदयः- सह दयया वर्त्तत इति सदयः, इहभवे परभवे वा सन्- शोभनोऽयो- लाभो यस्याऽसौ तथा । २. मधुरता- माधुर्यम्, मधुनि रता मधुसक्ता, मधुसम्बन्धि माधुर्यम् । दोषत्रयापहारि इत्यर्थः । ३. विपण्याबली -

आपश्च अलिश्च आ(अ)बली, तयोः सम्बोधनम् – हे आ(अ)बली!- जलमधुकरौ, सम्बोधने द्विवचने रूपम् । विपण्या- विक्रीयद्रव्यरहिता, विपण्यावली- हट्टपङ्क्तिः । विक्रीयद्रव्यरहिता हट्टपङ्क्तिर्न शोभत इत्यर्थः । ४. गौरं वपुर्यासां ता गौरवपुषः [गौरवं पुष्णन्ति इति गौरवपुषः स्युः] ॥११०॥

[१]मुदा श्रयति कं ब्रूते वर्णः कोऽपि सदैव का? ।
[२][ध्वान्तेऽ]न्या(न्य)याऽन्वितं वीक्ष्य प्राहोमात्किङ्करं (मा किं हरं) रुषा? ॥११२॥

अंधकारे । चतुर्गतः ।

१. अं- विष्णुम्, हे धकार!, ई- लक्ष्मीः । २. अन्धकारे- तमसि, अन्धको नाम दानवस्तस्याऽरिर्महे[श्व]र[स्त]स्य सम्बोधनम् – हेऽन्धकारे!- महेश्व[र]!, अन्ध!- लोचनविहीन!, का रे? ॥११२॥

[१]पू(भू)मी कत्थ वि या (ठिया)? [२]भणाइ गणिया रन्नो पहुत्तं कहिं ?,
[३]केली कत्थ? [४]करेसि किं हरिण! हे दिट्ठे कहिं तक्खणं? ।
[५]आमंतेसु करेणुअं? [६]पभणए नक्खत्ततलच्छी कहिं,
लोओ बिंति कयत्तणं? [७]भण कहिं सुद्धे धरेमो मणं? ॥११३॥

मञ्जरीसनाथजातिः ॥

[१]किं पु(कु)रुषे कौ जन्तो! विष्णुः प्राह क्व कर्मविवशस्त्वम्? ।
[२]का क्रियमाणा कीदृक् कुत्र भवेद् वक्ति करवालः ॥११४॥

गतागतः युग्मम् ॥

सेवेदेहतपावभवावासे ।

१. सेसे- शेषराजे । २. हे वेसे!- वेश्ये!, देसे- देशे । ३. हसे- हास्ये । ४. तसे- त्रसे, त्रसी उद्वेगे, पासे- बन्धने । ५. हे वसे!- करेणुके! ''वसा चतस्रो वन्ध्यागौसुनार्यः करेणुका'' इति वचनात् । ६. भं- नक्षत्रं तस्य सा- लक्ष्मीस्तस्याः सम्बोधनम् – हे भसे!- नक्षत्रलक्ष्मि!, वासे- व्यासे । व्यासस्तालां दत्त्वा कवित्वं करोतीत्यर्थः । ७. वासे- मेते जिनादौ (जिनमतादौ?) ॥११३॥

१. सेवे- अनुभवामि, देहश्च तपश्च तौ, तप धूप सन्तापे, तपतीति तपोऽवू(अ!-) हे विष्णो!, भवावासे- संसारवासे । २. सेवा अवा- रक्षिका,

अवतीति अवा, भवपातं हन्ति भवपातहः, स चासौ देवश्च स तथा, तस्मिन्, हेऽसे!- खड्ग! ॥११४॥

कपटपटुदेवतार्चां बुद्धिप्रभुतोद्भवो नरः स्मृत्वा ।
समवर्णवितीर्णोत्तरमकष्टमाचष्ट कं प्रश्नम्? ॥११५॥

कंसमायंध्यायतिजनः ।

कं देवताविशेषं, समायं- सह मायया वर्त्तत इति समायः- मायायुक्तस्तं, ध्यायति- पूजयति जनो- लोक इत्यर्थः । कंसं मीनाति- हिनस्ति कंसमायः, क कर्मण्य(?) मीनात्यादिना आकार आयिरित्यादन्तानामित्यादिः, विष्णुस्तम् । धीर्बुद्धिरायतिर्दीर्घता, प्रभुतेत्यर्थः, 'प्रभोर्दीर्घस्य भाव' इति कृत्वा, ध्यायती, ताभ्यां जातो ध्यायतिजः, स चासौ ना च- पुरुषश्च, तस्य सम्बोधनम् - हे ध्यायतिजनः! ॥११५॥

[१]भृङ्गः प्राह नृपः क्व रज्यति चिते? [२]स्थैर्यं न कस्मिन् जने?,
[३]युद्धं वक्ति दुरोदरव्यसनिता कुत(त्र)? [४]क्व भूस्ता(म्ना)गुणाः? ।
[५]कस्मिन् वातविधूनिते तरलता? [६]ब्रूते ख(स)खी काऽपि मे,
क्वोद्गच्छत्यभिवल्लभं विलसतो सङ्कोचने लोचने? ॥११६॥

अवलोकनकुतूहले । अष्टदलं कमलं विपरीतम् ।

१. हेऽले!- भ्रमर!, बले- कटके । २. लोले- चञ्चले । ३. हे कले!- युद्ध!, नले राजनि । ४. कुले । ५. तूले । ६. हले!- सखि !, अवलोकनकुतूहले- कौतुके उद्गच्छति सति ॥११६॥

[१]कीदृक्षमन्तरिक्षं स्यान्नवग्रहविराजितम्? ।
[२]हनूमता दह्यमानं लङ्कायाः कीदृशं वनम्? ॥११७॥

गुरुशिखिविधुरविज्ञसितमन्दारागुरुचितम् ।

१. गुरुर्बृहस्पतिः, शिखी केतुः, विधुः सोमः, रविरादित्यो, ज्ञः बुधः, सितः शुक्रो, मन्दः शनैश्चर, [आरः-] मङ्गलो, गुः राहुस्तै रुचितम्- दीप्तम् । २. गुरुर्विस्तीर्णः शिखी- वह्निस्तस्य व्यसनं (वैधुर्यम्?), तत्र विज्ञास्ते च ते सितकर्पूरवृक्षमन्दारागुरवश्च तैश्चितम्- सम्भृतं तत् गुरुशिखिविधुरविज्ञसित-

मन्दारागुरुचितम् ॥११७॥

श्रुतिसुखगीतगतमनाः श्रीसुतबन्धनवितर्कणैकरुचिः ।
प्रश्नं च करे(चकार)यं किल तदुत्तरं प्राप तत एव ॥११८॥

काकलीभूयमनोहरते ।

का कलीभूय- कोमलीभूय मनो हरते? । काकली- गीतम् । ई- लक्ष्मीः, तस्या भवतीति ईभूस्तस्य यमनं- बन्धनम्, तस्मिन् ऊहो- वितर्कस्तत्र रतिर्यस्य स तथा, तस्य सम्बोधनम् - हे ईभूयमनोहरते! ॥११८॥

स्मरगुहराधेयान् किल दृष्ट्वाऽग्रेऽङ्गारशकटिकाऽपृच्छत् ।
किं शत्रुश्रुतिमूलं प्रश्नाक्षरदत्तनिर्वचनम् ॥११९॥

इहारिकर्णजाहसंतिके ।

इहाऽत्राऽग्रे, हेऽरिकर्णजाह!- शत्रुकर्णमूल!, सन्ति- विद्यन्ते के? । इः- कामः, हरस्याऽपत्यं हारिः- कार्त्तिकेयः, कर्णजः- कर्णसुतस्ते सन्ति, हे हसन्ति- केऽङ्गारशकटिकेऽग्रे ॥११९॥

[1]जन्तुः कश्चन वक्ति का क्व रमतेऽथोचुः[2] कचान् कीदृशान्?,
[3]ब्रह्मादित्रयमत्र कः क्रशयति?[4] क्ष्वेडागमः स्याज्जनेः? ।
[5]किं वाऽनुक्तसमुच्चये पदमथो[6] धातुश्च को भर्त्सने?,
[7]किं सूत्रं सुधियोऽध्यगीषत तथा विश्रान्तविद्याधराः? ॥१२०॥

झष्येकाचो वशः स्त्वो(स्ध्वो)श्च भस् ।

१. हे झषि!- शफरि!, ई- लक्ष्मीः, ए- विष्णौ । २. कं- मस्तकमञ्चन्ति- पूजयन्ति काञ्चः, तान् काचः, शस(सि) तस्य रूपमिदम् । ३. उर्ब्रह्मा, उः शङ्करो, अः विष्णुः, उश्च उश्च अश्च वाः, तान् श्यति- तनूकरोति वशः । ४. सकार-धकारयोरिड्, जनो घ्नेचेत्यनेन । ५ च । ६. भष भर्त्सने इति वचनात् । ७. के(झ)ष्येत्यादि सूत्रम् ॥१२०॥

याच्ञार्थविततपाणिं द्रमकं स्मृत्वा सदर्थलोभेन ।
यैर्वर्णैर्यदपृच्छत् तैरेव तदुत्तरं लेभे ॥१२१॥

तत्वाययाचकरंकः ।

तत्वा- विस्तार्य करं- हस्तं ययाच को याचितवान्? । तत्वाय-

लाभनिमित्तं, याचकश्चाऽसौ रङ्कश्च स तथा ॥१२१॥

[१]मानं कुत्र? [२]क्व भाण्डे क्व नयति लघु धामास्रिराहाऽनुकम्पा[३],
शैत्यं कुत्र? [४]क्व लोको न सजति? [५]तुरगः क्वाऽर्च्यते? [६]क्व व्यवस्था?।
[७]श्रीर्ब्रूते मुत् [क्व मे स्यात्?] [८]क्व च कमलतुला?[९] मूलतः क्वाऽशुचित्वं?,
[१०]कस्मै सर्वोऽपि लोकः स्पृहयति? [११]पथिकैः सत्पथे किं प्रचक्रे? ॥१२२॥
मञ्जरीसनाथजातिः ।

[१]किं चक्रे रेणुभिः खे क्व सति? निगदति स्त्री रतिः क्वाऽनुरक्ता?,
[३]क्वाऽक्रोधः? [४]क्रूरताऽत्र क्व च? [५]वदति जिनः कोऽपि लक्ष्मीश्च भूश्च।
विष्णुस्थाण्वोः प्रिये के? परिरमति मतिः कुत्र नित्यं मुनीनां?,
[७]किं चक्रे ज्ञानदृष्ट्या त्रिजगदपि मयेत्याह कश्चिज्जिनेन्द्रः ॥१२३॥
विपर्यस्तमञ्जरीसनाथजातिः ।

[१]किमकृत कुतोऽचलक्रमनृप आह सुभगतामानी स्वम् ।
कस्मै? [२]किं चक्रे क्व कस्य का मत्कुण वद त्वम् ॥१२४॥ गतागतः ।

मेनेमदतोक्षरनयशकारातेये । त्रिभिर्विशेषकम् ।

मञ्जरीसनाथजातिः - १. मेये- द्रव्ये । २. नेये- नेतव्ये, मये- उष्ट्रे। ३. हे दये!- ऽनुकम्पे!, तोये ४. क्षये- विनाशे । ५. रये- वेगे । ६. नये- नीतौ । ७. यये- या-लक्ष्मीस्तस्याः सम्बोधनम् - हे ये!, ए- विष्णौ ८. शये- पाणौ, कमलवद् हस्त इति दर्शनात् । ९. काये- शरीरे । १०. राये- द्रव्याय। ११. तेये- गतम् । अय-वय-पय-मयेत्यस्य परोक्षायां रूपम् ॥१२२॥

विपरीतमञ्जरी - १. येमे- उपरतम्, तेमे- आर्द्रभावे सति । २. हे रामे!- स्त्रि!, कामे- मन्मथे । ३. शमे- उपशमे । ४. यमे- कीनाशे । ५. हे नमे! जिन!, हे रमे!- लक्ष्मि!, हे क्षमे!- पृथ्वि!, ता- लक्ष्मी, उमा- गौरी, ता चोमा च तोमे! । ६. दमे- शमे । ७. ममे- आकलितम्, हे नेमे! जिनेन्द्र! ॥१२३॥

गतागतः - १. मेने- मनितम्, मदतो- ऽहङ्कारात्, अक्षरो- ऽचलो नयो- नीतिर्यस्याऽसावक्षरनयः, शको राजा तस्याऽरातिः- शत्रुः शकारातिस्ततोऽक्षरनयश्चाऽसौ शकारातिश्च स तथा, तस्य सम्बोधनम् - हेऽक्षरनयशकाराते!, अये- कामाय, इः- कामः चतुर्थ्येकवचने, 'डेः', डेरनेनैकारोऽये । अहङ्कारात्

स्वं स्त्रीणां कामाय हे राजन्! तेन सुभगतामानिना कृतम् । अक्षरनयेत्यादिना-ऽचलक्रमत्वं सूचितम्। २. येते- यत्नं कृतवती, यतैङ् प्रयत्ने, परोक्षा ए, राका- पूर्णिमास्या रात्रिः, शयनरक्षतो- निद्रारक्षणाद् दमने मे- मम ॥१२४॥

[१]पाता वः कृतवानहं किमु? [२]मृगत्रासाय कः स्याद् वने?,
[३]कोऽध्यास्ते पितृवेश्म? [४]कः प्रमदवान्? [५]कः प्रीतये योषिताम्? ।
[६]ह्यद्यः कः किल कोकिलासु? कँरणेषूक्तः स्थिरार्थश्च को?,
[७]दृष्टे क्व प्रतिभाति को लिपिवशाद् वर्णोऽपुंराणश्च [कः]? ॥१२५॥

मञ्जरीसनाथजातिः ।

[१]लङ्केश्वर-वैरि-वैष्णवाः केऽप्रा(प्या)हुः प्रीतिरकारि केन केषाम्? ।
[२]किमकृत कं विक्रमासिकालः? क्ष्माधर-वारुणीबीज-गाव आख्यन् ॥१२६॥ युग्मम् ।

आदशकंधरवधेनवः ।

१. आवो- रक्षितवान् । पाता सन् त्वमस्मान् रक्षितवानित्यर्थः । अव रक्षपालने, ह्यस्तन्याः सिवि रूपम् । २. दवो- दवानलः । ३. शवो- मृतकः । ४. कं- सुखम्, वाति- गच्छति कंवः । ५. धवो- भर्ता । ६. रवः- शब्दः । ७. बवो यः कृष्णचतुर्दश्यां भवति सिद्धान्तप्रसिद्धः । तत्र हि बवे कार्यमारब्धं स्थिरं भवतीत्यर्थः । ८. धे- धकारे दृष्टे वकारप्रत्ययः । ९. नवः- [आ]पुराणः ॥१२५॥

१. आ- समन्तात् दशकन्धरस्य- रावणस्य वधः तथा तेन वो- युष्माकम्, हे लङ्केश्वरवैरिवैष्णवास्तद्वधेन वो- भवतां समन्तात् प्रीतिरुत्पादितेत्यर्थः । २. आद- भक्षितवान्, शकं राजानम्, हे धर!- पर्वत!, वं वारुणबीजं मन्त्रिक-प्रसिद्धम्, हे व!, हे धेनवः! ॥१२६॥ युग्मम् ।

[१]प्राह रविर्मद्विरहे कैस्तेजःश्रीः क्रमेण किं चक्रे? ।
[२]कीदृशि च नदीतीर्थे नाऽवतितीर्षन्ति हितकामाः? ॥१२७॥

अहिमकरभैरवापे ।

१. हेऽहिमकर!- आदित्य!, भै-र्नक्षत्रैरवापे- लब्धा । २. अहिमकरैर्भैरवा-भीषणा आपः- पानीयानि यत्र तत् तथा, तस्मिन् ॥१२७॥

स्थिरसुरभितया ग्रीष्मे ये रागीष्टा विचिन्त्य तान् प्रश्नम् ।
यच्चक्रे करिपुरुषस्तदुत्तरं प्राप तत्रैव ॥१२८॥

केसरागजनरुचिताः ।

सह रागेण वर्त्तन्ते इति सरागास्ते च ते जनाश्च तेषां रुचिताः के इति प्रश्नार्थः । उत्तरम् - केसरा- बकुला, गजस्य ना- पुरुषो गजना, तस्य सम्बोधनम् हे गजनाः!- हस्तिपक!, उचिताः- प्रशस्ताः ॥१२८॥

[१]प्रणतजनितरक्षं कीदृगर्हत्पदाब्जं?,
[२]वदति विगलितश्रीः कीदृशं कामिवृन्दम्? ।
[३]प्रणिगदति निषेधार्थं पदं तन्त्रयुक्त्या,
कृतिभिरभिनियुक्तं किं किलाऽहं करोमि? ॥१२९॥

नत्वमसि ।

१. नमतीति नत्, क्विप्, तोऽन्तागमः पञ्चमलोपश्च । नतमवति- रक्षति नतु । २. न विद्यते मा- लक्ष्मीर्यस्याऽसौ अमस्तस्य सम्बोधनम् - हे अम!- गतलक्ष्मीक!, सि - सह इना- कामेन वर्त्तते इति से, सहस्य सभावे, ततः 'स्वरो ह्रस्वः' इति ह्रस्वः । कोऽर्थः? कामेन सह वर्त्तत इत्यर्थः । ३. हे नकार! त्वमसि- भवसि[1] ॥१२९॥

[१]दम्पत्योः का कीदृग्? [२]के कं भेजुरिति सुनृपते! ब्रूहि? ।
[३]मुक्ताः कयाऽऽह्रियन्ते? [४]वदत्यपाच्यश्च मदनध्रुक् कीदृक्? ॥१३०॥

मायानमदनदादानदमनयामा हारदामकाम्ययायाम्यकामदारहा । मन्थानजातिः।

१. माया- निकृतिर्न मदनदा- कामदा । २. दान-दमनया, दानं च दमश्च नयश्च ते दानदमनयाः कर्त्तारो मां नृपतिं कर्मतापन्नं श्रयन्ति, मय्याश्रिता भवन्तीत्यर्थः । ३. हारयष्टिवाञ्छया- मौक्तिकहाराभिलाषेण मुक्ताफलान्या- ह्रियन्ते इत्यर्थः । ४. यमस्येयं यामी, तस्यां भवो गतो वा याम्य[स्तस्य] सम्बोधनम् - हे याम्य!- दाक्षिणात्य!, कामदारं हन्ति कामदारहा- मन्मथकलत्रविनाशकः ॥१२९॥

	हा	
	र	
	दा	
मा या न	म	द न दा
	का	
	म्य	
	या	

1. निषेधार्थं भवसीत्यर्थः -सं. ।

[१]ते कीदृशाः क्व कृतिनो? [२]व्यञ्जनमाह रिपवोऽनमन् कस्मै? ।
[३]कां पातीन्द्रः? पट्टो ब्रवीति [४]कीदृक् क्व भूः प्रायः? ॥१३१॥

येरताजिनमते । तेमनजितारये । लेखराजिमासन । नसमाजिराखले । मन्थानकजातिः ।

१. ये रता- अभियुक्ता, जिनस्य मतं जिनमतं, तस्मिन् । २. हे तेमना!- व्यञ्जन!, जितारये, जिता अरयो येन स तथा तस्मै । ३. लेखराजि- देवश्रेणिम् । हे आसन्!- पट्ट! । ४. न समाजिरा- समप्राङ्गणा खले ॥१३१॥

वर्षाः शिखण्डिकलनादवतीर्विचिन्त्य,
शैला-ऽश्ववक्त्र-दहनाक्षर-वावदूकान् ।
लक्ष्मीश्च नष्टमदनश्च समानवर्ण-
दत्तोत्तरं कथय किं पृथगुक्तवन्तौ? ॥१३२॥

कदागमयुरगादिनः केकास्ति(स्ते)निरे ।

कदा- कस्मिन् कालेऽगः पर्वतो, मयुरश्ववक्त्रो, रो दहनाक्षरो मान्त्रिक-प्रसिद्धः, गदन्तीति गादिनो- वावदूकाः!, के कर्त्तारः काः कर्मतापन्नाः स्तेनिरे-विस्तारितवन्तः? इति प्रश्नार्थः । उत्तरम् - कं- पानीयं ददातीति कदो-मेघस्तस्याऽऽगमः स तथा तस्मिन् । उरगान्- सर्पान् अदन्तीति उरगादिनो-मयूराः कर्त्तारः, केका- मयूरध्वनीन् विस्तारयन्ति स्मेत्यस्ताः कर्मतापन्नाः, ता-लक्ष्मीस्तस्याः सम्बोधनम् - हे ते!- लक्ष्मि!, [निर्गत] इः- कामे(मो) यस्याऽसौ निरिस्तस्य सम्बोधनम् - हे निरे!- हे निर्गतकाम!, मेघागमे सति मयूराः केका-मयूरध्वनीन् विस्तारयन्ति स्मेत्यर्थः ॥१३२॥

[१]सम्बोधयाऽर्द्धमहिमांशुकरैः स्वभावं, कुर्वे किमित्यभिदधाति किलाऽऽर्द्रभावः ।
[३]क्षान्तिं वद [४]प्रहरमाह्वय [५]पृच्छ पुच्छं, [६]ब्रूयास्तनूरुहमुदाहर मातुलं च ॥१३३॥
मञ्जरीसनाथजातिः ।

[१]किं कुर्यां हरिभक्तिमाह कमला कुत्र च्युते चाटुभिः?,
[२]कीदृक्षैः किल शुक्लशुक्लवचसी किञ्चित् खगं प्राहतुः? ।

[३]ज्ञानं कीदृशि मोहभूरुहि भवेँदिभ्यैः क्व चाऽऽरुह्यते?,
[५]वक्त्यार्किः क्व चुरा? [६]चकाऽस्ति विमले कस्मिन् सरोजावली? ॥१३४॥
विपर्यस्तमञ्जरीसनाथजातिः ।

[१]किं कुरुथः के कीदृकौ(शौ) [यु]वामलसौ? पृच्छति तनुरुहरोगः ।
[२]छेत्तुमवाञ्छन् वरमारामं केनाऽप्युक्तः कोऽपि किमाह? ॥१३५॥ गतागतम् ।

नेवस्तेशयालूलोमाम । त्रिभिरेकमुत्तरम् ।

१. हे नेम!- अर्द्ध! । २. वम- त्यज, हे स्तेम!- आर्द्रभाव!, ष्टिम ष्टीम आर्द्रभावे । आदित्यकिरणेषु सत्सु आर्द्रभावो न भवतीत्यर्थः । ३. हे शम!। ४. हे याम!- प्रहर! । ५. हे लूम!- पुच्छ! । ६. हे लोम!- रोम! । ७. हे माम!- मातुल! ॥१३३॥

१. मन, इ!, माने-ऽहङ्कारे च्युते सति । हे कमले! हरेः सम्बन्धि-भिश्चाटुकारैः अहङ्कारे माने च्युते- व्यतीते सति हरेर्विष्णोः सम्बन्धिनी भक्तिस्त्वया मनिता इत्यर्थः । २. लोने- लकारेण ऊने, शुक इति खगप्रभुरित्यर्थः । ३. लूने- छेदिते । ४. याने- वाहने । ५. हे शने!- शनैश्चर!, स्तेने- चौरे । ६. वने- पानीये ॥१३४॥

१. न इवो- न गच्छावः, इण् गतौ, वर्त्तमाना वसि रूपम् । ते- लक्ष्म्यौ [शयालू]-आलस्येन शयनशीलौ भदन्तौ कर्मतापन्नौ लक्ष्म्यौ कर्त्र्यौ आवां न श्रयावः इत्यर्थः । लोमानाममो- रोगो लोमामस्तस्य सम्बोधनं हे लोमाम! । २. मे- मम अलोलूया- अलवितुमिच्छा शस्ते- प्रशस्ते वने ॥१३५॥

[१]का कीदृक्षा वदत भविनां? वक्ति मृत्यूग्ररोगः,
[२]शोचत्यन्तः किल विधिवशात् कीदृगित्युत्तमा स्त्री? ।
[३]गम्भीराम्भःसविधजनता कीदृशी स्याद् भयार्त्ता?,
[४]ब्रूते कोऽपि स्मरपरिगतोऽरक्षि का भूरिभूपैः? ॥१३६॥

तागत्वरीमरक करमरीत्वगता । सारतरीपरमा मारपरीतरसा । मन्थानजातिः ।

१. ता- लक्ष्मीर्गत्वरी- विनश्वरा, हे मरक! २. करमरीत्वं[1] गता करमरीत्वगता सती शोचति । ३. सारा चाऽसौ तरी च सारतरी, तस्यां परमा-

1. बन्दीभावम्, देश्यशब्दोऽयम् इति टी. ।

प्रधाना । ४. मारपरीत!- मन्मथायत्त!, रसा- भूः ॥१३६॥

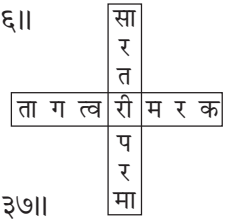

[१]सान्त्वं निषेधयितुमाह किमुग्रदण्डः?,
[२]स्वामश्रियं वदति किं रिपुसाच्चिकीर्षन्? ।
[३]नम्रः स्थिरो गुरुरिहेति वदन् किमाह?,
[४]ये द्यन्ति शत्रुकमलां किल ते किमूचुः? ॥१३७॥

सामधारिमात्वया, यात्वमाऽरिधामसा, नेहगरिमोद्यातां, तांद्यामोऽरिगहने । मन्थानजातिः ।

१. सामनीतिं(तिर्) धारि मा त्वया, 'धृ धारणे'ऽद्यतनी भावे, 'तानमामे'त्यादिनाऽट्प्रतिषेधः । २. यातु- व्रजतु अमा- अलक्ष्मीररिधाम- शत्रुगृहं, ला(सा)-ऽलक्ष्मीः । ३. नेह गरिमा- गुरुत्वमुद्यातां- धावतां-चपलानामित्यर्थः । ४. तां- कमलां द्यामः- खण्डयामो-ऽरिगहने- शत्रुगहने ॥१३७॥

[१]का स्त्री ताम्यति कीदृशा स्वपतिना? [२]विद्या सदा किंविधा,
सिध्येद् भक्तिमतोऽर्थं लोकविदिता का कीदृगम्बा च का? ।
[५]किम्भूतेन भवेद् धनेन धनवान्? [६]साङ्ख्यैश्च पुंसेष्यते,
कीदृक्षा प्रकृतिर्वसन्तमरुतोत्कण्ठा दधे कीदृशा? ॥१३८॥ मञ्जरी ।

[१]केष्टा विष्णोर्निगदति गदः? [२]प्राह सव्येतरोऽथ,
श्रीरुद्राण्योः कथयत समाहारसम्बोधनं किम्? ।
[३]प्राहर्जुः [किं जि]गमिषुमिनं वक्ति कान्ताऽनुरक्ता?,
[४]सान्त्वं [५]धूम्रं [६]प्रहरमपि सम्बोधयाऽनुक्रमेण ॥१३९॥

विपरीतसनाथजातिः ।

[१]भण केन किं प्रचक्रे नयेन भुवि कीदृशेन का [नृ]पते!? ।
[२]काः पृच्छति तरलतरः के यूयं किं कुरुत सततम्? ॥१४०॥ गतागतः।

मयाध्यासामासयुवाता । त्रिष्वेकमुत्तरम् ।

१. मता- ऽभिमता स्त्री, याता- गच्छता । यदा भर्त्ता बहिर्गच्छति तदाऽभिमता स्त्री ताम्यतीत्यर्थः । २. ध्याता सती । ३. सा- लक्ष्मीः अता,

अततीति अता, चञ्चलेति विदितेत्यर्थः । ४. माता । ५. सता- विद्यमानेन । ६. युता- सहिता । ७. वाता- कम्पता ॥१३८॥

विपरीतमञ्जरी - १. ता- लक्ष्मीः, हेऽम!- रोग! । २. वाम!- सव्येतर !, ई च उमा च युमम्, तत्सम्बोधनं- हे युम! । ३. हे सम!- ऋजो!, माऽम- मा गच्छ । ४. हे साम!- समते! । ५. हे ध्याम!- धूम्र! । ६. हे याम! ॥१३९॥

गतागतः - १. मया, अवतीति क्विपि तृतीयैकवचने उवा- रक्षकेण, ता- राज्यादिलक्ष्मीरध्यासामासे । २. हे वायुसम!, असा- अलक्ष्मीका वयं ताः- लक्ष्मीः कर्मतापन्ना ध्यायाम ॥१४०॥

[१]लोके केन किलाऽऽपि कान्तकविता? [२]कीदृग् महावंशज-
श्रेणिः? [३]श्रीसुरयाज्ञिकेन्द्रियजया बोध्याः समाहारतः ।
[४]हे दुःप्रव्रजितप्रदानक! कुतः का पात्रदात्रोर्भवेत्?,
[५]कीर्तिर्यस्य किलोत्तरं तमखिलं प्रश्नं सुरायै वद ॥१४१॥

कालिदासकविना । नाविकसदालिका । तामरसविदम । मदविसरमता सरक! विदामविदलिता नाम का? मन्थानान्तरजातिः ।

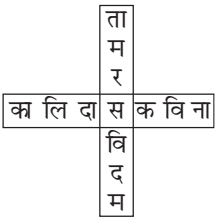

१. कालिदासाभिधेन कविना । २. नाऽविकसन्ती, आलिकानां विकसत्(ती?) श्रेणिः । किं तर्हि? विकसदालिका । ३. सवो- यज्ञो विद्यते यत्र स सवी । ता च लक्ष्मीरमरश्च देवः सवी च याज्ञिको दमश्चेन्द्रिय-जयस्तत्सम्बोधनं - हे तामरसविदम! । ४. मत्तो-मत्सकाशादविसरमता । अविश्चेडकः समरश्च श्वा, तयोर्भावोऽविसमरता । ५. हे सरक!- सुरे!, विदां- पण्डितानाम् अविदलिता- अखण्डिता का? कीर्तिः । नामशब्दः प्राकाश्ये ।

[१]तमालव्यालमलिने कः क्व प्रावृषि सम्भवी? ।
[२]आख्याति मूढः क्वाऽऽरूढैर्निस्तीर्णस्तूर्णमर्णवः? ॥१४१॥

तेपोनवजलवाहे । गतागतः ।

१. तेपः- क्षरणं नवजलवाहे- नूतनजीमूते । २. हे बाल!, जवो विद्यते यस्याऽसौ जवनः, लोमपा[मा]दिना मत्वर्थीयो नः, जवनश्चाऽसौ पोतश्च जवनपोतः,

तस्मिन् ॥१४१॥

[१]ध्वान्तं ब्रूतेऽर्हतां का तृणमणिषु? [२]खगः कश्चिदाख्याति केन,
प्रीतिर्मेऽथाऽऽह कर्म प्रसभकृतमहो दुर्बलः केन पुष्येत्? ।
[४]कामध्रुग् वक्ति काऽत्र प्रजनयति शुनो? [५][युद्धह्]त् पूर्वलक्ष्मी-
सत्तासन्दिग्धबुद्धिः कथमथ कृतिभिः शश्वदाश्वासनीयः? ॥१४२॥

तामस । [समता । सारस । सरसा । स]हसा । साहस । मारस । सरमा । समरहर! तासासा मास । पद्मजातिः ।

	सा		
	र		
ता म	स	ह सा	
	र		
	मा		

१. तामस!, समता । २. हे सारस!, सरसा-सरोवरेण । ३. हे साहस!- अपर्यालोचितकर्म!, सहसा-बलेन । ४. मारं स्यति- तनूकरोतीति मारसस्तत्सम्बोधनं- हे मारस!, सरमा- शुनी । ५. समरे- सङ्ग्रामे हरतीति समरहरस्तत्सम्बोधनं - समरहर!, ता- लक्ष्मीः, सा सा-सैव, मा आस- चिक्षेप ॥१४२॥

[१]किमभिदधौ करभोरुं सततगतिं किल पतिः स्थिरीकर्तुम्? ।
[२]जननी पृच्छति विकचे कस्मिन् सन्तुष्यति भ्रमरः? ॥१४३॥

मातरम्भोरुहे ।

१. माऽत- मा गच्छ, रम्भावदूरू यस्याः सा तथा, तस्याः सम्बोधनं- हे रम्भोरु! । २. हे मातः!- जननि!, अम्भोरुहे- पद्मे ॥१४३॥

[१]प्राधान्यं धान्यभेदे क्व कथय[ति] चयं(यः)? [२]कीदृशी वायुपत्नी,
नक्षत्रं वक्ति [३]कुर्वे किमहमिनमिति प्राह तत्स्तोत्रजीवी ।
[४]ब्रूहि ब्रह्मस्वरं च [५]क्षितिकमभिगदाऽथोल्लसल्लीलमङ्गू-
ल्लापामामन्त्रय स्त्रीं [७]क्व सजति न जनः प्राह कोऽप्यम्बुपक्षीः ॥१४४॥

कलमे । मेलक । करता । तारक । सेवक । कवसे । कराव । वराक । कलरवरामे । तासे बक । पद्मजातिः ।

१. कलमे- शालौ, हे मेलक!- चय! । २. के- वायौ रता करता, हे तारक!- नक्षत्र! । ३. हे सेवक!, कवसे- स्तौषि । ४. कस्य- ब्रह्मणो रावः- शब्दः करावस्तत्सम्बोधनं - हे कराव! । ५. हे वराक!- क्षितक! । ६. कलो

रवो यस्याः सा तथा, सा चाऽऽसौ रामा च सा तथा, तस्याः सम्बोधनं - हे कलरवरामे! ७. तां- लक्ष्मीं स्यतीति तासस्तस्मिन्, हे बक! ॥१४४॥

[१]कीदृक्षं लक्ष्मीपतिहृदयं? [२]कीदृग् युगं रतिप्रीत्योः? ।
[३]कः स्तूयतेऽत्र शैवैर्गुणवृद्धी चाऽज्झलौ कस्य? ॥१४५॥

स्युः ।

१. सह या- लक्ष्म्या वर्तते इति सि । 'सह ई' इति स्थिते सहस्य सभावो, 'अवर्णइवर्ण' ए, 'स्वरो ह्रस्वो नपुंसके' । २. सह इना- कामेन वर्तते इति सि । अशपि ह्रस्वत्वम् । रतिप्रीति(ती) कामभार्ये, ततश्च कामेन सह वर्तते रतिप्रीतियुगमित्यर्थः । ३. उः- शङ्करः । ४. उः- ऋकारस्य । अज्झल्युक्तः गुणोऽर् वृद्धिश्चाऽऽर् ॥१४५॥

[१]कुत्र प्रेम ममेति पृच्छति हरिः, [२]श्रीराह कुर्यां प्रियं,
किं प्रेम्णाऽहं[३]महो गुणाः! कुरुत किं यूयं गुणिन्याश्रये? ।
[४]किं कुर्वे व(ऽर्च्य)मिंदं प्रगायति किमुद्गाताऽऽह सीरायुधः,
[६]किं प्रेयःप्रणयास्पदं स्मरभवः पर्यन्वयुङ्क्ताऽऽमयः ॥१४६॥ मञ्जरीसनाथजातिः ।

[१]विकरुण! भण केन किमाधेया का? [२]रज्यते च केन जनोऽयम्? ।
[३]कार्या न का वणिज्या? [४]का धर्मे नेष्यते? [५]कयाऽरञ्जि हरिः? ॥१४७॥
विपरीतमञ्जरी ।

[१]काः कीदृशीः कुरुध्वे किं सन्तोषाग्निनर्षयो यूयम्? ।
किमहं करवै मदनभयविधुरितः कान् कया कथय? ॥१४८॥ गतागतः ।

यायमानसारादहेम ।

मञ्जरी - १. ई- लक्ष्मीस्तस्यां यां, हे अ!- विष्णो! । ई इति सप्तम्येकवचनान्तस्य रूपम् । २. इ!- लक्ष्मि!, अम- गच्छ । ई इति स्थिते सम्बोधन- ह्रस्वत्वे यत्वे च सति रूपम् । ३. माम, मा माने, पञ्चमी आम । ४. नम- प्रणम । ५. साम- सामवेदं, हे राम!- बलदेव! । ६. दं- कलत्रम्, एः- कामस्याऽपत्यम् अः, अपत्येऽण्, इवर्णेत्यादिना इलोपः, प्रत्ययमात्रावस्थानं, तत्सम्बोधनं- हे अ!, तथा हेऽम!- [रोग!] ॥१४६॥

विपरीतमञ्जरी - १. मया हेया दया । २. राया- द्रव्येण । ३. सहाऽऽयेन लाभेन वर्तते साया न या वणिज्या । ४. माया । ५. यया- लक्ष्म्या

॥१४७॥

गतागतः - १. याः- लक्ष्म्योऽमानसारा- अपूजाप्रधाना दहेम, दह भस्मीकरणे, सप्तमी याम । २. मह- पूजय, ऐः-कामाद् दरो- भयं तमस्यन्ति-क्षिपन्ति ये ते इदरासास्तानमायया- अच्छद्मभावेन ॥१४८॥

[१]कृषीवलः पृच्छति कीदृगार्हतः?, [२]क्व केन विद्वानुपयाति हास्यताम्? । [३]सुरालयक्रीडनचञ्चुरुच्चकैश्च्युतिक्षणे शोचति निर्जरः कथम्? ॥१४९॥

हालिक । कलिहा । ना[लि]के । केलिना । नाककेलिहा । मन्थानकजातिः ।

१. हे हालिक!- कृषीबल!, कलिं हन्ति कलिहा । २. केलिना- हास्येन, नालिके- द्रुंनालिके(?) । ३. नाकस्य- देवलोकस्य केलिः, हेति खेदे ॥१४९॥

[१]कं कीदृक्षं स्पृहयति जनः शीतवाताभिभूतः?, **कम्बलम्**
[२]कश्चिद् वृक्षो वदति पलभुग् मांससत्के क्व रज्येत्? । **केसर**
[३]हेतुर्ब्रूते परिवहति का स्थूलमुक्ताफलाभाम्?, **कारक**
[४]यव्यक्षेत्रक्षितिरिह भवेत् कीदृगित्याह काकः? ॥१५०॥ **सयवा**

गतागतचतुष्टयम् ।

१. कम्बलम्, लम्बमेव लम्बकम्, स्वार्थे कः, विस्तीर्णम् । २. हे केसर!- बकुल!, रसके- मांससम्बन्धिनि रसे, वह्निसंयोगे सति यः क्षरति । ३. हे कारक!, करका- घनोपलाः । ४. सह यवैर्वर्त्तन्ते इति सयवाः, हे वायस!-काक! ॥१५०॥

[१]श्रीचित्ते प्रियविप्रयोगदहनोऽहं कीदृशे किं दधे?,
[२]प्रेम्णा किं करवाण्यहं हरिपदोः पप्रच्छ लक्ष्मीरिति ।
[३]कस्मै चिक्लिशुरङ्गदादिसुभटाः? [४]क्वाऽनोकहे नम्रता?,
[५]कस्मै किं विदधीत भक्तविषयत्यागादिकमार्हतः? ॥१५१॥

सेतप । पतसे । सेतवे । वेतसे । तपससेवेत ।

१. से । सह एन- विष्णुना वर्त्तते सा (सम्), तस्मिन् । सहस्य सभावे सप्तम्येकवचने रूपम् । तप- सन्तापं कुरु । २. पत- प्रणामं कुरु, हे से!- लक्ष्मि ! । ३. सेतवे- जलबन्धाय ।

४. वेतसे- जलवंसे । ५. तपसे- तपोनिमित्तं सेवेत- कुर्वीत ॥१५१॥

[१]हिमवत्पत्नी परिपृच्छति कः कीदृक् कीदृशि कस्याः कस्मिन्? ।
[२]केन न लभ्या नृसुरशिवश्रीरित्याख्यत् किल कोऽपि जिनेन्द्रः ॥१५२॥

मेनेपिनाकीवक्तावाननेतेविनये । गतागतः ।

१. हे मेने!- हिमाचलभार्ये!, पिनाकी- हरः वक्ता- वचनशीलो, 'वन षन सम्भक्तौ' इनन्तस्ततो वानयतीति वानन:- सम्भक्तिकारको विनयस्तस्मिन् वानने विनये, ते- तव । २. येन पुंसा वितेने- विस्तारिता, न- नैव वाक्- वचनं तावकीनाऽपि- तव सम्बन्धिन्यपि, हे नेमे! जिन! ॥१५२॥

[१]तणजलतरुपुन्नं वाहसुन्नं पि रन्नं, भण हरिणकुलाणं केरिसं केरिसं नो? ।
प्रलयपवनवेगप्रेरणात् कीदृशेऽब्धौ, सततदधिवासं व्यूढमैक्षन्त कं वा? ॥१५३॥

बहुलहरितरच्छकुलचलच्छंखेमकरं ।

१. बहुलाः- प्रभूता हरयः- सिंहास्ते च तरच्छाच्च रिच्छास्ते तथा, तेषां कुलानि, तेषां चलन्त्यक्षीणि यत्र तत्तथा, क्षेमकरं- शुभकरम् । २. बह्व्यश्च- प्रचुराश्च ताः लहर्यश्च ताभिस्तरन्तः शकुला जीवा चलन्तश्च शङ्खाश्च यत्राऽब्धौ स तथा तस्मिन्, मकरम् ॥१५३॥

[१]को धर्मः स्मृतिवादिनां? [२]दधति के द्विःसप्तसङ्ख्यामिह?,
[३]प्रार्थ्यन्ते च जनेन के भवभवाः? [४]पुंसां श्रियः कीदृशः? ।
[५]को वाऽभ्रङ्कषकोटयः शिखरिणां रेजुस्तथा कांश्चन,
श्रीरस्मानजनिष्ट नाऽङ्गजमिति प्रोक्तान् वदेत् किं स्मरः? ॥१५४॥

मामसूतसानवः । मञ्जरीजातिः ।

१. मनो ऋषेरयं मानवोऽणि रूपम् । २. मनवो, मनुशब्देन चतुर्दशाऽभिधीयन्ते । ३. सूनवः- पुत्राः । ४. तनवः- तुच्छाः । ५. सानवः- प्रस्थाः । ६. मां स्मरमसूत- जनितवती सा- लक्ष्मीर्न- नैव वो- युष्मान् । यदा केचनैवं वक्तारो भवन्ति - यदुत श्रीर्लक्ष्मीरस्मानेव जनितवती, नाऽङ्गजं कामदेवं, तदाऽङ्गजः कामदेवस्तान् प्रतिपादयेदित्यर्थः ॥१५४॥

[१]पाके धातुरवाचि कः? [२]क्व भवतो भीरो! मनः प्रीयते?,
[३]सालङ्कारविदग्धया वद कया रज्यन्ति विद्वज्जनाः? ।

[४]पाणौ किं मुरजिद् बिभर्ति? [५]भुवि तं ध्यायन्ति वा के सदा?,
[६]के वा सद्गुरवोऽत्र चारुचरण-श्रीसुश्रुता विश्रुताः? ॥१५५॥

श्रीमदभयदेवाचार्याः ।

१. श्री, श्रीञ् पाके । २. ममाऽभयं ददातीति मदभयदस्तस्मिन् । यो मदभयं ददाति तत्र मम मनः प्रीतियुक्तं भवतीत्यर्थः । ३. वाचा- वचनेन । ४. अरा विद्यन्ते यत्र तदरि- चक्रम् । ५. ऐ- विष्णौ भक्तिर्येषां ते आ-वैष्णवाः, 'तत्र भक्ति'रित्यण् ॥१५५॥

[१]कः स्यादम्भसि वारिवायसवति? [२]क्व द्वीपिनं हन्त्ययं,
लोकः? [३]प्राह हयः प्रयोगनिपुणैः कः शब्दधातुः स्मृतः? ।
[४]ब्रूते पालयिताऽत्र दुर्धरतरः कः क्षुभ्यतोऽम्भोनिधे-
[५]र्बूहि त्वं जिनवल्लभ! स्तुतिपदं कीदृग्विधाः के सताम्? ॥१५६॥

मद्गुरवो जिनेश्वरसूरयः ।

१. मद्गुर्जलवायसः, तस्य रवः- शब्दः । २. अजिने- चर्मणि, 'निमित्तात् कर्मसंयोगे सप्तमी वाच्या'ऽनेनाऽजिनेत्यत्र सप्तमी । ३. हे अश्व!- हय!, रस्, तुस[ह्रसह्लशरस] शब्दे इति वचनात् । ४. ऊ!- रक्षक!, अवतीति क्विप्, श्रव्यथेत्यादिना ऊटि रूपम्, रयो- वेगः । ५. मम जिनवल्लभस्य गुरवो मद्गुरव, एवंविधाः सन्तः के? जिनेश्वरसूरयः, सतां- शिष्टानां स्तुतिपदमित्यर्थः ॥१५६॥

[१]प्रत्येकं हरि-धान्यभेद-शशिनः पृच्छन्ति किं लुब्धक!,
त्वं प्राप्तं कुरुषे मृगव्रजैमथो खाददृगृहीताऽवदत् ।
कीदृग् भाति सरोऽर्हतश्च सदनं? [३]किं चाऽल्पधीर्नाऽऽप्नुवन्,
पृष्टः प्राह? [४]तथा च केन मुनिना प्रश्नावलीयं कृता? ॥१५७॥

जिनवल्लभेन । गतागतद्विर्गतः ।

१. हे जिन!- विष्णो!, हे वल्ल!- धान्यभेद!, भं- नक्षत्रं, तस्य इनः- स्वामी भेनस्तस्य सं.- हे भेनेन्दो!, नभे, णभेत्यस्य वर्त्तमाना ए रूपम् । त्रयाणामपि सम्बोधनम् । २. अत्- अदन्-खादन् लाति- गृह्णाति अल्लः, 'अद-प्सा भक्षणे'ऽत्तीति अत्, क्विप्, परो लाऽऽदाने, आतोऽनुपसर्गादिति कः, पररूपे सम्बोधने - हेऽल्ल!, वनजि, वनं- पानीयं, तत्र जातं वनजं, तद् विद्यते

यत्र सरसि तत्तथा । तथा [जिनवद्-] जिनो विद्यते यत्राऽर्हत्सदने तत्तथा । ३. लभे- प्राप्नोमि न- नैव । ४. जिनवल्लभेन ॥१५७॥

किमपि यदिहाऽश्लिष्टं क्लिष्टं तथा चिरसत्कवि-
प्रकटितपथाऽनिष्टं शिष्टं मया मतिदोषतः ।
तदमलधिया बोध्यं शोध्यं सुबुद्धिधनैर्मनः,
प्रणयविशदं कृत्वा धृत्वा प्रसादलवं मयि ॥१५८॥

इति खरतर-श्रीजिनवल्लभसूरिकृतं प्रश्नशतं तट्टीका च सम्पूर्णमिति भद्रम् । श्रीरस्तु । संवत् १६ आषाढादि १८ वर्षे श्रावणसुदि ९ रवौ लिखितमिदं पुस्तकम् । लेखक-पाठकयोः कल्याणं भूयास्ताम् ॥

* * *

अनुसन्धान-५७, टूंक नोंध - २ नी पूर्ति

अनुसन्धान-५७मां अेक टूंकनोंधमां, अत्यारे गणावाता ३४ अतिशयोमांथी समवसरण, सुवर्णकमल जेवा घणा अतिशयो, समवायाङ्गजीमां नथी जणावाया ते विशे चर्चा थई हती. आ सम्बन्धे अेक महत्त्वपूर्ण उल्लेख श्रीजिनभद्रगणि-विरचित विशेष-णवतिमां छे :

''होऊणं व देवकया चउतीसाइसयबाहिरा कीस ।
पागारंबुरुहाइ अणण्णसरिसा वि लोगम्मि ? ॥१०९॥

(प्रश्न : देवो द्वारा रचायेलां समवसरण, कमल व. विश्वमां अनन्य होवा छतां पण ३४ अतिशयोमां केम तेमनी गणतरी नथी ?)

''चोतीसं किर णिययया ते गहिआ सेसया अणियय त्ति ।
सुत्तम्मि न संगहिआ जह लद्धीओऽवसेसाओ ॥११०॥

(उत्तर : जेम लब्धिओ अनन्त होवा छतां सूत्रमां तो २८ ज गणाववामां आवी छे; तेम जे अतिशयो नियत- अवश्यम्भावी हता, तेमनी ज गणना सूत्रमां करवामां आवी छे. बाकीना अनियत- कादाचित्क अतिशयोनुं ग्रहण सूत्रमां नथी कर्युं.)''

जिनेश्वर समवसरणमां ज देशना आपे के प्रभु सुवर्णकमल पर ज चाले अेवी प्ररूपणाओना सन्दर्भे आ उल्लेख ध्यानपात्र छे अने खुलासारूप छे.

शासनसम्राट्-श्रीविजयनेमिसूरीश्वरजी-विरचिता

अनेकान्ततत्त्वमीमांसा

सं. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय

परमगुरु तपगच्छाधिपति श्रीविजयनेमिसूरिजी म. (वि.सं. १९२९-२००५) जैनशासनना धोरीपुरुष हता. तेओश्रीअे शासनप्रभावनानां अनूठां कार्योनी साथे साथे श्रुतोपासनानां पण रूडां कार्यो कर्यां हतां. तेओश्री अद्भुत मेधा अने कठोर परिश्रमने लीधे स्वयं अनेक विद्याशाखाओना पारगामी बन्या हता अने शिष्योने पण संगीन अभ्यास करावी विद्वन्मूर्धन्य बनाव्या हता. परमगुरु अने तेओना शिष्यपरिवार पासेथी जैनसंघने घणा घणा प्राचीन-ग्रन्थोना संशोधन-सम्पादन-विवेचन व. सांपड्यां. श्रीहरिभद्रसूरिजी, उपा. श्रीयशोविजयजी जेवा महापुरुषोना ग्रन्थोना अध्ययननी परिपाटी श्रमणसंघमां पुनः प्रस्थापित करवानो यश, जो वास्तविक रीते कोईने घटतो होय तो ते आ परिवारने ज छे.

परमगुरु तथा तेओना शिष्यवृन्द द्वारा नूतन ग्रन्थोनुं सर्जन पण विपुल प्रमाणमां थयुं. स्वयं परमगुरुअे ज सप्तभङ्गीप्रभा, न्यायसिन्धु, न्यायालोकटीका, न्यायखण्डखाद्यटीका जेवा उत्तमोत्तम ग्रन्थोनी रचना करी छे. जैनन्याय अने जैनप्रमाणचर्चा साथे सम्बन्धित प्रस्तुत कृति पण तेओश्रीनी ज रचना छे.

अनेकान्ततत्त्वमीमांसा अे नाम सूचवे छे तेम, आ ग्रन्थमां स्याद्वादनी चर्चा तो छे ज; पण अेनी साथे ने साथे आ स्याद्वादतत्त्वने समजवानां साधनो-प्रमाण, नय अने निक्षेपनी पण विशद छणावट छे. षड्द्रव्यनी विचारणा पण विस्तारथी करवामां आवी छे. वस्तुतः आ समग्र कृतिमां स्याद्वादनुं स्वतन्त्र निरूपण छे ज नहीं, पण स्थाने स्थाने तेनुं निरूपण सांकळी लेवायुं छे अने अे ज आनी खूबी छे. सूत्रात्मकशैलीनो आ ग्रन्थ ४ अध्याय, १६ पाद अने ३४७ सूत्रोमां वहेंचायेलो छे, जेनी तालिका भूमिकाने अन्ते मूकी छे.

खूब ओछा शब्दोमां वस्तुछणावट अने पूर्वसूत्रोनां पदोनी उत्तरसूत्रोमां अनुवृत्ति अे बे सूत्रात्मक ग्रन्थनी विशेषता होय छे. अने तेमां पण प्रस्तुत कृतिमां तो अेना कर्ताना प्रगाध पाण्डित्यनी छाप गहन रीते पडी छे. अेटले

मारा जेवा बाळ जीवो माटे आ कृतिनां सूत्रोनुं तात्पर्य तो ठीक, सामान्य शब्दार्थ पण समजवो अघरो छे. छतां पण समग्र कृति लखतां-अवलोकतां पूर्वना कोईक महर्षिनी महान रचना होय अेवी अनुभूति सतत थई छे.

आ ग्रन्थनी स्वोपज्ञ टीका हती अेवी नोंध मळे छे पण अत्यारे तो अे उपलब्ध नथी. मूळ कृति पण सचवाई ते पूज्य गुरुभगवन्त आचार्य श्रीविजयशीलचन्द्रसूरिजी म.नी काळजीने आभारी छे. तेओअे आ कृतिनो लांबा फूलस्केप बारेक कागळ पर पेन्सिलथी लखायेलो काचो खरडो वर्षोथी जतनपूर्वक साचवी राख्यो हतो. आ खरडामां जूनी लिपिमां सूत्रो लखवामां आव्या छे अने त्यारबाद अनेक सुधारा-वधारा, सूत्रोनी वधघट, विषयविभाग व. करवामां आव्या छे.

आ कृति पोताना विषयनी अेक समग्र कृति छे. बहु ओछी कृतिओ आवुं पूर्णत्व धरावती होई शके. आनां सूत्रोनी विशिष्ट रचनाशैली, अन्य प्रमाणशास्त्रो साथे अेनी तुलना, कर्तानो मौलिक उन्मेष, अनेकान्ततत्त्व व. विशे विस्तृत विवेचन लखवानो मारो ख्याल हतो. परन्तु तेवा विशिष्ट अभ्यासना अभावे अे साहसथी विरमवानुं उचित लाग्युं छे. अत्यारे तो मूळ कृतिना काचा खरडाने सुग्रथित स्वरूपमां अभ्यासीओ सामे मूकीने सन्तोष मानी लीधो छे. अर्थना अनवबोधने लीधे थयेली भूलो तरफ ध्यान दोरवा विद्वानोने विनन्ति. परमगुरुनी अेक अप्रगट कृति सौप्रथम वखत प्रकाशित थई रही छे तेने अनेरो आनन्द छे.

तालिका

अध्याय	पाद	सूत्रसंख्या		विषय
१	१	१३	५९	प्रमाणसामान्यलक्षण
	२	१५		प्रमाणस्वरूपादिविप्रतिपत्तिनिराकरण
	३	१९		,,
	४	१२		लक्षणस्वरूप
२	१	५१	१३७	प्रत्यक्षप्रमाण
	२	३८		अनुमानादिप्रमाण
	३	२१		आगमप्रमाण
	४	२७		प्रमाणाभास
३	१	१९	६१	नयस्वरूप
	२	१५		नयाभास
	३	१५		निक्षेपस्वरूप
	४	१२		कथास्वरूप
४	१	१६	९०	द्रव्यसंख्यानियमन
	२	१८		आकाशादिद्रव्यस्वरूप
	३	३६		जीव-सप्ततत्त्वस्वरूप
	४	२०		पुद्गलस्वरूप
---	---	---		
४	१६	३४७		

अनेकान्ततत्त्वमीमांसा

॥ अथः प्रथमोऽध्यायः ॥

अथाऽनेकान्ततत्त्वमीमांसा ॥१.१.१॥
प्रमाण-नय-निक्षेपतस्तत्त्वावधारणम् ॥१.१.२॥
वस्तुव्यवसायि ज्ञानं प्रमाणम् ॥१.१.३॥
समारोपविरोधात् प्रामाण्याद् वा ॥१.१.४॥
स्वपरावगाहित्वं तु समानम् ॥१.१.५॥
नाऽर्थोपलब्धिहेतुर्विकल्पासहत्वात् ॥१.१.६॥
नाऽनधिगतार्थाधिगन्तृ तत्त्वानुभूतिर्वा, स्मृत्यव्याप्तेः ॥१.१.७॥
सम्यगर्थनिर्णयस्तु नोक्तादन्यः ॥१.१.८॥
तद्वति तज्ज्ञानमित्यप्यनर्थान्तरम् ॥१.१.९॥
नैवं समारोपः ॥१.१.१०॥
विपर्यय-संशया-ऽनध्यवसायास्तु तद्विशेषाः ॥१.१.११॥
प्रामाण्यं त्वस्योत्पत्तौ परतः, ज्ञाने स्वतः परतश्चाऽप्रामाण्यवत् ॥१.१.१२॥
जनि-ज्ञप्ति-फलेषु स्वत एवेति प्रतिबन्दिपराहतमिति ॥१.१.१३॥

॥ इति [प्रथमाध्याये] प्रथमः पादः ॥

ज्ञानमात्रं, भ्रमाभावात् ॥१.२.१॥
न, हेत्वसिद्धेः ॥१.२.२॥
वस्त्वसिद्धेर्नैवम् ॥१.२.३॥
न, बाधकाभावात् साधकसद्भावाच्च ॥१.२.४॥
न निर्विकल्पाव्याप्तिरलक्ष्यत्वात् ॥१.२.५॥
लक्ष्यासिद्ध्याऽसम्भव इति न, व्यवहारतस्तत्सिद्धेः ॥१.२.६॥
स्वीकारतिरस्कारोपेक्षास्तु तद्विशेषाः ॥१.२.७॥
कार्यकारणभावाभावान्नोक्ताऽसिद्धिः ॥१.२.८॥
नाऽवधेर्नियमात् ॥१.२.९॥
स्वभावादितस्तु न प्रतिनियमः ॥१.२.१०॥
ग्राह्यग्राहकभावविधुरमेव तत् ॥१.२.११॥

न, प्रतिकर्मव्यवस्थाद्यनुपपत्तेः ॥१.२.१२॥
विचारासहत्वाच्छून्यमेवेति ॥१.२.१३॥
न, तदतद्भ्यां हेतोरनुपपत्तेः ॥१.२.१४॥
एतेनाऽनिर्वचनीयतावादः प्रत्युक्त इति ॥१.२.१५॥

॥ इति [प्रथमाध्याये] द्वितीयः पादः ॥

प्रकृतिविकारस्य महतो वृत्तिस्तत् ॥१.३.१॥
न, तत्प्रक्रियाया एवाऽभावात् ॥१.३.२॥
नाऽतोऽविद्याऽन्तःकरणवृत्तिः ॥१.३.३॥
नाऽऽधारमात्रं, साधारोपलब्धेः ॥१.३.४॥
नाऽऽधारव्यतिरिक्तमेव, सम्बन्धानुपपत्तेः ॥१.३.५॥
न स्वस्वरूपमात्रप्रतिष्ठितं, व्यतिरेकात् ॥१.३.६॥
अविष्वग्भूतं त्वात्मनः ॥१.३.७॥
न प्राग् सदेव, व्यापारवैयर्थ्यात् ॥१.३.८॥
नाऽसदेव, उत्पत्त्यनुपपत्तेः ॥१.३.९॥
सदसद्वादस्तु सद्वादः ॥१.३.१०॥
न विरोधोऽपेक्षोक्तेः ॥१.३.११॥
अस्तु सर्वदाऽनावृतमेव ॥१.३.१२॥
[न,(?)] सर्वस्य सर्वज्ञत्वाप्तेः संशयाद्यनुपपत्तेश्च ॥१.३.१३॥
न प्रतिनियतविषयत्वमविनिगमात् ॥१.३.१४॥
हेतुस्तु क्षयोपशमादावुपकरोति ॥१.३.१५॥
नाऽऽवृतमेव, स्वभावप्रच्युतेः ॥१.३.१६॥
उक्तस्य केवलादन्यत्राऽसम्भवः ॥१.३.१७॥
नाऽभेदश्रयणादनेकान्तात्मवस्तुप्रतिभासात् ॥१.३.१८॥
भेदाश्रयणे त्वंशप्रथनान्नयोऽपीति ॥१.३.१९॥

॥ इति [प्रथमाध्याये] तृतीयः पादः ॥

स्वरूपोक्तेर्नेदं लक्षणम् ॥१.४.१॥
न, स्वरूप-तटस्थाभ्यां तद्भेदात् ॥१.४.२॥
न निष्प्रयोजनं, व्यावृत्तिप्रतीतेः ॥१.४.३॥

न सिद्धता, सामान्य-विशेषाभ्यामवगमवैलक्षण्यात् ॥१.४.४॥
अत एव नाऽऽत्माश्रयादिरनेकान्तत्वाच्च ॥१.४.५॥
नाऽनवस्थानादुपेक्षा, जिज्ञासोपरमात् ॥१.४.६॥
रूढि-योगाभ्यां लक्ष्योक्तेरुभयावगतिः ॥१.४.७॥
नाऽतिव्याप्तेः ॥१.४.८॥
सङ्केतं विनाऽसत्कल्पः सम्बन्धः ॥१.४.९॥
नांऽशेऽपि पातादत्यापत्तिः, विशिष्टस्य कथञ्चिद्भेदात् ॥१.४.१०॥
नाऽन्यत्र प्रामाण्यमनुपस्थितेः ॥१.४.११॥
नाऽननुगमादव्याप्तिर्भेदात् कथञ्चिदनुगमाद् वेति ॥१.४.१२॥

॥ इति [प्रथमाध्याये] तुर्यः पादः ॥

॥ इति प्रमाणसामान्यस्वरूपनिरूपणाख्यः प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

प्रत्यक्ष-परोक्षाभ्यां द्वेधा ॥२.१.१॥
प्रत्यक्षमेकं, प्रत्यक्षा-ऽनुमाने द्वे, प्रत्यक्षा-ऽनुमानो-पमानानि त्रीणि, प्रत्यक्षा-ऽनुमानाऽऽगमास्त्रयं, प्रत्यक्षा-ऽनुमानो-पमाना-ऽऽगमाश्चत्वारः, प्रत्यक्षा-ऽनुमानो-पमाना-ऽऽगमा-ऽर्थापत्तयः पञ्च, प्रत्यक्षा-ऽनुमानो-पमाना-ऽऽगमा-ऽर्थापत्त्य-नुपलब्धयः षडित्यादयस्त्वसद्वादाः ॥२.१.२॥
स्पष्टमाद्यम् ॥२.१.३॥
मानान्तरानपेक्षत्वं विशेषावभासनं वा तत्त्वम् ॥२.१.४॥
नेन्द्रियार्थप्राप्तिजं, चक्षुर्मनसोरप्राप्यकारित्वात् ॥२.१.५॥
नेन्द्रियजं, मनसोऽनिन्द्रियत्वादवध्याद्यव्याप्तेश्च ॥२.१.६॥
अत एव नाऽर्थजम् ॥२.१.७॥
ज्ञानाकरणकन्तु नोक्तादन्यत् ॥२.१.८॥
विषयत्वे तन्त्रं न क्षयोपशमादिभ्योऽन्यत् ॥२.१.९॥
न निर्विकल्पकमेव, मानत्वासिद्धेः सविकल्पकस्यैव तथानुभवाच्च ॥२.१.१०॥
न चैतन्यानामेकलोलीभावोऽसिद्धेः ॥२.१.११॥
सांव्यवहारिक-पारमार्थिकाभ्यां द्विविधमेतत् ॥२.१.१२॥
न लौकिका-ऽलौकिकाभ्यामलौकिकासत्तेरभावात् ॥२.१.१३॥

इन्द्रियजा-ऽनिन्द्रियजाभ्यामाद्यं द्विधा ॥२.१.१४॥
अत्र द्रव्येन्द्रियं गृह्यते, न भावेन्द्रियम् ॥२.१.१५॥
निर्वृत्युपकरणाभ्यां द्रव्येन्द्रियं लब्ध्युपयोगाभ्यां भावेन्द्रियं द्वेधा ॥२.१.१६॥
स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्राणि पञ्च द्रव्येन्द्रियाणि ॥२.१.१७॥
न वाक्-पाणि-पाद-पायू-पस्थानि ॥२.१.१८॥
न च भौतिकानि ॥२.१.१९॥
स्पर्शनं पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतीनां, स्पर्शन-रसने कृम्यादीनां, स्पर्शन-रसन-घ्राणानि पिपीलिकादीनां, स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षूंषि भ्रमरादीनां, पञ्चाऽपि नारक-तिर्यङ्-नरा-ऽमराणाम् ॥२.१.२०॥
स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दप्रतिनियतार्थानि तानि ॥२.१.२१॥
अनिन्द्रियं मनोऽनियतार्थम् ॥२.१.२२॥
अप्राप्यकारित्वं चक्षुर्मनसोः समानम् ॥२.१.२३॥
अवग्रहेहा-ऽवाय-धारणाभिश्चतुर्भेदमेकशः ॥२.१.२४॥
व्यञ्जना-ऽर्थाभ्यामवग्रहो द्विधा ॥२.१.२५॥
न चक्षुर्मनसोर्व्यञ्जनं, न च मानम् ॥२.१.२६॥
दर्शनद्वाराऽर्थेन्द्रियसन्निपातजोऽवान्तरसामान्यविशिष्टावभास्यवग्रहः ॥२.१.२७॥
ईहान्तं दर्शनमित्यपि ॥२.१.२८॥
तद्गृहीतार्थैकविशेषतर्कणमीहा ॥२.१.२९॥
तर्कितार्थे विशेषनिष्टङ्कनमवायः ॥२.१.३०॥
दृढतमो धारणा ॥२.१.३१॥
क्षय-क्षयोपशमविशेषादात्ममात्रप्रभवं पारमार्थिकम् ॥२.१.३२॥
तद् द्विविधं विकल-सकलभेदात् ॥२.१.३३॥
आद्यमवधि-मनःपर्यवाभ्यां द्विधा ॥२.१.३४॥
तत्राऽऽद्यो रूपिद्रव्यविषयो भव-गुणप्रत्ययाभ्यां द्विधा ॥२.१.३५॥
सुर-नारकाणामाद्योऽन्तिमो नर-तिरश्चां षड्भेदः ॥२.१.३६॥
द्वितीयो मनोद्रव्यपर्यायालम्बन ऋजु-विपुलमतिभ्यां द्विधा ॥२.१.३७॥
स्वावरणक्षयोपशमविशेषप्रभवत्वं तूक्तानां समानम् ॥२.१.३८॥
सांव्यवहारिकस्याऽवधेश्च विपर्ययो, न शेषयोः ॥२.१.३९॥
सकलमशेषघातिक्षयसमुत्थं केवलम् ॥२.१.४०॥

तच्चाऽशेषविशेषप्रकाशकमप्रतिबन्धात् ॥२.१.४१॥
अशेषसामान्यविषयकमिदमेव केवलदर्शनमित्येके ॥२.१.४२॥
एतत्समकालं सामान्यावगाहि दर्शनमन्यदित्यन्ये ॥२.१.४३॥
भिन्नकालं तदित्यपरे ॥२.१.४४॥
लङ्घनतापादेरिव नाऽस्याऽत्यन्तं प्रकर्षः ॥२.१.४५॥
नोभयोर्वैषम्यात् ॥२.१.४६॥
नेष्टमात्रगं हेतोरविशेषात् ॥२.१.४७॥
सिद्धिस्तु प्रमेयत्वादेः ॥२.१.४८॥
न च नित्यमेवेदं, जगत्कर्तुरसिद्धेः ॥२.१.४९॥
निर्दोषोऽर्हन्नेव तद्वान्, न बुद्धादिः ॥२.१.५०॥
तस्य च कवलाहारो न विरुद्ध [इति] ॥२.१.५१॥

॥ इति द्वितीयाध्याये प्रथमः पादः ॥

अस्पष्टं द्वितीयम् ॥२.२.१॥
स्मृत्यभिज्ञानोहानुमानागमैस्तत् पञ्चधा ॥२.२.२॥
संस्कारमात्रजा स्मृतिः ॥२.२.३॥
विषय-प्रमात्वयोः पारतन्त्र्येऽपि प्रामाण्यमनुमानवत् ॥२.२.४॥
सङ्कलनमभिज्ञानम् ॥२.२.५॥
तत्तोल्लेखोऽनयोस्समान इदमो(न्तो)ल्लेखोऽनुभवस्मृतिजत्वं च विशेषः ॥२.२.६॥
नोपमानाद्यस्मादन्यत् ॥२.२.७॥
नाऽध्यक्षं, साक्षादक्षाननुविधानात् ॥२.२.८॥
नोभयमेव, एकस्याऽपूर्वस्य प्रथनात् ॥२.२.९॥
व्याप्ति-वाच्यवाचकभावान्यतरावगाही तर्क ऊहः ॥२.२.१०॥
अन्वय-व्यतिरेकग्रहणाभ्याम् ॥२.२.११॥
न प्रसङ्गात्मा ॥२.२.१२॥
व्याप्तिरत्राऽन्तर्व्याप्तिर्न बहिर्व्याप्तिः ॥२.२.१३॥
कार्यकारणा(ण)भावादिप्रतिबन्धतोऽन्यथानुपपत्तिराद्या ॥२.२.१४॥
सहचारमात्रतो नियमो द्वितीया ॥२.२.१५॥

लिङ्गज्ञानकरणकं पक्षे साध्यज्ञानमनुमानम् ॥२.२.१६॥
व्यापारो व्याप्तिस्मृतिर्न परामर्शादिः ॥२.२.१७॥
स्वार्थमेतत् ॥२.२.१८॥
लिङ्गमन्यथानुपपत्त्येकरूपं, न त्रिरूपादि ॥२.२.१९॥
तदुपलब्ध्यनुपलब्धिभ्यां द्विधा ॥२.२.२०॥
तद् द्वयं विरुद्धा-ऽविरुद्धाभ्यां द्विविधम् ॥२.२.२१॥
अविरुद्धोपलब्धि-विरुद्धानुपलब्धिभ्यां विधिसिद्धिर्विरुद्धोपलब्ध्यविरुद्धानुपलब्धिभ्यां च निषेधसिद्धिः ॥२.२.२२॥
तत्राऽविरुद्धोपलब्धिर्व्याप्य-कार्य-कारण-पूर्वचरो-त्तरचर-सहचरैः षोढा ॥२.२.२३॥
स्वभावविरुद्ध-विरुद्धव्याप्य-कार्य-कारण-पूर्वचरो-त्तरचर-सहचरैर्विरुद्धोपलब्धिः सप्तधा ॥२.२.२४॥
विरुद्धकार्य-कारण-स्वभाव-व्यापक-सहचरानुपलम्भैर्विरुद्धानुपलब्धिः पञ्चधा ॥२.२.२५॥
स्वभाव-व्यापक-कार्य-कारण-पूर्वचरो-त्तरचर-सहचरानुपलब्धिभिरविरुद्धानुपलब्धिः सप्तधा ॥२.२.२६॥
न तु स्वभाव-कार्या-ऽनुपलब्धिभिस्त्रिप्रकारमेव, कारणाद्यसङ्ग्रहात् ॥२.२.२७॥
प्रमाणविकल्पोभयतः प्रसिद्धो धर्मी पक्षः ॥२.२.२८॥
यद् विना लिङ्गं नोपपद्यते तत् साध्यम् ॥२.२.२९॥
अप्रतीता-ऽनिराकृता-ऽभीप्सितत्वानि तस्य सिद्धा[व]नुगुणानि ॥२.२.३०॥
पक्षहेतुवचनाद्यात्मकं परार्थमुपचारात् ॥२.२.३१॥
व्युत्पन्नमतीन् प्रति द्वावेव प्रतिज्ञाहेतू, मन्दमतीन् प्रति तु प्रतिज्ञा-हेतू-दाहरणोपनय-निगमनानि पञ्चाऽप्यवयवाः प्रयोक्तव्याः ॥२.२.३२॥
प्रतिज्ञादित उदाहरणादितो वा त्रय एवोदाहरणोपनयौ द्वावेव, पञ्चाऽप्यवयवाः प्रयोक्तव्या इत्येकान्ते मानाभावः ॥२.२.३३॥
साध्यवत्तया धर्मिणो वचनं प्रतिज्ञा ॥२.२.३४॥
पञ्चम्यन्तस्य तृतीयान्तस्य वा लिङ्गस्य हेतुः ॥२.२.३५॥
प्रतिबन्धप्रदर्शनपुरस्सरं साधर्म्यतो वैधर्म्यतो वा दृष्टान्तस्योदाहरणम् ॥२.२.३६॥

पक्षे लिङ्गस्योपसंहार उपनयः ॥२.२.३७॥
साध्यस्याऽबाधिततया पुनर्निगमनमिति ॥२.२.३८॥

॥ इति द्वितीयाध्याये द्वितीयः पादः ॥

आप्तवचनोत्थमागमः ॥२.३.१॥
आप्तो यथादृष्टवक्ता ॥२.३.२॥
लौकिक-लोकोत्ताभ्यामाप्तो द्विधा ॥२.३.३॥
आद्यः पित्रादिर्द्वितीयस्तीर्थकरादिः ॥२.३.४॥
वर्णपदवाक्यं वचनं पौद्गलिकमेव ॥२.३.५॥
न गुण, आगत्याद्यनुपपत्तेः ॥२.३.६॥
नित्यं द्रव्यं परार्थत्वान्नोत्पत्तिविपत्तितः ॥२.३.७॥
न, नादोपाधेर्व्यतिरिक्तस्याऽसिद्धेः ॥२.३.८॥
अभिव्यक्तिर्न विचारसहा ॥२.३.९॥
अभिज्ञानं नाऽनाभासम् ॥२.३.१०॥
वर्णाः प्रतीताः, तेषामानुपूर्वीविशेषः पदं, पदानां वाक्यम् ॥२.३.११॥
अर्थे स्वाभाविकः प्रत्यायनशक्तिस्तत्सम्बन्धः ॥२.३.१२॥
शक्तिस्त्वन्यत्राऽप्यावश्यकी ॥२.३.१३॥
तदभिव्यञ्जकः सङ्केतो न सम्बन्धो, वाच्यवाचकभावनियमानुपपत्तेः ॥२.३.१४॥
यथार्थत्वा-ऽयथार्थत्वे त्वस्य वक्तृदोषगुणापेक्षे ॥२.३.१५॥
विधि-निषेधाभ्यां सर्वत्र सप्तभङ्गीमनुसरति ॥२.३.१६॥
क्रमयौगपद्यतो विधिनिषेधकल्पनतः स्यात्काराङ्कितानामेवकारजुषां सर्वमस्तीति नाऽस्तीत्यस्ति नाऽस्ति चेत्यवक्तव्यमित्यस्त्यवक्तव्यमिति नाऽस्त्यवक्तव्य-मित्यस्ति नाऽस्ति चाऽवक्तव्यमिति भङ्गानां सप्तानामेव भावात् ॥२.३.१७॥
प्रतिपर्यायं धर्म-तत्संशय-जिज्ञासा-पर्यनुयोगानां सप्तानामेव भावात् तथाभावः ॥२.३.१८॥
प्रतिभङ्गं सकल-विकलादेशस्वभावा सप्तभङ्गी ॥२.३.१९॥
कालादिभिरष्टभिरभेदवृत्तितोऽनन्तधर्मात्मकवस्तुनो यौगपद्येनाऽभिधायकं वचः सकलादेशो, विपरीतमतो विकलादेशः ॥२.३.२०॥

आद्यं प्रमाणवाक्यं, द्वितीयं नयवाक्यमिति ॥२.३.२१॥

॥ इति द्वितीयाध्याये तृतीयः पादः ॥

प्रमाणप्रसाध्यं फलमानन्तर्य-पारम्पर्याभ्यां द्विधा ॥२.४.१॥
अज्ञाननिवृत्तिराद्यं सर्वेषाम् ॥२.४.२॥
केवलस्यौदासीन्यमन्येषामुपादानहानोपेक्षाबुद्धयो द्वितीयम् ॥२.४.३॥
प्रमाणतः प्रमातुश्च भिन्नमभिन्नं च तत्, तत्त्वान्यथानुपपत्तेः ॥२.४.४॥
प्रमाणस्य स्वरूपादिविपरीतस्तदाभासः ॥२.४.५॥
स्वरूप-विषय-फल-सङ्ख्याभासतश्चतुर्द्धा ॥२.४.६॥
आद्योऽज्ञानाद्यात्मकः ॥२.४.७॥
प्रत्यक्षाभासादिस्त्वस्य प्रपञ्चः ॥२.४.८॥
केवल-मनःपर्यववर्जं प्रत्यक्षवदवभासमानं ज्ञानं प्रत्यक्षाभासम् ॥२.४.९॥
अननुभूते स्मरणाभासम् ॥२.४.१०॥
तुल्यादौ सङ्कलनाभासम् ॥२.४.११॥
अन्यथोपपत्तौ तर्काभासम् ॥२.४.१२॥
पक्षाभासादिजमनुमानाभासम् ॥२.४.१३॥
पक्षाभास-लिङ्गाभास-दृष्टान्ताभासो-पनय-निगमनाभासाः पञ्च ॥२.४.१४॥
आद्यः प्रतीत-निराकृता-ऽनभीप्सितसाध्यविशेषणैस्त्रिधा ॥२.४.१५॥
निराकरणञ्च साध्यस्य प्रत्यक्षानुमानादिभिः ॥२.४.१६॥
द्वितीयोऽसिद्ध-विरुद्धा-ऽनैकान्तिकभेदतस्त्रिप्रकारः ॥२.४.१७॥
असिद्धान्यथानुपपत्तिकोऽसिद्धः ॥२.४.१८॥
सोऽन्यरो(?न्यो)भयासिद्धाभ्यां द्विप्रकारः ॥२.४.१९॥
साध्यविपर्ययान्यथानुपपत्तिको विरुद्धः ॥२.४.२०॥
अन्यथानुपपत्तिविकलोऽनैकान्तिकः ॥२.४.२१॥
निर्णीत-सन्दिग्धविपक्षवृत्तिकभेदाद् द्विधा ॥२.४.२२॥
साधर्म्य-वैधर्म्याभ्यां द्विप्रकारो दृष्टान्ताभासः ॥२.४.२३॥
साध्यविकल-लिङ्गविकल-तदुभयविकल-सन्दिग्धसाध्य-सन्दिग्धलिङ्ग-
सन्दिग्धोभया-ऽनन्वया-ऽप्रदर्शितान्वय-विपरीतान्वयैराद्योऽसिद्धसाध्याभावा-
ऽसिद्धलिङ्गाभावाऽसिद्धाभाववद्द्वय-सन्दिग्धसाध्याभाव-सन्दिग्धलिङ्गाभाव-

सन्दिग्धाभाववद्द्वया-ऽव्यतिरेका-ऽप्रदर्शितव्यतिरेक-विपरीतव्यतिरेकै-र्द्वितीयश्च नवधा ॥२.४.२४॥
उक्तविपरीते उपनय-निगमनाभासे ॥२.४.२५॥
अनाप्तोक्तजं ज्ञानमागमाभासम् ॥२.४.२६॥
विषयाभासादयस्तूक्तविपरीता इति ॥२.४.२७॥

॥ इति द्वितीयाध्याये तुर्यः पादः ॥

॥ इति [प्रमाणविशेषनिरूपणाख्यो] द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

अंशान्तराप्रतिक्षेपी वस्त्वंशमात्रग्राही अभिप्रायविशेषो नयः ॥३.१.१॥
न प्रमाणमेव, स्वरूपादिभेदात् ॥३.१.२॥
स नैगम-सङ्ग्रह-व्यवहार-र्जुसूत्र-शब्द-समभिरूढैवम्भूतभेदतः सप्तधा ॥३.१.३॥
समभिरूढैवम्भूतयोः शब्द एवाऽन्तर्भावात् पञ्च नया इत्येके ॥३.१.४॥
सङ्ग्रहस्याऽपि नैगमेऽनुप्रवेश इति चत्वार इत्यपरे ॥३.१.५॥
आद्यास्त्रयो द्रव्यार्थिकाश्चत्वारोऽन्तिमाः पर्यायार्थिकाः ॥३.१.६॥
ऋजुसूत्रस्याऽपि द्रव्यार्थिकत्वमित्येके ॥३.१.७॥
सामान्यविशेषोभयादिग्राही परामर्शो नैगमः ॥३.१.८॥
स प्रधानोपसर्जनभावेन धर्मद्वय-धर्मिद्वय-धर्मधर्म्युभय-गोचरत्वतस्त्रिधा ॥३.१.९॥
सामान्यमात्रगोचरः सङ्ग्रहः ॥३.१.१०॥
परापरभेदाद् द्विधा ॥३.१.११॥
आद्यः सत्त्वाख्यपरसामान्यग्राही, द्वितीयस्तु द्रव्यत्वाद्यवान्तरसामान्यग्राही ॥३.१.१२॥
विधिपूर्वक-सङ्ग्रहगृहीतार्थविभाजको व्यवहारः ॥३.१.१३॥
प्राधान्येन वर्त्तमानक्षणस्थायि-पर्यायमात्रग्राही ऋजुसूत्रः ॥३.१.१४॥
कालादिभेदाच्छब्दस्याऽर्थभेदाभ्युपगन्ता शब्दः ॥३.१.१५॥
व्युत्पत्तिनिमित्तभेदतः पर्यायशब्दार्थभेदाभ्युपगन्ता समभिरूढः ॥३.१.१६॥
व्युत्पत्तिनिमित्तक्रियाविष्ट-ऽर्थवाच्यत्वाभ्युपगन्ता एवम्भूतः ॥३.१.१७॥
पूर्वपूर्वेषामधिकविषयत्वमुत्तरोत्तरेषां न्यूनविषयत्वं चैषु समानम् ॥३.१.१८॥
पूर्वे चत्वारोऽर्थनयाः शेषाः शब्दनया इति ॥३.१.१९॥

॥ इति तृतीयाध्याये प्रथमः पादः ॥

अंशान्तरप्रतिक्षेपी वस्त्वंशग्राही नयाभासः ॥३.२.१॥
सर्वथा धर्मद्वयादीनां पार्थक्याभ्युपगन्ता नैगमाभासः कणभक्षादिदर्शनम् ॥३.२.२॥
विशेषप्रतिक्षेपी सामान्यमात्रग्राही सङ्ग्रहाभासः ॥३.२.३॥
सत्प्रधानाद्यद्वैतदर्शनं परो द्रव्यत्वाद्येकान्तवादस्त्वपरः ॥३.२.४॥
अपारमार्थिकद्रव्यपर्यायविभागाभ्युपगन्ता व्यवहाराभासो लोकायतदर्शनम् ॥३.२.५॥
सर्वथा द्रव्यप्रतिक्षेपी क्षणिकपर्यायाभ्युपगन्ता ऋजुसूत्राभासो बौद्धदर्शनम् ॥३.२.६॥
कालादिभेदतो ध्वनेस्सर्वथाऽर्थभेदाभ्युपगन्ता शब्दाभासः ॥३.२.७॥
व्युत्पत्तिभेदेन पर्यायशब्दानां सर्वथाऽर्थभेदाभ्युपगन्ता समभिरूढाभासः ॥३.२.८॥
शब्दानां स्वप्रवृत्तिनिमित्तभूतक्रियययाऽनालिङ्गितस्य वाच्यत्वप्रतिक्षेपी तदालिङ्गित-
स्य(स्यैव) वाच्यत्वाभ्युपगन्ता एवम्भूताभासः ॥३.२.९॥
आनन्तर्य-पारम्पर्याभ्यां नयस्य फलमपि द्विधा ॥३.२.१०॥
आद्यं वस्त्वंशाज्ञाननिवृत्तिः, द्वितीयं तदुपादानहानोपेक्षाबुद्धयः ॥३.२.११॥
तन्नयतो भिन्नमभिन्नं च, तत्त्वान्यथानुपपत्तेः ॥३.२.१२॥
आद्यास्त्रयः सविपर्ययमतिश्रुतावधि-मनःपर्यवकेवलज्ञानाश्रयिणः ॥३.२.१३॥
ऋजुसूत्रस्तु मतिवर्जोक्ताश्रयी ॥३.२.१४॥
शब्दादयस्तु त्रयः श्रुतज्ञानकेवलज्ञानाश्रयिण इति ॥३.२.१५॥

॥ इति तृतीयाध्याये द्वितीयः पादः ॥

शब्दार्थरचनाविशेषो निक्षेपः ॥३.३.१॥
अप्रस्तुतार्थनिषेधः प्रस्तुतार्थोपपादनं चाऽस्य फलम् ॥३.३.२॥
एतेनाऽनुयोगाधिगमोपायत्वं व्याख्यातम् ॥३.३.३॥
स नाम-स्थापना-द्रव्य-भावभेदतश्चतुर्धा ॥३.३.४॥
प्रकृतार्थनिरपेक्षो नामार्थान्यतरपरिणामो नामनिक्षेपः ॥३.३.५॥
भावाकारस्थापना स्थापनानिक्षेपः ॥३.३.६॥
स सद्भूता-ऽसद्भूताकारस्थापनाभेदाद् द्विधा ॥३.३.७॥
आद्यो जिनप्रतिमादिः, द्वितीयोऽक्षादौ स्थापनाचार्यादिः ॥३.३.८॥
भूतभाविभावकारणं द्रव्यनिक्षेपः ॥३.३.९॥
विवक्षितक्रियापरिणतिमान् भावनिक्षेपः ॥३.३.१०॥
नयसमुदायवादे चतुर्णामशेषव्यापित्वम् ॥३.३.११॥

नामादिनिक्षेपत्रयं द्रव्यार्थिकनये ॥३.३.१२॥
भावनिक्षेपः पर्यवनये ॥३.३.१३॥
ऋजुसूत्रे नामभावावेवेत्येके ॥३.३.१४॥
सङ्ग्रह-व्यवहारयोः स्थापनावर्जा इत्यन्ये [इति] ॥३.३.१५॥

॥ इति तृतीयाध्याये तृतीयः पादः ॥

उक्तानां कथायां परार्थानुमानतयोपयोगः ॥३.४.१॥
कथा वाद एव, न वाद-जल्प-वितण्डाभेदात् त्रिधा ॥३.४.२॥
साधनदूषणवचनं वादः ॥३.४.३॥
प्रतिपक्षधर्मव्यवच्छेदेन स्वेष्टधर्मस्थापनमस्य फलम् ॥३.४.४॥
विजिगीषोत्थेऽस्मिन् वादि-प्रतिवादि-सभ्य-सभापतयश्चत्वारोऽङ्गानि, अन्यत्र वादि-प्रतिवादिनौ क्वचित् सभ्योऽपि ॥३.४.५॥
वादि-प्रतिवादिनौ प्रारम्भक-प्रत्यारम्भकौ ॥३.४.६॥
तौ जिगीषु-तत्त्वनिर्णिनीषुभेदात् प्रत्येकं द्विधा ॥३.४.७॥
तत्त्वनिर्णिनीषुः स्वात्मनि परत्र चेति द्विधा ॥३.४.८॥
वादिप्रतिवादिसिद्धान्ताभिज्ञत्व-माध्यस्थ्यादिगुणवानुभयाभिमतः सभ्यः ॥३.४.९॥
प्रज्ञाज्ञैश्वर्यादिगुणवान् सभापतिः ॥३.४.१०॥
प्रमाणतः स्वपक्षस्थापन-परपक्षखण्डने वादि-प्रतिवादिनोः, तयोर्वादस्थानक-कथाविशेषाङ्गीकारकरणा-ऽग्रवादोत्तरवादनिर्देशादिकं सभ्यस्य, वाद्याद्य-भिहितावधार-कलहव्यपोहादिकं सभापतेश्च कर्म ॥३.४.११॥
सजिगीषुके वादे यावत्सभ्यापेक्षमन्यत्र च यावत्तत्त्वनिर्णयं यावत्स्फूर्त्ति च वक्तव्यमिति ॥३.४.१२॥

॥ इति तृतीयाध्याये तुर्यः पादः ॥

॥ इति [नय-निक्षेप-वादनिरूपणाख्यः] तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

अस्तित्वनास्तित्वाद्यनन्तधर्मात्मकं वस्तु तत्त्वम् ॥४.१.१॥
तद् द्रव्य-पर्यायाभ्यां द्विधा ॥४.१.२॥
नाऽभावस्तत्त्वान्तरं, प्रागभावादिचतुर्विधस्याऽपि तस्य भाव एवाऽन्तर्भावात् ॥४.१.३॥

यन्निवृत्तावेव यस्योत्पत्तिः स ह्यस्य प्रागभावः ॥४.१.४॥
यदुत्पत्तौ यस्य प्रच्युतिः स तस्य प्रध्वंसः ॥४.१.५॥
स्वभावान्तरात् स्वभावव्यवच्छेदोऽन्योन्याभावः ॥४.१.६॥
कालत्रयेऽपि तादात्म्यपरिणामनिवृत्तिरत्यन्ताभावः ॥४.१.७॥
समवायो नाऽविष्वग्भावाद् व्यतिरिक्तोऽसिद्धेः ॥४.१.८॥
विशेषस्त्वन्त्यो निष्प्रमाणकः ॥४.१.९॥
अन्यः पर्याये ॥४.१.१०॥
तिर्यगूर्ध्वतासामान्यभेदतो द्विविधमपि सामान्यमनतिरिक्तम् ॥४.२.११॥
प्रतिव्यक्ति तुल्या परिणतिस्तिर्यक्सामान्यं पर्याय एव, पूर्वापरपर्यायानुगामी वस्त्वंश ऊर्ध्वतासामान्यं द्रव्यमेव ॥४.१.१२॥
गुणवद् द्रव्यम् ॥४.१.१३॥
न समवायिकारणमसिद्धेः ॥४.१.१४॥
पर्यायवत्त्वन्तु द्रव्य-गुणयोः समानम् ॥४.१.१५॥
प्रत्यभिज्ञानादितस्तु न तत्सिद्धिरिति ॥४.१.१६॥

॥ इति चतुर्थाध्याये प्रथमः पादः ॥

धर्मा-ऽधर्मा-ऽऽकाश-काल-जीव-पुद्गला द्रव्याणि ॥४.२.१॥
धर्मा-ऽधर्मा-ऽऽकाश-जीव-पुद्गलानामस्तिकायत्वं समानम् ॥४.२.२॥
कालस्याऽप्यस्तिकायत्वमित्येके ॥४.२.३॥
गत्युपष्टम्भको धर्मः ॥४.२.४॥
न देशविशेषस्य तत्त्वमननुगमात् ॥४.२.५॥
अस्याऽसङ्ख्यप्रदेशत्वं जीवा-ऽधर्माभ्यां समानम् ॥४.२.६॥
पुद्गलानां सङ्ख्येयानन्तप्रदेशत्वे च ॥४.२.७॥
आकाशस्याऽनन्तप्रदेशत्वमेव ॥४.२.८॥
स्थित्युपष्टम्भकोऽधर्मः ॥४.२.९॥
अस्य कृत्स्नलोकाकाशावगाहो धर्मेण समानः ॥४.२.१०॥
अवगाहोपष्टम्भकमाकाशम् ॥४.२.११॥
तल्लोका-ऽलोकाभ्यां द्विधा ॥४.२.१२॥
धर्मा-ऽधर्माद्यधिकरणं लोकः ॥४.२.१३॥

स चतुर्दशरज्जुमानोऽसङ्ख्यातप्रदेशः ॥४.२.१४॥
तद्विपरीतोऽलोकोऽनन्तः ॥४.२.१५॥
एकद्रव्यत्वनिष्क्रियत्वं धर्मा-ऽधर्माभ्यां समानम् ॥४.२.१६॥
वर्त्तनादिलिङ्गकः कालोऽनन्तसमयः ॥४.२.१७॥
तस्य द्रव्यत्वं नेत्यपरे इति ॥४.२.१८॥

॥ इति तुर्याध्याये द्वितीय पादः ॥

उपयोगवान् जीवः ॥४.३.१॥
उपयोगः साकारोऽनाकारश्च ॥४.३.२॥
आद्यो ज्ञानं द्वितीयो दर्शनम् ॥४.३.३॥
संसारी मुक्तश्च जीवः ॥४.३.४॥
आद्यः सकर्मा ॥४.३.५॥
स त्रस-स्थावराभ्यां द्विधा ॥४.३.६॥
आद्यः तेजोवायुद्वीन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियान्तः ॥४.३.७॥
पृथिव्यब्वनस्पतिभेदादन्त्यस्त्रिधा ॥४.३.८॥
नाऽसौ निष्क्रियो, गतिमत्त्वात् ॥४.३.९॥
गतिरविग्रहा विग्रहा च ॥४.३.१०॥
न नित्य एव, जन्मान्यथानुपपत्तेः ॥४.३.११॥
गर्भोपपात-सम्मूर्च्छनभेदात् त्रिधा जन्म ॥४.३.१२॥
न समनस्क एव, अमनस्कस्याऽपि सद्भावात् ॥४.३.१३॥
नाऽसङ्गः, शरीरित्वानुपपत्तेः ॥४.३.१४॥
शरीरञ्चौदारिक-वैक्रिया-ऽऽहारक-तैजस-कार्मणभेदात् पञ्चविधम् ॥४.३.१५॥
असङ्गत्वे आस्रवोऽपि नोपपद्यते ॥४.३.१६॥
स हि काय-वाङ्-मनःकर्मयोगः ॥४.३.१७॥
तदभावे बन्धोऽप्यनुपपन्नः ॥४.३.१८॥
कर्मयोग्यपुद्गलग्रहणं हि सः ॥४.३.१९॥
मिथ्यादर्शना-ऽविरति-प्रमाद-योगास्तस्य कारणानि ॥४.३.२०॥
तदभावे प्रकृति-स्थित्यनुभाव-प्रदेशबन्धा अपि विशेषा अनुपपन्नाः ॥४.३.२१॥
प्रकृत्यभावे ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीय-मोहनीयाऽऽयुष्क-नाम-गोत्रा-ऽन्तराया

अपि तद्विशेषास्तद्विशेषाश्च तथा ॥४.३.२२॥
एवं स्थित्याद्यभावे ॥४.३.२३॥
आस्रवनिरोधात्मा संवरोऽपि ॥४.३.२४॥
तत्साधनानि गुप्ति-समिति-धर्मा-ऽनुप्रेक्षा-परीषहजय-चारित्राण्यपि ॥४.३.२५॥
निर्जराऽपि ॥४.३.२६॥
तत्साधनं तपोऽपि ॥४.३.२७॥
अनशना-ऽवमौदर्य-वृत्तिपरिसङ्ख्यान-रसपरित्याग-विविक्तशय्यासन-कायक्लेश-भेदात् षड्विधं बाह्यम् ॥४.३.२८॥
प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्त्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानभेदात् षड्विधमभ्यन्तरम् ॥४.३.२९॥
एकान्तनित्यत्वे त्वस्य व्रतमनुपपन्नम् ॥४.३.३०॥
हिंसा-ऽनृत-स्तेया-ऽब्रह्म-परिग्रहेभ्यो विरमणं हि तत् ॥४.३.३१॥
तत्त्वे देव-मनुष्य-नरक-तिर्यग्गतयोऽपि न स्युः ॥४.३.३२॥
परिणाम्यसौ ॥४.३.३३॥
निरावरणो मुक्तः ॥४.३.३४॥
अशेषकर्मक्षयः परमानन्दो वा मुक्तिः ॥४.३.३५॥
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि तत्साधनमिति ॥४.३.३६॥

॥ इति तुर्याध्याये तृतीयः पादः ॥

मूर्त्तिमान् पुद्गलः ॥४.४.१॥
रूपं मूर्त्तिः, स्पर्शरसगन्धास्तन्नियताः ॥४.४.२॥
अतः शरीर-वाङ्-मनः-प्राणापान-सुख-दुःख-जीवितमरणोपग्रहाः ॥४.४.३॥
शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थानभेद-तमश्छायाऽऽतपोद्योता इदमीयाः ॥४.४.४॥
एतेनाऽऽकाशगुणत्वादिकं प्रत्युक्तम् ॥४.४.५॥
अजघन्यगुणानां स्निग्धरूक्षाणां गुणवैषम्ये द्व्यधिकादिगुणानां सदृशानाञ्च बन्धो, न गुणसाम्ये ॥४.४.६॥
देश-प्रदेश-स्कन्धा-ऽणुभेदतः स चतुर्द्धा ॥४.४.७॥
स्कन्धसम्बद्धः स्कन्धो देशो द्विप्रदेशादिः ॥४.४.८॥
निरंशः स्कन्धसम्बद्धोंऽशः प्रदेशः ॥४.४.९॥
देशतानापन्नः सङ्घातः स्कन्धः ॥४.४.१०॥

प्रदेशतानापन्नो निरंशोंऽशोऽणुः ॥४.४.११॥
सङ्घातभेदेभ्यः स्कन्धस्य, भेदादणोरुत्पत्तिः ॥४.४.१२॥
पर्यायः सहभावि-क्रमभाविभेदाद् द्विधा ॥४.४.१३॥
आद्यो गुणः ॥४.४.१४॥
स सामान्य-विशेषाभ्यां द्विधा ॥४.४.१५॥
अस्तित्व-प्रमेयत्वादिः सामान्यगुणः ॥४.४.१६॥
वर्ण-ज्ञानादिर्विशेषगुणः ॥४.४.१७॥
अन्त्यः पर्यायोऽनन्त एव ॥४.४.१८॥
उत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणं सत्त्वं सर्वेषाम् ॥४.४.१९॥
तस्मादनेकान्तात्मकत्वमेव कान्तमिति ॥४.४.२०॥

॥ इति [तत्त्वनिरूपणाख्यः] चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ इति श्रीअनेकान्ततत्त्वमीमांसा ॥

* * *

C/o. श्रीनेमिसूरि स्वा. मन्दिर
१२, भगतबाग सो.
पालडी, अम.-७

गङ्गातैलीदृष्टान्तः

सं. मुनि रत्नकीर्तिविजयः

कोई फुटकळ ह.लि. पत्रमांथी ऊतारेलुं आ मनोरञ्जक दृष्टान्त छे. भोजप्रबन्धथी मांडीने लोकभाषा सुधी आ कथानक विविध रूपे प्रचलित छे. आने लोककथा ज कही शकाय. परन्तु तेनुं संस्कृत स्वरूप पण सहुना ध्यानमां आवे ते हेतुथी ते अहीं प्रगट कर्युं छे.

सन्दर्भ जोतां कल्पसूत्रनी वाचनामां सिद्धार्थ राजाना कोई प्रसंगमां, कोई साथेना संवादमां आ कथा उद्धृत करी होवानुं अनुमान थाय छे.

॥ ६० ॥ अत्र गङ्गातेलीदृष्टान्तमाह ॥ प्रोच्यते–

सत्यमेतत् देवानुप्रियाः ! यद्यूयं वदथ - यतो यूयं सुसिद्धिकाः । सुसिद्धी(द्धि)कानां सर्वत्र स्यात्, गङ्गातैलीवत् ।

तथा-कोऽपि विप्रो युवा विद्यार्थी प्रतिष्ठानपुरे दक्षिणदेशे गत्वा भट्टपार्श्वे सर्वविद्यास्त्रिंशद्वर्षैः पठित्वा जातगर्वो मस्तकेऽङ्कुशं धरन् विद्यया 'उदरं मा स्फुटतु' इति उदरे बद्धपट्टः, 'यदि वादी नंष्ट्वा आकाशे याति तदा निःश्रेण्यामारुह्य अधः पातयामि' इति निःश्रेणीं सेवकस्कन्धे वहन् चिन्तयति 'यदि वादी पाताले प्रविशति तदा कुद्दालैः खानयित्वा निष्कासयामि' इति कुद्दालानपि सार्द्धं धरन्, 'यो ममाग्रे हारयति स तृणान्(नि) मुखे गृह्णातु' इति तृणपूलकं सेवककक्षायां धारयन्, वादेन दक्षिण-गौर्जर-मरुधरा[दि]देशवादिनो निर्जी(र्जि)त्य सरस्वतीकण्ठाभरणादीन् बिरुदान् वादयन् भोजराजसभां पञ्चशतपण्डितैर्विराजमानं(नां) श्रुत्वा उज्जयिन्यां समेतः । प्रवेशोत्सवादिना सन्मानदानपूर्वं उत्तारितः समीचीनस्थाने गतः ।

सभायामागतेन [तेन] भोजराजसमक्षं वादकरणेन कालिदास-क्रीडाचन्द्र-भवभूतिप्रमुखाः पञ्चस(श)तपण्डिताः अपि जिताः । भोजराजेन विमृष्टम्-'अहो ! परदेशिना भट्टाचार्येण मदीया जिताः, मम पण्डितसभामहात्मं(माहात्म्यं) गतम् ।' इति चिन्तातुरः क्रीडार्थं वने गच्छन् एकाक्षं वहद् घाणीमध्यात् हस्तेन तैलं निष्कास्य कुम्भमध्ये तैलं क्षिपन्तं गङ्गानामानं तैलिकं पश्यति स्म । राज्ञा

विचारितम् - अहो ! काणस्य अस्य बुद्धिविज्ञानम् । युक्तं चैतत् । यतः-

षष्टिर्वामनके दोषा अशीतिर्मधुपिङ्गले ।
शतं च टुण्टमुण्डे च काणे संख्या न विद्यते ॥१॥

ततस्तमाकार्य्य राज्ञा पृष्टम् - अहो ! त्वं भट्टाचार्येण सह वादं करिष्यति (सि)? । तेन प्रोक्तम् - ओम् ! किं दास्यति (सि)? । का प्रतिष्ठाऽस्ति अटपटा-न्यायेन भवति कदाचित् । तत आदित्यवारे राज्ञा भट्टाचार्यः प्रोक्तं(क्तः) - 'भो! श्री भट्टाचार्य! मम भट्टास्त(त्व)या जितास्तत्स्य(स)त्यं परं अस्माकमेतेषां भट्टानां पाठको भट्टाचार्योऽस्ति । तेन सममद्य वादः क्रियताम् ।' दक्षिणभट्टाचार्येण प्रोक्तम् - 'भव्यम्' ।

ततो भट्टाचार्यः सिंहासने उपनिवेशितः । अन्येऽपि कालिदास-क्रीडाचन्द्रप्रमुखाः पञ्चशतभट्टाः समेताः । तेषामपि आसनानि राज्ञा दत्तानि । ततो गङ्गातैलीभट्टाचार्यः परिधापितः पञ्चाङ्गवेषः स्वर्णाभरणादिना विभूषितः स्थूलवपुः मदोन्मत्तहस्तीव आनीतः । राज्ञा(जा)उत्थितः । सर्वा सभापि उत्थिता । बहुमानसम्मानादिना राज्ञा सिंहासने निवेशितः । ततो दक्षिणीयभट्टाचार्येण विमृष्टम्- अहं कृशवपुः, अयं स्थूलवपुः । कथङ्कारं वादेन जयिष्यामि । ततः किं वा कलहेन ? तत्त्वं पृच्छामि । ततो दक्षिणभट्टाचार्येण एकाङ्गुलीर्दर्शी(र्शि)ता। भोजराजभट्टेन क्रोधं कृत्वा अङ्गुलिद्वयं दर्शितम् । ततो जातचमत्कारेण दक्षिणभट्टाचार्येण प्रलम्बितपञ्चाङ्गुलिको हस्त ऊर्ध्वीकृतो दर्शितः, ततो भोजभट्टे[न] दृढा मुष्टिर्दर्शिता । ततो दक्षिणभट्टो मस्तकात् अङ्कुशं उत्तार्य उदरात् विद्यापट्टं छोटयित्वा निःश्रेणीं भग्ना(भङ्क्त्वा) कुद्दालान् दण्डात् वियोज्य तृणपूलकं प्रज्वालयित्वा गर्वं मुक्त्वा सभासमक्षं भोजभट्टस्य पादयोर्लग्नः । 'अहो ! अहं न केनपि जितः, परं त्वं महापण्डितस्त(स्त्व)या जितः ।'

भोजराजेन पृष्टम् - 'को वादः कृतः ? अस्माकं श्राव्यताम् ।' भट्टाचार्यः प्राह-'अहो भोज ! मया एकाङ्गुलिदर्शनेन ज्ञापितं 'एकः शिवो जगत्कर्ताऽस्ति' । भवदीयभट्टेन विशेषो ज्ञापितोऽङ्गुलिद्वयदर्शितेन यत्- 'एकेन शिवेन किम् ? द्वितीया शक्तिरप्यस्ति' । पुनर्मया पञ्चाङ्गुलिदर्शनेन ज्ञापितम् - 'इन्द्रियाणि पञ्च सन्ति' । त्वदीयभट्टाचार्येण मुष्टिदर्शनात् ज्ञापितं - 'पञ्चेन्द्रिया[णि] बद्धानि दमितानि भव्यानि' । ततो भवदीयो भट्टाचार्यो महापण्डितो वैराग्यवान् च ।

कियत् [माहा]त्म्यं वर्ण्यते । [ई]दृशः पण्डितः [न] कुत्रापि।'

ततो दक्षिणीयभट्टाचार्यो म(मा)नभ्रष्टस्त्वरितं स्वदेशाय चलितः ।

ततो भोजराजेन गङ्गातैली पृष्टः-को वादः कृतः ?

ततस्तेनोक्तम्- भो राजन् ! स(म)म तेन भट्टेन एकाङ्गुलिदर्शनेन ज्ञापितम् - 'त्वं काणोऽसि', मया अङ्गुलिद्वयदर्शनेन ज्ञापितं - 'अहं त्वां द्वयोश्चक्षुषोः काणं करिष्यामि । ततो दक्षिणीयभट्टेन प्रलम्बहस्तदर्शनेन ज्ञापितम्- 'अहं त्वां चपेटया मारयिष्यामि' । ततो मया रोषं कृत्वा मुष्टिदर्शनेन ज्ञापितं - 'अहं त्वां मुष्टया घंकरणेन मारयिष्यामि ।' तदा राजादिका सर्वापि सभा सहर्षं हसति स्म। अहो ! अस्य दिनाः समीचीनाः, सुसिद्धिकोऽयम् । राज्ञा बहुसन्मानादिना सन्तोषितः स्वस्थानं गतः ।

सिद्धार्थो राजा वदति स्म-यूयमपि सुसिद्धिकास्तेन भवदुक्तं मम सत्यं भवत्विति ।

अथ (इति) गङ्गातैलीदृष्टान्तः सम्पूर्णः ॥

—x—

श्री जयरत्नकृत
सच्चायिका बत्तीसी

म. विनयसागर

संग्रह के स्फुट पत्रों में अट्ठारहवीं शताब्दी लिखित एक पत्र प्राप्त है, जिसमें सच्चीयाय माता की स्तुति की गई है। ३३ पद्य होने से इसे बत्तीसी भी कहा जा सकता है। इसकी रचना संवत् १७६४ जेठ महीने (आषाढ़) में की गई है। उपकेशगच्छीय श्री देवगुप्तसूरि की आज्ञा से जयरत्नमुनि ने देवी की स्तुति की है। यह पूर्ण स्तुति राजस्थानी भाषा में है और कई देशी शब्द भी इसमें प्रयोग किए गए हैं।

जयरत्नमुनि कुछ पुरातनप्रिय दृष्टिगत होते हैं। पुरातत्त्व की रक्षा करने की उनकी दृष्टि है। इसीलिए इस कृति के प्रारम्भ में अपभ्रंश भाषा के रूप में अरजइ, चरचइ, परसइ, घरइ, जनमइ इत्यादि में रूप दिए हैं। किन्तु उसके पश्चात् प्रचलित रूपों को ही देने का प्रयत्न किया है। पद्य ७ से ३३ तक प्रचलित रूप ही दिए हैं।

कवि स्वयं ओइसगच्छ के है। अर्थात् अपभ्रंश भाषा की दृष्टि से उपकेशगच्छ के उवएसगच्छ = ओइसगच्छ = ओवेशगच्छ के रूपान्तर भी दिए हैं। कहा जाता है कि- श्री रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में उत्पलदेव को प्रतिबोध देकर ओसवंश की स्थापना की थी। तभी से यह गच्छ प्रसिद्धि में आ रहा है।

श्री रत्नप्रभसूरिने सत्यिका माता को प्रतिबोध देकर स्थापना भी की थी। वह पूर्ण अहिंसक थी, रत्नप्रभसूरिजी की भक्त थी और तभी से उपकेशवंश की परम्परा चली आ रही है। आज सच्चियाई माता का मन्दिर है वह जैनेतरों के कब्जे में है। किन्तु ओसवंश के स्थापक होने के कारण ओसवालज्ञाति के जितने भी गोत्र हैं, वे प्रायः इसी सच्चायिका माता को मानते हैं, ढोक देते हैं, मान्यता मानते हैं और पूजा भी करते हैं। कृति सुन्दर एवं पठनीय है।

(राग वेलावल प्रभाती)

मन सुध ज्यां महिर करै माता, दिन चढ़ती दौलति त्यां दाता ।
विघन हरै त्यां वरदाता, सेवकजन पूरवै सुखसाता ॥१॥
अंगि केसरि कस्तूरी अरचइ, चोवा चन्दन चावण्ड चरचइ ।
देवी धूप खेवी घृत दीप रचइ, पांमइ जिण घरी ऋद्धिसिद्धि परचइ ॥२॥
पूजइ फलफूलां प्रात समइ नवनेवज ढोए कंध नमइ ।
मांगइ सुत अरज करइ मनमइ जित घरइ सुख लीनी सुत जनमइ ॥३॥
माहरै चिन्तामणि तूं माता वलि कामधेनु विसुविख्याता ।
तूं सुरनर त्रिभुवन त्राता दिन-दिन मनवांछित फल दाता ॥४॥
गुण उज्जवल व्रण सांवल गाता साची तूं सिचियाय तूं सुखदाता ।
तूं मात तात सज्जन भ्राता अधिका महियलि तो अवदाता ॥५॥
कर चरण अठील जङ्या काठा, माता परताप झड्या माठा ।
सामी दण्ड छंडि लख साठा, इम सोम दुयण कीयउ पराठा ॥६॥
जण विषमी रीति मारग जावै, आडा नडउ उज्जड़ रन आवै ।
तेथि तिस्या नर तो ध्यावै, परघल जल शीतल त्यां पावै ॥७॥
वाट घाट वेला विषमी समर्यां माई आवे तुरत समी ।
गाढा अरि चोरट दुरि गमी अपणाइत दाखइ नजरि अमी ॥८॥
माता अन्न भण्डार भरै मोटो, तूं तिठां धन नावै तोटो ।
खल ग्रह निजबल न करै खोटो, आई जो नर पकड़इच तो ओटो ॥९॥
ताहरा गुण गाइ कहूं इतरो, जगी दे धनराय उपल जितरो ।
धणीयाणी मोपरी महिर धरो, खासो हूं पाना जाद करो ॥१०॥
देवी-सेवि मो दरसण दीजै कुबुद्धि केवी कांनै कीजै ।
माहरी चित चिन्ता मेटीजै, माता मुझ वीनती मानीजै ॥११॥
पांमीजै माय पाय तो परसै, दूझै घरी गायां सैंस दसे ।
अपणी माय पुरसै मन उल्लसै, दही दूध जीमीजै रवि दरसे ॥१२॥
कोई रोग व्याधि प्रभवै न कदा, गुडगुम्बड पीड न होइ मुदा ।
दुःखदालिद दूर हरै दिलदा, सुख उपजै देवी नाम सदा ॥१३॥
धणीय पमइ सांचौ धींग धणी, कवि अन्य गरज सरै न कीणी ।

घणी भौम परसिद्धि घणि, ओ इसराइ साचल मात तणी ॥१४॥
काइं डाइण साइण छल न करइ, देवी नाम लीयां यमदूत डरै ।
भूत प्रेत पाइ विमुह भरै, ओ इसराइ ताइ जो मुख उच्चरै ॥१५॥
महाईत उपद्रव मलवाई, कीधै जपनउ व्यापइ काई ।
धूप खेवि देवि त्यां ध्याइ, वल्ली ज्यां कुशल घरे वाई ॥१६॥
रिण रावल समर्‌यां सुरराणी, धायायां भय भाजइ धणीयाणी ।
आपै साथी तुरज आणी, सन्त सादे आवै सुरताणी ॥१७॥
भमता सुणि वीनती दिशि भाले, तुरका भय मोह दूरे टाले ।
प्रणपत्ति करे पूजूं प्रहकाले, रावली पाडीआ रखवाले ॥१८॥
वेरीदल आवंता वाडे परगट संत सादे पाधारै ।
आडी फिर पाछा ऊतारे, अपणा जन सरणइ औरै ॥१९॥
जढ नर जंगल देश जठै, पारै गढ़ झगपृहौ बहू कूड़ पठइ ।
कोई चिगड़ चगड़ सन्मुख कठरै, तूं राखइ माता शरम तठै ॥२०॥
जिण पोहरै चोर साह सम जाणि, साधां पिछाणं सइ न्य(न्या)णि ।
ऊपरि करी संतां आए साणी पोहरै इणि राखी अणी पाणी ॥२१॥
सुभ जन नाम लयां साजा, कोडि साढ़ा तीन जन सुखकाजा ।
तइं देश कोट गढ दे ताजा, रांकाथी तुरत किया राजा ॥२२॥
मन मान्या मही मेह वरसावै, नव-नव अन्न करसण नीपजावै ।
परजा राजा सही सुख पावइ, अई रजा तुझ सिर त्यां आवै ॥२३॥
त्यां आगली वाजै तुझ त्वरा, खल भाजै खोहिण दल पुरा ।
सवरीं गर जीपइ भडी शूरा, ते प्रगट प्रहार खत्री पूरा ॥२४॥
तूं बाली प्रौढ़ी नै तरुणी, गुण सुन्दरी हंसा गयगमणी ।
रूप अनोपम सुरराणी जय-जय जगदम्बा जगजननी ॥२५॥
गिरि शिखर विराजइ तू गाजइ, वडथानी थानी झल्लरी वाजइ ।
झतरालि नयर नयर झाजइ, रिधिमण्डे देवल तूं राजइ ॥२६॥
विचर विचर तूं ब्रह्माणी, समरी सिध साधक सुरराणी ।
अटवी उद्यान वन आयसाणी, जल थल महियल जंगल जाणी ॥२७॥
तूं नीर समीर नदी नालइ, वह ताजण राखइ वरसालइ ।
त्रिपुरा मत्थ गय भय टालइ, देवी सिंघण आणइ दे ठालइ ॥२८॥

अहि वींछी अंधारइ अजुआलइ, पासइ टालइ जिनप्रतिपालइ ।
आवे नहीं मींचि त्यां गणकालइ, साचल जांसू निजरसूं निहालइ ॥२९॥
देश-विदेश सीयइ दाहू, माता समर्‌यां न हूवइ माहू ।
कोई रोग सोग नावइ काहू, चावंड निज चाहो हिव चाहू ॥३०॥
गुणउज्जल निर्मल तुझ गाऊँ, धणियाणी एक मना ध्यायूं ।
चरणाली अरज करण चाहूं, पहूरी परसिद्ध बहुरिद्ध पाऊँ ॥३१॥
सेवक जण दिन दिन सुखकरणं, हित सायर मन तन दुःख हरणं ।
तूं माय सहाय दूतर तरणं, सिचियाय नमो तो पाइ सरणं ॥३२॥
सतर चउसठइ जेठसइ गुरु आज्ञा श्री **देवगुप्त**गृही ।
मुनि **ओइसगच्छ जयरतन** मुही, कीर्ति श्रीसाचल मातकइ ॥३३॥

इति श्री सच्चायिका स्तुति

कठिन शब्दार्थ :

सुध	– शुद्धि	महिर	– कृपा	विमुह	– विमुख
दिनचढ़ती	– प्रतिदिन	अंगी	– अंगे	धणीयाणी	– स्वामिनी
खेवी	– खेना	नवनेवज	– नवनैवेद्य	करसण	– किसन
कंध	– स्कन्ध	विशु	– विश्व	मींचि	– मृत्यु
व्रण	– वर्ण	सांवल	– श्यामल	दूतर	– दुस्तर
सिचिचाय	– सच्चायिका	अवदाता	– प्रसिद्धि	ध्यायी	– दौड़कर आती है
अठील	– यहाँ(?)	उज्जड़	– उबड़-खाबड़		
थिति	– स्थिति	समि	– समय	प्रणपत्ति	– नमस्कार
अपनायत	– अपनाकर	अमि	– अमृत	गसगमणी	– हाथी के समान चलने वाली
नावइ	– नहीं आता है	तोटो	– कमी		
इतरो	– इतना	जितरो	– जितना	चावंड	– चामुंडा
मोपरी	– मेरे ऊपर	जाद	– याद		
प्रभवइ	– प्रभावशील	दालिद	– दारिद्र		
दिलदा	– दिल से	भौमपर	– भूमि पर		
इसवाइ	– ईश्वरी	साचल	– सच्चायिका		

श्री रत्नविजयजी रचित
दो स्तवन

इस लेख में श्री रत्नविजयजी रचित दो स्तवन दिए जा रहे हैं । प्रथम तो श्री कृष्णगढ़ स्थित श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ का है और दूसरा रतलाम मण्डन श्रीऋषभदेव स्वामी का है ।

श्री रत्नविजयजी किस गच्छ के थे ? और किसके शिष्य थे ? इस सम्बन्ध में मुनिराज श्री सुयशविजयजी और सुजसविजयजीने 'सचित्र विज्ञप्ति-पत्र' शीर्षक से जो लेख लिखा है उसके आधार पर श्री रत्नविजयजी की विजयशाखा को देखते हुए ये तपागच्छीय थे और उन्होंने अनुमान किया है कि श्री तपागच्छ श्रमण वंशवृक्ष पृष्ठ ७ अमीविजयगणि के शिष्य श्री रत्नविजयजी का नाम प्राप्त होता है । श्री रत्नविजयजी के दो शिष्य हुए, मोहनविजय और भावविजय । भावविजय के शिष्य आचार्य प्रवर श्री विजय नीतिसूरि हुए, अतः उन्होंने यह अनुमान किया है । श्री नानुलाल नाम के विद्वान् के द्वारा लिखित सचित्र विज्ञप्ति पत्र के कर्ता यही रत्नविजयजी हैं। किन्तु इन दोनों स्तवनों को देखते हुए श्री रत्नविजयजी तेजविजयजी के शिष्य श्री शान्तिविजयजी के शिष्य थे । और इनका समय भी समकालीन है अतः यही रत्नविजयजी प्रतीत होते हैं न कि आचार्य प्रवर श्री नीतिसूरिजी के पूर्वज।

श्री रत्नविजयजी को लिखे गये संस्कृत विज्ञप्ति पत्र में भी उनके गुरु का नाम नहीं है । इसके अतिरिक्त मेरे संग्रह में जो इस सम्बन्ध में दो विज्ञप्ति पत्र और एक पत्र है उसमें प्रथम विज्ञप्ति पत्र संवत् १९१० का है जो ग्वालियर भेजा गया है, उसमें भी गुरु का नाम नहीं है । दूसरे विज्ञप्ति पत्र में जो किशनगढ़ से संवत् १९१४ में लिखा गया है, उसमें यह लिखा है कि- श्री किशनगढ़ में इनका चातुर्मास था । तीसरे पत्र में भी जो कि मकसूदाबाद से प्रतापसिंह लक्ष्मीपतसिंह दूगड़ की ओर से लिखा गया है उसमें भी गुरु का नाम नहीं है । अतः नामसाम्य से और समयकाल भी एक होता है, इस दृष्टि से यह कल्पना कर सकते हैं कि- रत्नविजयजी शान्तिविजयजी के शिष्य थे । ये अच्छे विद्वान् थे, क्रियापात्र थे, चारित्रनिष्ठ थे और

भगवतीसूत्र पर व्याख्यान भी देते थे ।

प्रथम पार्श्वनाथ स्तवन में किशनगढ़ विराजित श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिर में संवत् १९०६ का उल्लेख किया गया है और चातुर्मास भी वहीं था। अतः उनके द्वारा विज्ञप्ति पत्र में उल्लेखित चातुर्मास यहाँ है, इसकी पुष्टि होती है । दूसरे ऋषभदेव स्तवन के अन्त में लिखा है कि- साधु श्री त्यागी महाराज, संवत् १९०२ लिखा है और विज्ञप्ति पत्र भी ग्वालियर भेजा गया है । अतः नामसाम्य से यह अनुमान है कि वही हो । दोनों स्तवन प्रस्तुत हैं–

१. कृष्णगढ़ मण्डन पार्श्वनाथ स्तवन

रे प्रभु तार चिन्तामणि पासजी भक्तनी वार भवांतर जाल रे ।
प्रभु दीनदयाल विशाल छो हिवे सेवक सन्मुख भाल रे ॥प्रभु तार. १॥
रे प्रभु दूर थकी हूं आवियो भरपूर मनोरथ मुज्झ रे ।
प्रभु सूर थका किम तम रहे त्रिहुँ लोक दिवाकर तुज्झ रे ॥प्रभु तार. २॥
रे प्रभु चिन्तामणि स्वामी सिरे **गढ़ कृष्ण** विराजे आपरे ।
प्रभु पाप सकल नाशे परा भवि तन मन से कर जाप रे ॥प्रभु तार. ३॥
रे प्रभु प्रभुदर्शन जाणूं नहीं, हूँ ताणू निसदिन रूढ़ रे ।
गूढ़ अति गुण ताहरा किम जाण सके जिके मूढ़ रे ॥प्रभु तार. ४॥
रे प्रभु हरखे हिवडो माहरो तारक तायरो मुख देख रे ।
प्रभु मोर सोर जिम मेघ से तिम पंख जरे विन पेख रे ॥प्रभु.तार. ५॥
रे प्रभु उगणिसे छः के समय वद माघ तीज शुभ वार रे ।
रे प्रभु भगवन्त भेट्या भावसूं हिये हुलसे हरख अपार रे ॥प्रभु तार. ६॥
रे प्रभु **तेजविजय** तपतेज में, पद **शान्तिविजय** महाराज रे ।
प्रभु **रत्नविजय** एम विनवे बडवेगो दीजो सिवराज रे ॥प्रभु तार. ७॥

२. रतलाम मण्डन ऋषभदेव स्तवन

ऋषभ जिनेन्द्र दयाल मया कर्मो(करजो) भ(घ)णी हो लाल,
मया कर्मो(करजो) भ(घ)णी ।
भ्यासम(?) छै सवि तुज्झ अरज सुण मुझ धणी हो लाल,
अरज सुण मुझ धणी ॥

त्रिभुवनतिलक समान मोहादिक मन्थना हो लाल, मोहादिक मन्थना ।
सकलसुरिन्द्रना नाथ साथ शिवपंथना हो लाल, साथ शिवपंथना ॥१॥

व्यक्ति शक्ति अनन्त आतम निज पेखता हो लाल, आतम निज पेखता ।
सत्ता धर्म आसक्त उपाधि उवेखता हो लाल, उपाधि उवेखता ।
चरण सेवना स्वाद सुरिन्द्रथी आगला हो लाल, सुरिन्द्रथी आगला ।
समता संजम छा(ठा?)ण विना झूठी कला हो लाल, विना झूठी कला ॥२॥

रत्नपुरीमा धाम चैत्यचूडामणि हो लाल, चैत्यचूड़ामणि ।
अद्‌भुत रूप अनुपम ठवणा तुम तणि हो लाल, ठवणा तुम तणि ।
दीठी मुद्रा देव चन्द्रोदय दोहलि हो लाल, चन्द्रोदय दोहलि ।
सुरतरु कुसुम सुगंध मिलै किम सोहली हो लाल, मिलै किम सोहली ॥३॥

हूं छूं कर्माधीन मोहास्रव ऊछले हो लाल, मोहास्रव ऊछले ।
अशुभ करुं अनुष्ठान आणामें नवी मिले हो लाल, आणामें नवी मिले ।
खण्डित पर्पट रीत धर्म समाचरु हो लाल, धर्म समाचरु ।
सिद्धसमाननिधान आतमगुण विसरु हो लाल, आतमगुण विसरु ॥४॥

दंभादिकना छंद तणी मुझ वासना हो लाल, तणी मुझ वासना ।
सहेज समाधि विधान करी न उपासना हो लाल, करी न उपासना ।
प्रभुपदपंकजध्यान भविक भवजल तिर्या हो लाल, भवजल तिर्या ।
मदनसुन्दरी भरतार सन्ताप संहर्या हो लाल, सन्ताप संहर्या ॥५॥

दुजो न जाचुं देव सेव तुम पद सदा हो लाल, सेव तुम पद सदा ।
शरण तुम्हारो नाथ न छांडुं हूं कदा हो लाल, न छांडुं हूं कदा ।
शान्ति परमसुखरूप जगतचिन्तामणि हो लाल, जगत चिन्तामणि हो लाल ।
रत्नविजय अरदास आसा पूरो मुझ तणि हो लाल, आसा पूरी मुझ तणि ॥६॥

इति रत्नपुरीनाथ ऋषभदेव स्तवन ।

साधुजी श्री त्यागी महाराज रत्नविजय कृत स्तुति
संवत् १९०२ आसोज सुदी ११

★★★

श्री धनेश्वरसूरिजी रचित
संवेगकुलकम्

आगम प्रभाकर मुनिराज श्री पुण्यविजयजी सम्पादित 'कैटलॉग ऑफ संस्कृत प्राकृत मेन्यूस्क्रिप्ट : जैसलमेर कलेक्शन' के पृष्ठ २८८ पर अंकित, क्रमांक १३२४ प्रति में ४२ नं. की कृति पत्र २७० से २७२ तक में दी गई है। संवत् १२४६ की लिखी हुई प्रति है। यह वस्तुतः सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरण से प्रारम्भ होती है और युगादिदेवस्तोत्र पर समाप्त होती है। वस्तुतः यह स्वाध्याय पुस्तिका दृष्टिगत होती है। इसमें खरतरगच्छ के आद्याचार्यों की अधिकांशतः कृतियाँ है।

यह कृति धनेश्वरसूरि की है। धनेश्वर नाम के कई आचार्य हुए हैं जिनका विवरण 'जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास' से दिया गया है। उसके अनुसार श्री धनेश्वर श्री जिनेश्वरसूरि के शिष्य श्री अभयदेवसूरि के गुरुभ्राता थे। इनका समय ११वीं शताब्दी माना जाता है।

इसी समय में चन्द्रगच्छीय चन्द्रप्रभसूरि के शिष्य धनेश्वरसूरि हुए हैं। जिनका कोई भी साहित्य का उल्लेख प्राप्त नहीं है।

नागेन्द्रगच्छ (पौ.) के रामचन्द्रसूरि की परम्परा में अभयदेवसूरि के शिष्य धनेश्वरसूरि हुए हैं। इनकी भी कोई कृति प्राप्त नहीं होती है।

१४वीं शताब्दी में नागेन्द्रगच्छीय धनेश्वरसूरि हुए हैं।

विक्रम संवत् ५१० (?) में धनेश्वरसूरिजी नाम के आचार्य हुए हैं। इनके भी कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होते हैं।

संवत् ११७१ में धनेश्वरसूरि हुए हैं। जिनकी की सूक्ष्मार्थविचार सारोद्धार टीका है।

संवत् १२०१ में विमलवसही आबू के उद्धारक धनेश्वरसूरि हुए हैं। इसी समय में चन्द्रप्रभसूरि के शिष्य धनेश्वरसूरि हुए हैं।

राजगच्छीय धनेश्वरसूरि हुए हैं जो कि कर्दम भूपति थे।

इन सब धनेश्वरसूरि के समय को देखते हुए इस रचना के कर्त्ता

कौन हो सकते हैं ? यह विचारणीय है । किन्तु इस हस्तलिखित ग्रन्थ में खरतरगच्छीय आद्याचार्यों की प्रायः कृतियाँ लिखी गई हैं । अतः श्री धनेश्वरसूरि श्री जिनेश्वरसूरि के शिष्य होने चाहिए । श्री जिनेश्वरसूरि, श्री बुद्धिसागरसूरि की शिष्य-परम्परा भी विशाल थी । श्री धनेश्वरसूरिजी की कृति सुरसुंदरीचरियं भी प्राप्त होती है । अतः इसका कर्त्ता जिनेश्वरसूरि शिष्य धनेश्वरसूरिजी ही मानना अधिक संगत होगा ।

संवेग से ही निर्वेद पैदा होता है और वैराग्यपूर्ण श्रद्धाभावना पैदा होती है । इस संवेगकुलक में पूर्वार्जित कर्मोदय से इस जीव ने जो पीड़ा प्राप्त की है और विवेकरहित होकर विलाप किया है, उसका विवेचन है । रे जीव ! नरक और तिर्यंचगति की तीव्र वेदना और व्यथा का तुझे स्मरण नहीं है । स्थिरचित्त होकर पूर्व में बांधे हुए बन्ध, वध, मरणादि और प्राणों का नाश, उसका यह फल है । दीनों पर तुने कभी भी अनुकम्पा नहीं की है और मुनिजनों को भी औषधदान नहीं दिया है । यह अब अशुभ कर्म का उदय है । अनेक भवसंचित पापकर्मों का उदय है । तूं विवेकवान होकर इस वेदना को विवश होकर भोगने को अभिभूत हुआ है । गजसुकुमाल, सनत्कुमार आदि धीर पुरुषों के द्वारा वेदना को अनुभव करते हुए अपने जीव को स्थिर कर किया है और धन्नामहर्षि, स्कन्दकशिष्य, मेतार्य और चिलातीपुत्र आदि का स्मरण कर शुभध्यान में स्थिर हो जा । इन महापुरुषों ने भी कर्मोदय के उदय से तीव्र दुःख पाया है । इसलिए इस आर्त्त रौद्रध्यान को छोड़कर, धर्मध्यान में रक्त होकर सकल कर्मों का नाश कर मोक्षसुख को प्राप्त कर, ऐसी धनेश्वर की भावना है । इस कृति का आस्वादन करिए-

संवेग कुलकम्

गुरुवेयणविरहेण व जिणसासणभाविएण सत्तेण ।
सुहझाणसंधणत्थं सम्मं परिभावियव्वमिणं ॥१॥
पुव्वभवज्जियकम्मोदएण रे जीव, तुज्झ सइ पीडा ।
जाया देहे ता किं विलवेसि विवेयरहिय व्व ॥२॥
किं जीय ! नेय सुमरसि नारयतिरिएसु तिव्ववियणाओ ।
थोववियणा वि उदए संपइ जं विलवसे विरसं ॥३॥

विहिया जीवाण तए इण्हि ता सहसु थिरचित्तो ॥४॥
नरवरकम्मनिउत्तेणं जीवा पुरा बंधवहणमरणाई ।
पाणासणाइछेओ जो विहिओ तव्विवागो य ॥५॥
दीणाणाहुद्धरणं ओसहअसणाइएहि मुणिदाणं ।
जइ हुज्ज पुरा विहियं ता तुह किं हुज्ज इय पीडा ॥६॥
रे जीव अन्नजम्मे समज्जियं जं तए असइकम्मं ।
तस्स विवागं सम्मं इण्हि विसयेसु सुहभावो ॥७॥
सम्ममहियासणाए अणेगभवसंचियं पि जं कम्मं ।
नासिज्जइ सुहभावा पवणेणं पेहपडलं व ॥८॥
जइ सविवेओ ण सहसि अज्ज तुमं जीव ! वेयणं विवसो ।
ता दुस्सहो भविस्सइ भवंतरे कम्मपरिणामो ॥९॥
अइदारुणगुरुवेयणअभिभूएणावि उत्तमनरेण ।
अट्टज्झाणं मुत्तुं धीरत्तं होइ कायव्वं ॥१०॥
गयसुकुमाल-सुकोसल-सणंकुमाराइ-धीर-पुरिसेहिं ।
किं न सुया जह सोढा जीयंतकरीउ वियणाउ ॥११॥
धन्ना खंदगसीसा मेयज्ज-चिलाइपुत्तपभिईया ।
गुरुवेयणविहुरा किं हु जे सुद्धज्झाणमावन्ना ॥१२॥
जेणेव तिक्खदुक्खं संसारियसोगसंभूयं ।
तेणं चिय सप्पुरिसा पडिवन्ना परमपयमग्गं ॥१३॥
अहवा खित्तपयाणेण जणा सहाय मग्गंति सस्सलवणत्थं ।
तुज्झ महारोगाई जाओ कम्मक्खयसहाओ ॥१४॥
इय भावणाइ अट्टं वज्जिय तं होसु धम्मझाणरओ ।
जेण हयसयलकम्पो सिवसुक्ख**धणेसरो** होसि ॥१५॥

इति संवेगकुलकं समाप्तम् ।

C/o. प्राकृत भारती अकादमी
१३-A, मेन गुरु नानक पथ,
मलवीय नगर, जयपुर-१७

नवतत्त्व साहित्य अने एक अप्रगट चोपाई

मुनिसुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ

सम्यग्दर्शननो सामान्य अर्थ थाय सारी रीते जोवुं. वाचकप्रवर उमास्वातिजी महाराज तत्त्वार्थाधिगमसूत्रना प्रथम अध्यायमां सम्यग्दर्शननी विशेष व्याख्या करता कहे छे के तत्त्वोनी श्रद्धा एटले ज सम्यग्दर्शन (सू. २). अहीं प्रश्न ए थाय के तत्त्व एटले शुं ? तत्त्व एटले सारभूत पदार्थ. परमात्मा श्रीमहावीरदेवे प्ररूपित करेला धर्ममां आवां तत्त्वोने स्थान आपवामां आव्युं छे. अहीं नवतत्त्व के तेना स्वरूपनी विशेष चर्चा न करता अमे नवतत्त्व सम्बन्धी साहित्य पर प्रकाश पाड्यो छे.

पूर्वाचार्योए नवतत्त्वना बोध माटे जुदी-जुदी अनेक रचनाओ करी छे. तेमानी केटलीक पद्यस्वरूपे तो केटलीक गद्यस्वरूपे, पद्यस्वरूपे मळती रचनाओ प्रकरण, कुलक, चोपाइ, स्तवनादि रूपे छे. तो टीका, भाष्य, टबो आदि साहित्य गद्यरूपे उल्लेखनीय छे. प्राकृत, संस्कृत, गुजराती, राजस्थानी अने हिन्दी एम पांच भाषामां आ साहित्य रचायेलुं जोवा मळे छे. अज्ञातकर्तृक नवतत्त्वप्रकरणनी रचना बाद करता संस्कृत, प्राकृत भाषानी नवतत्त्वसम्बन्धी सौ प्रथम स्वतन्त्र कृति एटले ११मी सदीमां थयेला देवगुप्तसूरिजीनी रचना - नवतत्त्व प्रकरण. एज प्रमाणे देश्य भाषानी कृतिओमां सौ प्रथम कृति एटले तपागच्छीय आ. श्री सोमसुन्दरसूरि कृत नवतत्त्वप्रकरण-बालावबोध सं. १५०२नी रचना. जोके आ प्रमाणेनी नोंध प्रकाशित थयेला सूचिपत्रोने आधारे कराई छे. कोई जग्याए त्रुटि होय एम बनवा जोग छे. कदाच कोइ कृति नोंधाया वगर पण रही गइ हशे तो विद्वानो तेनी नोंध करशे.

आ चोपाईना कर्ता लूंकागच्छना श्रीपूज्य तेजसिंह, तेमना शिष्य श्रीकान्ह, तेमना शिष्य पं. दाम मुनिना शिष्य मुनि वरसिंह छे. तेमणे कालावडमां सं. १७६६मां आ चोपई रची छे, अने ते ज वर्षमां त्यां ज कर्ताना शिष्य लालजी ऋषिए आ चोपईनी प्रति लखी छे, जेना परथी आ सम्पादन करेल छे.

सम्पादित करेल कृति पण नवतत्वनी ज छे. कविए मूळना केटलाक

पदार्थो पद्यानुवादमां छोडी दीधा छे. आम करवानुं चोक्कस कोई कारण समजायुं नथी. वळी कृतिनी प्रत रचनानी संवतमां ज, ते ज गाममां कर्ताना शिष्ये लखेली छे तेथी विशेष भूलोनो सम्भव ओछो छे.

प्रस्तुत कृतिनी प्रत सम्पादनार्थे आपवा बदल श्री संवेगी शाळा भण्डारना व्यवस्थापकश्रीनो तेमज पू. मु. श्रीधर्मतिलकविजयजी नो खुब खुब आभार.

अर्हं नमः ऐँ नमः

॥ ॐ ॥ ढाल - चोपाईनी ॥

पास जिनेसर प्रणमी पाय, सहगुर **दांम** तणें सुपसाय,
नवतत्त्वनो कहुं विचार, सांभलयो चित दे नरनार ॥१॥
जीव अजीव पुण्य पापज जोय, आश्रव संवर निर्जरा होय,
बंध मोक्ष नवतत्त्व ए सार, हवइ कहुं एहनो विस्तार ॥२॥
जीवतत्व चेतनलक्षण जांण, चउद भेद एहनां वखांण,
अजीव अचेतनलक्षण जोय, चउदभेदे ए पण होय ॥३॥
पुन्यतत्व शुभ कर्मनो संच, बितालीसे भेदे तं च,
पापतत्व असुभ कर्मनइ उदे, ब्यासी भेदे जिनवर वदें ॥४॥
आश्रव ते कर्म आववानो ठांम, बितालीसें भेदे तांम,
संवरतत्व आश्रवनो रूंधवो, सत्तावन भेदे ते स्तवो ॥५॥
निर्जरातत्व कर्म खपावें तांम, बारे भेदें ते अभिरांम,
बंधतत्वना च्यार प्रकार, देव नर तिरी नर्क विचार ॥६॥
मोक्षतत्व कर्म क्षय करी जाय, नव भेदे तेहज कहवाय,
बिसइं छहोत्तर भेद वखाण, श्रावक ते जे एहना जांण ॥७॥
चेतना लक्षण एक प्रकार, त्रसनइं थावर दोइवी(वि)ध सार,
त्रिणविध पुरुष-स्त्री-नपुंसकइ,सुर-नर-तिरि-नारकी चउ थांनकइ ॥८॥
पांच प्रकारे जीव ज कहुं, एकंद्री बेरंद्री लहुं,
तेरंद्री चोरंद्री सार, पंचंद्रीना बहु प्रकार ॥९॥
षटविध पृथवी अप तेउ वाय, वनसपती(ति) छठ्ठी त्रसकाय,
इणिविध पांचसें त्रेसठ भेदे जीव, जिनवरजी भाखइ सदीव ॥१०॥

बि भेदे एकंद्री जोय, सूक्षम बादर ए बें होय,
सनी असनी पंचंद्री कह्या, गुरूवचन आगमथी लह्या ॥११॥
बेरंद्री तेरंद्री सार, चउरंद्री ए सात प्रकार,
साते ए प्रजाप्त कह्या, साते ए अप्रजाप्त लह्या ॥१२॥
प्रजाप्तौ कहीए तेह, प्रजा पूरी करइ जेह,
अप्रजाप्तो पूरी नव करइ, चउथी प्रजा विण कीधां मरइ ॥१३॥
ए जीवना चउद प्रकार, धारइ समदीठी नर-नार,
जीव जांण्यां वी(वि)ण समकित नही, एहवी वातज जिनवर कही ॥१४॥
कहइ कहुं प्रजानो ज्ञांन, जिण धार्या आपइ वीज्ञांन,
संसारी जीवनइ प्रजा कही, सीधना जीवनें प्रजा नही ॥१५॥
आहारप्रजा पहिली जांणि, सरीरप्रजा बीजी वखांण,
इंद्रीप्रजा त्रीजी कही, सासोसास ए चोथी लही ॥१६॥
पांच इंद्री ते पांचें पांण, मन-बल वचनबल कायबल जांण,
सास-उसास अनें आयुखो, प्रांण दसविधने उलखो ॥१९॥
भाषाप्रजा पांचमी कही, मनप्रजा ते छठी लही,
एकंद्रीने प्रजा च्यार, आहार सरीर इंद्री उदार ॥१७॥
सासोसास ए च्यारज जांण, विगलंद्रीने पंच प्रमाण,
पंचमी भाषा वधी सार, संगनीने मननो वीस्तार ॥१८॥
जीव ते जे प्रांणज धरे, प्रांण विना ते निश्चइ मरें,
जे नर जीवना प्रांणज हरइ, तिण हंस्या नरकइं संचरइ ॥१९॥
धर्म अधर्म अने आकास, तीन तीन भेद एहना प्रकास,
स्खंध देस अनें परदेश, दशमो काल कह्यो सूवीसेस ॥२१॥
चलणसभाव धर्मास्तिकाय, अधर्मास्ति ते थिर सूखदाय,
विकास लखण आकासज कह्यो, गुरूप्रसाद आगमथी लह्यो ॥२२॥
काल ते समयाधिक जांण, हवइ कहुं तेहनो परिमांण,
असंख्यात समें आवलिका जोय, कोडि एक सतसठलक्ष होय ॥२३॥
सत्योत्तरसहस नें बिसें सोल, एहथी आवलका महुर्त्त बोल,
तीस महूर्त्त दिनरात्रें जाय, तीसे दिवसे मासज थाय ॥२४॥

बारे मासे वरसज गिणौ, पांचे वरसे युग इम सुणो,
वीसे युगे सोनो मांन, काल असंख ते इणिपरि जांन ॥२५॥
पुदगलना ते च्यार प्रकार, खंध देस परदेस विचार,
चउथो भेद ते परमांणुयो, खंध देस परदेसथी जुयो ॥२६॥
ए चउद भेद अजीवनां जांण, समदीठी ते करइ प्रमांण,
हवइ नवविध पुन्यना सार, उपारजवानो कहुं वीचार ॥२७॥
दांनमांहि उतम अन्नदांन, बीजो पुन्य पांणि परधांन,
स्थानकपूज्य ते त्रीजो सही, सेज्या पाट-पाटिलो गही ॥२८॥
वस्त्रदांन दीजे सीतकाल, पून्यइ फले मनोरथमाल,
मणपून्य वचपून्य कायपून्य जांण, नवमो नमस्कारपुन्य वखांण ॥२९॥
ए नव पून्य उपार्जवानो ठांम, तेहना कह्या जुजूया नांम,
पून्य भोगव्यानो कहुं प्रकार, बितालीसे भेदे सार ॥३०॥
सातावेदनी जेहथी सूख थाय, उचगोत्र धुर आसन लहवाय,
मनुष्यगति मनुष्यानुपूरवी, गति जातो नवि भूले भवी ॥३१॥
देवगति देवपूरवी जांण, पंचंद्रीनी जाति प्रमांण,
उदारीकसरीर मनिष तिर्यंच, विक्रय देवता-नारकी संच ॥३२॥
आहारक चउदपूरवीने होय, तेजस आहार पचइ ते सोय,
कारमण ते कोदालीरूप, उदारीक अंगोपांगसरूप ॥३३॥
विक्रयअंगोपांग ज थुणुं, आहारकअंगोपांग ए भणुं,
वज्रऋषभनाराचसंघयण, जिनजीना ए साचा वयण ॥३४॥
वज्र कहतां खीली जांण, ऋषभ ते पाटों वखांण,
नाराच बेहूं पासे मंकडबंध, प्रथम संघयण ते इणिपरि संध ॥३५॥
वांम ढीचणथी जमणो खवो, दाहिण ढीचण डावो खवो,
मस्तकअग्रथी पालठी अंत, जमणा ढीचणथी डावो ढीचण जंत ॥३६॥
समचउरंस ए संस्थान, चिहुं भागे सरीखो मांन,
शुभवर्ण रातो पीलादि कह्यो, शुभरस ते मधुरादि लह्यो ॥३७॥
शुभगंध कपूर चंपादि जेह, शुभस्फरश सूहालो तेह,
अगरूलघु भारी हलुयो सही, पराघात ते अनेरो जीपें नही ॥३८॥

सासोसास लेतो जणाय, चउवीसमो ते ए कहवाय,
आतप ते सूर्यनी परइ, उद्योत कर्म अजुयालो करइ ॥३९॥
निर्माणकर्म ते संधो सार, अंगोपांग रूडइ आकार,
रूडी गति हंस सरखी जांण, त्रस सकति चालवानी आंण ॥४०॥
बादर आवइ द्रष्टिगोचरइ, परजाप्तो परजा पूरी करइ,
प्रतेक एक सरीर एक जीव ज होय, थिरनांम अंगोपांग णीश्चल होय ॥४१॥
शुभनांम नाभि उपरि रूडो भणो, शुभग ते लोकने सोहांमणो,
सुस्वर बोलें मीठें स्वरइ, आदेय जे वचन परिमांणज करे ॥४२॥
जसकर्म जेहनो जस बोलाय, सुर-नर-तिरीआयु बंधाय,
तीर्थंकरनांमकर्म जे जांण, ए भेद बितालीस पून्य प्रमांण ॥४३॥

दुहा

चउथो तत्त्व हवे सांभलो, पाप तणें उदय एह,
ब्यासी भेद जिनवर कह्या, मनसुं धारो तेह ॥४४॥
मति-श्रुत-अवधि-मनपर्जव, केवलज्ञांन ए पंच,
आवर्ण ढाकित होय, पाप तणो फल संच ॥४५॥

चोपइ

दानांतराय दांन नवि देवाय, लाभांतराय लाभ नवि थाय,
भोगांतराय छतइ भोग विजोग, उवभोगे वली वली नवि जोग ॥४६॥
एवइ कहुं वीर्य अंतराय, बल-पराक्रम ते नवि फोरवाय,
चषुदर्शनावर्ण जे नेत्र विषें न होय, अचषुदर्शण नेत्र वीन अवर
इंद्रीबल न जोय ॥४७॥
अवधिदर्शनावर्ण जे अवधि न उपजइ, केवलदर्शनावर्ण जे केवल न संपजइ,
सुखें जागें ते नीद्रा जोय, कष्टें जागेइ निंद्रानिंद्रा होय ॥४८॥
बिठां निंद्रा आवइ जेह, प्रचलानिंद्रा कहीए तेह,
वाटइ जांता उंघतो जाय, प्रचलाप्रचला ते कहवाय ॥४९॥
निंद्रामाहि करइ सव काम, थीणधीनिंद्रा तेहनो नांम,
नीचगोतर ते नीची जाति, असातावेदनी पांमे घात ॥५०॥

मिथ्यात जे मांने कुदेव, कुधर्म कुगरनी करइ सेव,
हाल्या चाल्यानी शक्ति न होय, थावरपणो ते कहीए सोय ॥५१॥
दृष्टिगोचरइ नावइ जीव, ते कहीए सुक्ष्म सदीव,
प्रजा ते पुरी नव करइ, अप्रजासो सदाइ मरइ ॥५२॥
एकइ सरीरें जीव अनंत, साधारण ते कहीए जंत,
दांत हाथ अंग हालें घणो, पाप उदय ते अथिरपणो ॥५३॥
नाभि उपरि पाडुयो आकार, अशुभपणो ते पाप प्रकार,
भुंडो बोलइ लोक सब कोय, दोभागपणो ए सही होय ॥५४॥
स्वर बोलइ ते असूयांमणो, पाप उदय ते दुस्वरपणो,
वचन न मांने जेहनो कोय, अनादेयवचन एहज होय ॥५५॥
रूडो करतां जस न बोलाय, अजसपणो ते कहिवाय,
नरकगति नरकानुपूरवी, नरकायुं पापें अनुभवी ॥५६॥
क्रोध-मांन-माया-लोभज जांण, संजलना ए पक्ष प्रमांण,
क्रोध-मान-माया-लोभ विचार, प्रत्याख्यानी मास ज च्यार ॥५७॥
क्रोध-मांन-माया ने लोभ, वरस एक लगें एहनो थोभ,
अप्रत्याख्यांनी ए कहेवाय, पाप उदय त्यारे नवि जाय ॥५८॥
क्रोध-मांन-माया ने लोभ, भव भवना एहज मोभ,
अनंतानबंधी एहज च्यार, पाप उदय रझले संसार ॥५९॥
हास-रति-अरति-भय-सोक, छठो ते डुगंछा थोक,
पुरष-स्त्री-नपुंसकवेद, तीर्यच इकसठमो भेद ॥६०॥
तिर्यंचनी आंनपूरवी जांण, एकंद्री ते पाप प्रमांण,
बेरंद्री तेरंद्री सही, चउरंद्री पाप प्रकृत कही ॥६१॥
कुछितगति रासभनी जांण, उपघात पडजीभी नांण,
वर्ण-रस-गंध-स्फर्श विचार, ए पांमें ते असुभ असार ॥६२॥
पाटो बिहुं दिश माकडबंध, ऋषभनाराचसंघयण ए संच,
बिहुं दिस माकडबंध पाटो खीली नही, नाराचसंघयणनी ए वातज कही ॥६३॥
एक दिशि माकडबंध ज होय, अर्धनाराच इणिपरि होय,
कीलके खीली ढीली जोय, छेवटइ संधि लगाडी होय ॥६४॥

नाभि उपरहो रुडो लह्यो, निगोहसंस्थान इणिपरि कह्यो,
नाभि नीचइ ते रूडो जांण, उचो भूंडो सादि वखांण ॥६५॥
वांमनसंघयण इणि परि जोय, मस्तक-ग्रीवा-हाथ-पग रूडो होइ,
कुबज पुठइ उदर असार, एकासीमो पाप विचार ॥६६॥
सघलां अंगोपांग करूप, हुंडकनो ए कह्यो सरूप;
ब्यासी भेद ते पापना जोय, समदीठी ते छांडें सोय ॥६७॥

दुहा

श्रीजिनवरजी भाखीया, प्रश्नव्याकरण मझारि,
पाप आवइ जिणें थानिकें, तेहना पांच प्रकार ॥६८॥
भेद बितालीस जे कह्या, सूत्रमांहि वीस्तार,
समकितधारी ते सही, जांणइ एह विचार ॥६९॥

चोपइ

इंद्री पांच ते जिनवर कही, पाप आवइ तिणें करी सही,
क्रोध-मांन-माया-लोभ ए च्यार, प्रणातपात जीवनो संहार ॥७०॥
मृषावाद जूठो उचरइ, अदतांदान ते चोरी करइ,
मैथुंन जे परस्त्रीनी सेव, परिग्रह उपरि मन नितमेव ॥७१॥
मन वचन कायाना योग, वीपरीतपणइ वरतावें लोग,
काया अजयणा वरते जेह, कायकीक्रीया कहीए तेह ॥७२॥
हल-उखल-घरटी-कोदाल, अधिकरणनी क्रिया भाल,
जीव-अजीव उपरि रीस, पाउसीक्रिया ने निसदीस ॥७३॥
परतापनी क्रिया जे धरइ, पण आंपणने पीडा करें,
प्रणातपातकी जीवनो नास, आरंभीया करसण हाट प्रकास ॥७४॥
अनेक पदार्थ उपरि ममता सही, परगहीयाक्रिया ते कही,
मायावतीयाक्रिया जांण, परनी वंचना करइ अजांण ॥७५॥
मथ्यादंसणवती हेव, कुगर-कुदेव-कुधर्मनी सेव,
अपचखांणी पचखाण नव धरइ, स्त्रीपरसंसा इष्टकी करइ ॥७६॥
पिष्टकीक्रिया ईम उचरइ, भलो भूंडो देखी राग-द्वेषज करइ,
पाडुचीक्रिया ते कहिवाय, किणही कने वस्त देखी न जाय ॥७७॥

सामंतोपक्रियापातकी, ठांम उघाडा राख्या थकी,
नेसथीया अन्य पासइ सस्त्र घडाय, साहथीया पोतें सस्त्र कराय ॥७८॥
जीव अजीव पासे आणाय, आंणवणीक्रिया कहिवाय,
वीयारणीयाक्रिया जांण, फल मोटा वीदारें आण ॥७९॥
जिमतां भाणामांहि माखी मरइ, अणाभोगीक्रिया इम करइ,
जिण कीधइ लोकमां भूंडो थाय, अणवकंखीयाक्रिया कहिवाय ॥८०॥
अन्य पासे जे पाप कराय, अनापोगीक्रिया लगाय,
घण जननो मन एक ज थाय, सामुदाणीक्रिया भणाय ॥८१॥
मित्रादि अर्थे जे करइ कर्म, पेजवतीया एहनो मर्म,
अबोलणइ जे कर्म बंधाय, दोसवतीया ते कहिवाय ॥८२॥
अप्रमादीनें लागे जेह, ईरियावहीयाक्रिया तेह,
ए बेतालीस आश्रव द्वार, समदीठी छांडइ निरधार ॥८३॥

दुहो

भेद सतावन हवइ कहुं, संवरना जगसार,
मनसुध पालें प्रेमसुं, ते उतरे भवपार ॥८४॥

चोपइ

झुंसर प्रमाणें जोवे जेह, इर्यासुमति कहीए तेह,
सावद्य टालें निरवद्य उचरइ, भाषासुमति इणिपरि धरइ ॥८५॥
दोषरहित जें लीयें आहार, एषणासुमति कहीए जगसार,
लीयें-मुकें जयणायें करी, आदांननिखेपणा मन-चित्त धरी ॥८६॥
जीव जतन करी परीठावइ, परठावणि सुमति इम नवइ,
मनसाखे नवि करइ पाप, मनगुपति ते इणिपरि थाप ॥८७॥
सावद्यवचन बोलइ नही, वचनगुपति ते कहीए सही,
संवर राखे आंपणी काय, कायासुमति ते कहिवाय ॥८८॥
आरंभ न करे भुखां मरइ, क्षूधा परिसहो इणिपरि धरइ,
काचो पांणी न पीय लगार, तृस खमे तृषापरिसहे सार ॥८९॥
सीत परीसहें सीत ज खमे, अग्नि न वांछे काया दमे,
उश्न परीसहे लागे ताप, सनांन न वांछइ कहीए आप ॥९०॥

डांस-मंस परीसहो सही, डांस मसा उडाडइ नही
वस्त्र छतइ वस्त्र वांछइ नही, अचेलपरीसो कहीए सही ॥९१॥
अरतिपरीसहो मन उद्वेग, स्त्री देखी आंणें संवेग,
चर्यापरीसहें वीहार ज करइ, कष्ट सहें मन धीरज धरइ ॥९२॥
सझायभूमि डोलइ नही, नसीयापरीसह एहज सही,
रूडो भूडो स्थानक नवि कहे, सेज्यापरीसहो निसदिन सहै ॥९३॥
कडुया वचन अहियासे जेह, अक्रोसपरीसह कहीए तेह,
मारता कुटतां खिमा करइ, वधपरीसहो इणिपरि धरइ ॥९४॥
भीक्षा मांगतां न करे अभिमांन, जाचनापरीसो इणिविध जांन,
अणलाधे दीनज नवि थाय, अलाभपरीसो ते कहिवाय ॥९५॥
रोग आव्यें उषध नवि करइ, रोगपरीसहो इणिपरि धरइ,
डांभ तरणांनो फरसज सहें, तणफासपरिसो इणिविध कहें ॥९६॥
दीलनो मेंल उतारें नही, मलपरीसो कहीए सही,
आदर देखी न करे अभिमांन, सतकारपरीसो एहज जांन ॥९७॥
भण्या गुण्यानो गर्व नवि करइ, परीगन्यापरीसहो इणिपरि धरइ,
भणतां नावें तव दीन नवि थाय, अनांणपरीसो ए कहिवाय ॥९८॥
समकितथी नवि डोले जेह, समकिंत परीसहो कहीए तेह,
क्षांति क्षमा जे क्रोध नवि करइ, आर्जवपणो अभिमांन नवि धरइ ॥९९॥
मुत्ती ते लोभनो परिहार, तप छ भेदे कहीयो सार,
संजम सत्तर भेदे आंण, सत्य सांचो बोलेवो जांण ॥१००॥
जेणि क्रिया कर्म लागै नही, शौचपणो ते कहीए सही,
अकिंचनपणें धन न रखाय, नव वाडि सहीत ब्रह्मचर्य कहिवाय ॥१०१॥
दसविध यतीधर्म कह्यो सार, चालीसमो ए संवरद्वार,
बार प्रकारे भावना कही, पांच प्रकारे चारित ग्रही ॥१०२॥
सतावन भेदे संवरद्वार, श्रावक ते धारे निरधार,
छ भेदे तप बाह्य ज कह्यो, छ भेदे अभिंतर लह्यो ॥१०३॥
बारे भेदे निर्जरा सार, पाले ते उतरें भवपार,
अणसण छठ अठमादि करइ, अणोदरी पेट पूरो नवि भरइ ॥१०४॥

वृतसंक्षेप कह्यो तप सार, सचितद्रव्य करें परिहार,
रसत्याग जे आंबिल करे, कायक्लेस आतापना धरे ॥१०५॥
आंगोपांग संवरीने रह्यो, सलीनतातप तिणनें कह्यो,
दुषण लागे प्रायछित धरइ, ज्ञांनी गुरुनो विनय करइ ॥१०६॥
गुरूनें आणी आपें आहार, वीयावचतप कह्यो सार,
मन वचन ठांम राखी काय, पांच प्रकारें करो सज्झाय ॥१०७॥
सू(शु)कलध्यांन धर्मध्यांन ज धरो, कर्म खपावा काउसग्ग करो,
बार प्रकार नीरजरा कही, पांचमें आगमें गुरमुखथी लही ॥१०८॥
प्रकृतिबंधनो एह प्रस्ताव, रूडो पाडुयो होय सभाव,
स्थितबांधी करमें जेतली, ते सही जीव भोगवें तेतली ॥१०९॥
अनुभाग रूप रस केलवो, प्रदेस कर्मना दल मेलवो,
ए बंधना च्यार प्रकार, टाले ते भव पामें पार ॥११०॥
मोक्षतत्व ते नवमो द्वार, तेह तणो कहुं अधिकार,
छतो पद ते मोक्षज सही, आकासकुसमनी परिं नही ॥१११॥
बीजें भेदें द्रव्यप्रमांण, मोक्ष विषे सिद्ध केतला जांणि,
जीवद्रव्य सिद्धना अनंत, एहवी वात कही भगवंत ॥११२॥
सिद्धखेत्र ते केतलो होय, सिद्ध रह्या अवगाही जोय,
असंख्यातमे भागे लोकनें जांण, सिद्ध रह्या एक अनंता मान ॥११३॥
स्फर्शना द्वार ते चोथो कह्यो, सिद्ध केतलो खेत्र फरसी रह्यो,
क्षेत्र थकी मांनो निरधार, झाझेरो ते स्फर्शना सार ॥११४॥
सिद्धने हुयो केतलो काल, ते भाख्यो छे दीनदयाल,
एक सिद्ध आश्री सादि अनंत, सहु आश्री अनादि अनंत ॥११५॥
छठो कह्यो सिद्ध अंतर द्वार, सिद्ध सिद्धमां अंतर सार,
सिद्ध सिद्धमां अंतर नांहि, सिद्ध रह्यो छै माहोमांहि ॥११६॥
भाग द्वार सातमो वखांण, केतमें भागे सिद्ध रह्या जांण,
संसारी ते सघला जीव, अनंतमें भागें सीध सदैव ॥११७॥
आठमा द्वार तणो प्रस्ताव, सिद्ध रह्या छै केहवि भाव,
ज्ञांन दर्शन छे क्षायिकभाव, जीव पणो परिणामकभाव ॥११८॥

जीव फीटी अजीव न थाय, अजीव फरीनें जीव न कहाय,
भव्य टलीनें अभव्य न होय, अभव्यपणो टली भव्य न जोय ॥११९॥
परणामिकभाव ए जाणवो, जांणीनइ समकित आंणवो,
समकित पांमें सुख अनंत, इणिपरि भाख्यो श्रीभगवंत ॥१२०॥
अल्पबहुत्व ते सिद्धज तणा, किहां थोडा ने किहां घणा,
नपुंसकसिद्ध ते थोडा जांण, असंख्यातगुणा स्त्रीसिद्ध वखांण ॥१२१॥
स्त्रीसिद्धथी पुरूष ज जोय, असंख्यात गुणा सिद्ध अधिका होय,
एक समें सिद्ध केतला थाय, ति पण वात कही जिनराय ॥१२२॥
दस नपुंसकसिद्ध ज जांण, वीस ते स्त्रीसिद्ध वखांण,
एकसोआठ पूरषज कह्या, जिनवचनें आगमथी लह्या ॥१२३॥
बिसे बहोत्तर बोलज सार, आगमथी कीधो विस्तार,
नवतत्त्वनी चोपई एह, भणें गुणें सूख पांमे तेह ॥१२४॥
श्री**लूंकागच्छ**सिणगार, श्रीपूज्य **श्रीतेजसिंह** गणधार,
तास्स पाटिं विराजें सार, **कान्ह आचार्य** ज्युं दिनकार ॥१२५॥
तास शासनमाहें सोभता, **दांम मुंनीवर** पंडित हता,
तास्स शिष्य **ऋषि वरसिंहें** कह्या, ए बोल सिद्धांत थकी मइं ग्रह्या ॥१२६॥
संवत **सतरछासठे** उल्हास, नगर **कालावड** रह्या चोमास,
गांधी गोकल वीनती करी, **दांम मुनी शिष्यें** चितमें धरी ॥१२७॥

॥ इति श्रीनवतत्व चोपइ समाप्तः ॥ सं० १७६६ वर्षे
श्रावण सुदि ९ दिने लिखितं पूज्य ऋषि श्री ५ दांमाजी तस्य
शिष्य पूज्य ऋषि श्री ५ वरसंधजी तत् शिष्य ऋषि वालजी लपी
कृतः ॥ कालावडनगरे शुभं श्रेयमङ्गलं ॥
॥ खोटो अधिको उछो लिख्यानो मिछामिदुकडं ॥श्री॥

C/o. प्रसन्नचन्द्रस्मृति भवन,
तलाटी रोड,
पालीताणा

श्रीनवतत्त्व-विषयक संस्कृत-प्राकृत साहित्य

सं. मुनिसुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ

१	नवतत्त्व प्रकरण (मूळ)	अंबप्रसाद	(श्रावक)	–	१२२०	जीवाजीवापुण्णं...	५३
२	नवतत्त्व प्रकरण (मूळ)	देवगुप्तसूरि	कक्कसूरि	उपकेश	१२मी सदी	सच्चं च मोक्खबीअं...	१४
३	नवतत्त्व प्रकरण (मूळ)	मणिरत्नसूरि	विजयसिंह –सूरि	तपा	१३मी सदी	जीवाजीवापुन्नं	५५
४	नवतत्त्व प्रकरण (मूळ)	अज्ञात	–	–		जीवाजीवापुण्णं....	६०
५	नवतत्त्व कुलक	जयशेखरसूरि	महेन्द्रप्रभ	अंचल	१४मी सदी	जीवाजीवापुण्णं...	३६
६	नवतत्त्व प्रकरण टीका	अंबप्रसाद (श्रावक)			१२२०		
७	नवतत्त्व प्रकरण टीका	मानविजय					
८	नवतत्त्व प्रकरण (मूळ)	रत्नचन्द्र				प्रणम्य पाद	
९	नवतत्त्व प्रकरण (मूळ)	तेजसिंह	हर्ष				
१०	नवतत्त्व वृत्ति	देवेन्द्रसूरि	संघतिलक –सूरि	रुद्रपल्लीय	१५मी सदी		
११	” ”	कुलमण्डनसूरि	देवसुन्दर –सूरि	तपा	१४मी सदी		
१२	” ”	समयसुन्दरजी	सकल –चन्द्रजी	खरतर	१६८८		
१३	” ”	नेत्रसिंह					
१४	” ”	वीरसागर					

१५	''	''	अज्ञात					
१६	''	भाष्य	अभयदेवसूरि	जिनेश्वरसूरि	चन्द्र	१२मी सदी	भूयत्था इह अवितह भावा...	
१७	''	वार्त्तिक	रत्नलाभ उपा.	विवेकरत्न	खरतर	१८मी सदी		
१८	''	अवचूरि	साधुरत्नसूरि	देवसुन्दरसूरि	तपा	१४५६ आसपास	जयति श्रीमहावीर...	
१९	''	''	हर्षवर्धनसूरि	कनकोदय	खरतर	१७८५		
२०	''	''	शुभरत्नसूरि	देवसुन्दरसू.	तपा	१५मी सदी		
२१	''	''	गुणरत्नसूरि	''	''	''		
२२	''	''	मुनिविजय –गणि	शान्तिविजय –गणि	''			
२३	''	''	अज्ञात				वीरं विश्वेश्वरं	
२४	''	विवरण	यशोदेवसूरि	सिद्धिसूरि	उपकेश	११६५	मोक्षस्यादिमकारणं...	
२५	''	''	माणिक्यसु.सू.	मेरुतुङ्गसूरि	अंचल	१४८४–आसपास		
२६	''	''	प्रेममण्डनसूरि					
२७	''	''	अज्ञात					
२८	''	विचार	भावसागर					
२९	''	''	अज्ञात					१२८
३०	'' ''	सार	''					१२१
३१	'' ''	सारोद्धार	''					८

पद्यसाहित्य

१	नवतत्त्वनी चोपाई	अज्ञात	भावसागर	अंचल	१५७५	आदि नमी आणंदह पूरि...	५९
२	'' ''	आनन्दवर्धन	धनवर्धन	खरतर	१६०८आसपास		
३	'' ''	कमलशेखरसू.	लाभशेखर	अंचल	१६०९	सरसति सांमणि समरू माय...	६५
४	'' ढाल	हर्षसागर	विजयदानसूरि	तपा	१६२२आसपास	आदि जिणंद नमेवि ए...	१५३
५	'' जोडी/रास	वेलामुनि	''	''	''	'' '' '' ''	६५
६	'' रास	ऋषभदास	विजयसेनसूरि	''	१६७६	आदि धर्म जिणइ उद्धर्यो...	८११
७	'' चोपाइ	देवचन्द्र	भानुचन्द्र	''	१६९२ पूर्वे	सकल जिणेसर प्रणमी पाय...	२९६
८	'' विचार स्तवन	वृद्धिविजय	सत्यविजय	''	१७१३	सरसती सरसती सरसती देवी..	९५
९	'' रास	मानविजय	जयविजय	''	१७१८	प्रणमुं जिन चउवीसमो...	ढाळ-१५
१०	'' चोपाइ	हेमराज	लब्धिकीर्ति	खरतर	१७४७	श्रीश्रुतदेवता मनमें ध्याय...	८२
११	'' ''	वरसिंह	दाम	लोंका	१७६६	पास जिणेसर प्रणमी पाय...	१३१
१२	'' ''	भाग्यविजय	मणिविजय	तपा	''	श्रीअरिहंतना पाययुगल प्रणमी...	१६७
१३	'' ''	धर्मचन्द्र	हर्षचन्द्र	पार्श्वचन्द्र	१८०६	मङ्गलकरन हरन दुखदंद....	
१४	'' भाषा	निहालचन्द	''	''	१८०७	सादर सदगुरु प्रणम्य कर...	६५
१५	'' स्तवन	मयाचन्द	ऋद्धिवल्लभ	खरतर	१८१२	-	
१६	'' चोपाइ	भिक्खुजी		तेरापन्थी	१८६०आसपास	-	
१७	'' भाषा गर्भित स्तवन	ज्ञानसार	रत्नराज	खरतर	१८६१	नमस्कार अरिहंतनें...	३३
१८	'' विचार स्तवन	विवेकविजय	डुंगरविजय	तपा	१८७२	सरसतीनें प्रणमुं सदा...	ढाळ १३

१९	'' गरबो	चंदुलाल -न्हानचंद			२०मी सदी	बेनी बोलो ना तोये बोलावशुं रे..	
२०	'' वर्णनमय अभिनन्दन -जिनस्तवन	अमरचंद मावजी शाह				अभिनन्दन अभिनन्दन मारा...	
२१	'' चोपाइ	अमरविजय					
२२	'' ''	जिनदत्त				पढम चरण जिन हुं नमुं...	
२३	'' ''	ब्रह्म					
२४	'' ''	मेरूमुनि					
२५	'' ''	अज्ञात				नमुं वीर सासनधणी...	
२६	'' ''	''				मिच्छत अविरत प्रमाद है...	
२७	'' भाषा	''				परम निरंजन परम गुरू...	
२८	'' ''	''				चेतनवंत अनन्त गुण...	
२९	'' ''	''				श्रीश्रुतदेवी मनमें ध्याय...	
३०	'' वर्णन दुहा	''				-	
३१	'' स्तवन	लक्ष्मीकीर्ति				शान्ति जिणेसर सदगुरु शरण...	
३२	'' वर्णनमय सीमन्धर जिन स्तवन.	जीवनविजय				संप्रतिमां ते सीमन्धर तारक...	
३३	'' गर्भित स्तुति	मानविजय				जीवाजीवा पुण्य नें पावा...	४

बालावबोधसाहित्य

१	नवतत्त्व बालावबोध	सोमसुन्दरसूरि	देवसुन्दरसूरि	तपा.	१५०२		
२	'' ''	'' शिष्य	सोमसुन्दरसूरि	''	१६मी सदी		
३	'' ''	साधुकीर्त्ति	अमरमाणिक्य	खरतर	१७मी सदी	पार्श्वं नत्वा सुबोध...	
४	'' ''	पद्मचन्द्र	जिनचन्द्रसूरि	''	१७१७		
५	'' ''	सकलचन्द्रजी					
६	'' ''	अज्ञात			१७४८		
७	'' ''	–		खरतर	१७६१		
८	'' ''	पद्मचन्द्र शिष्य	पद्मचन्द्र	''	१७६६		
९	'' '' (?)	देवचन्द्र			१७६६	ज्ञानं पञ्चविधं....	
१०	'' ''	विमलकीर्ति	विमलतिलक	खरतर	१७मी सदी		
११	'' ''	उपा.रामविजय	दयासिंह	''	१८३९		
१२	'' ''	जिनोदयसूरि	जिनसागरसूरि	''	१८मी सदी		
१३	'' ''	मतिचन्द्र					
१४	'' ''	फतेचंद					
१५	'' ''	महीरत्न					
१६	'' ''	नयविमल					

१७	'' ''	अज्ञात				वन्दित्वा नन्दमानन्द....	
	(लेश प्रकाशक स्तव प्रदीप)						
१८	'' ''	''				हवे नवतत्वना नाम...	
१९	'' ''	''				जीवतत्व ते	
२०	'' ''	''				श्रीशङ्खेश्वर...	
२१	'' ''	''				पहिलुं जीवतत्व...	
२२	'' ''	''				जीवनइ दस प्राण...	
२३	'' ''	''				समकित विना ज्ञान...	
२४	'' ''	''				उत्तराध्ययन सूत्र...	
२५	'' ''	''				यथाभूत साची वस्तुनो...	
२६	'' ''	''				जीव कहेतां च्यार...	
२७	'' ''	''				जीवतत्व कणीने कहीजै...	
२८	'' ''	''				हवे विवेकी सम्यक्....	
२९	'' ''	लक्ष्मीवल्लभ			१७४७		

टबार्थ साहित्य

१	नवतत्त्व टबार्थ	मानविजय			१७७३	श्रीवीरजिनं नत्वा...	
२		जिनहंस			१७८४		
३		जिनराजसूरि	जिनहंससूरि		१७मी सदी		
४		शिवनिधान उ.	हर्षसार उपा.	खरतर	''	जेह नमुं जे माहिलो....	
५		जिनरङ्गसूरि	जिनराजसूरि	खरतर	१८मी सदी		
६		लालचंद				अरिहंतादिक पंच...	
७		रङ्गविजय					
८		मेरुविमल				जीवनुं स्वरूप ते...	
९		उत्तमविजय					
१०		नित्यविजय				जयति श्रीमहावीर...	
११		हितरुचि				जीवतत्व अजीवतत्त्व...	
१२		श्रावक दलपतराम				–	
१३		पार्श्वचन्द्र	साधुरत्नसूरि	सौधर्मगच्छ	१६मी सदी	साचउ वस्तुनउ स्वरूप...	
१४		रूपचंद				वीतरागं नमस्कृत्य....	
१५		लालकुशल				श्रीगुरूणां प्रसादेन...	
१६		पद्महर्ष				श्रीपार्श्वदेवं...	

१७		अज्ञात				यथावस्थित साचुं जे...	
१८		अज्ञात				जैनमतनइं विषइं....	
१९		अज्ञात				जीवति प्राणान्...	
२०		अज्ञात				चेतना सहित ते जीव...	
२१		अज्ञात				जीवतत्त्व प्राणधरें...	
२२		अज्ञात				नत्वा देवार्यदेवेश...	
२३		अज्ञात				जीवतत्व अजीवतत्व...	
२४		अज्ञात				प्रणम्य पार्श्वनाथं...	
२५		अज्ञात				जीवतत्व जे मांहि...	
२६		अज्ञात				भव्यप्राणीइं समकित...	
२७		अज्ञात				जीवतत्व जे प्राणनइं...	
२८		अज्ञात				तत्र प्रथम जीव...	

अन्य साहित्य

१	नवतत्त्व बोल	विनीतसागर				–	
२	'' ''	अज्ञात				जीव रूपी के अरूपी...	
३	'' ''	अज्ञात				ज्ञानना रागी समकित दृष्टि...	
४	'' ''	अज्ञात				५६३ भेद जीवना...	
५	'' ''	अज्ञात				अब जीवद्रव्य की पहिचान करावे है....	
६	'' ''	अज्ञात				–	
७	'' २७६ बोल	अज्ञात				जीवतत्व अजीवतत्व...	
८	'' भेद	अज्ञात					
९	'' ''	अज्ञात					
१०	'' ''	अज्ञात					
११	'' २४ भेद	अज्ञात					
१२	'' भेद विचार	अज्ञात					
१३	'' विचार	परमसौभाग्य				सम्यग्दृष्टिने जे बोल....	
१४	'' ''	अज्ञात				नवतत्वमांहि रूपी केटला...	
१५	'' ''	अज्ञात				विवेकी सम्यग्दृष्टि जीवोए...	

१६	'' ''	अज्ञात				समकित विना ज्ञान न काम आवे...	
१७	'' ''	अज्ञात				नवतत्व नाम-जीव	
१८	'' ९ द्वार विचार	अज्ञात				मूल लक्षणद्वार...	
१९	'' १३ द्वार विचार	अज्ञात				जैनानां हि नवतत्वा-नवपदार्था..	
२०	'' १३ '' ''	अज्ञात				जीव चेतन १ अजीव अचेतन	
२१	'' थोकडो	अज्ञात				हवे विवेकी सम्यग्दृष्टि जीवनें नवपदार्थ....	
२२	'' ''	अज्ञात				जीवतत्त्व-जे चेतना...	
२३	'' ''	अज्ञात				-	
२४	'' अर्थ	मालविजय				-	
२५	'' वचनिका	टीकमजी				अथ ९ पदार्थना २४ द्वार कहे छे...	
२६	'' चौभङ्गी स्वरूप	अज्ञात				-	
२७	'' भेदनाम	अज्ञात				जीवतत्व चेतनालक्षणो...	
२८	'' यन्त्र	सुमतिवर्धन		खरतर		जीवद्रव्य प्राण चेतन....	
२९	'' वचनिका	पन्नालाल चौधरी					

जैन कथा साहित्य : एक समीक्षात्मक सर्वेक्षण

प्रो. सागरमल जैन

कथा साहित्य का उद्‌भव उतना ही प्राचीन है, जितना इस पृथ्वी पर मानव का अस्तित्व । चाहे साहित्यिक दृष्टि से कथाओं की रचना कुछ परवर्ती हो, किन्तु कथा-कथन की परम्परा तो बहुत पुरानी है । कथा साहित्य के लिए अंग्रेजी में Narrative literature शब्द प्रचलित है, अतः आख्यान या रूपक के रूप में जो भी कहा जाता है या लिखा जाता है, वह सभी कथा के अन्तर्गत आता है । सामान्य अर्थ में कथा वह है जो कही जाती है । किन्तु जब हम कथा साहित्य की बात करते हैं, तो उसका तात्पर्य है, किसी व्यक्ति या वस्तु के सम्बन्ध मे कथित या लिखित रूप में जो भी हमारे पास है, चाहे वह किसी भी भाषा में हो, कथा के अन्तर्गत आता है । यह सत्य है कि पूर्व में कथाओं को कहने की परम्परा मौखिक रूप में रही है, बाद में उन्हें लिखित रूप दिया गया । दूसरे शब्दों में पूर्व में कथाएं श्रुत परम्परा से चलती रही है, बाद में ही उन्हें लिखित रूप दिया गया है, यह बात जैन कथा साहित्य के सन्दर्भ में भी सत्य है । जैन परम्परा में भी कथाएं पहले अनुश्रुति के रूप में ही चलती रही है और यही कारण है कि लौकिक परम्पराओं के आधार पर उनमें समय-समय पर संक्षेपण, विस्तारण, परिशोधन, परिवर्तन एवं सम्मिश्रण होता रहा है । उनका स्वरूप तो उस समय स्थिर हुआ होगा, जब उन्हें लिखित स्वरूप प्रदान कर पुस्तकारूढ़ किया गया होगा ।

मौखिक परम्परा के रूप में इन कथाओं ने समग्र भूमण्डल की यात्राएं की है और उनमें विभिन्न धर्मों एवं सामाजिक संस्कृतियों के माध्यम से आंशिक परिवर्तन और परिवर्धन भी हुआ है । विभिन्न देशों में प्रचलित कथाओं में भी आंशिक साम्य और आंशिक वैषम्य देखा जाता है, हितोपदेश और ईसप की कथाएं इसका प्रमाण है । जैन कथाओं में भी इन लोक-कथाओं के अनेक आख्यान सम्मिलित हो गये है, जैसे- शेख चिल्ली की कथा । यहां यह भी ज्ञातव्य है कि इन कथाओं के पात्र देव, मनुष्य और पशु पक्षी सभी रहे हैं । जहां तक जैन कथाओं का प्रश्न है उनके भी मुख्य

पात्र देव, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सभी देखे जाते है । जैन कथाओं में जैन लेखकों के द्वारा तो देवों एवं मनुष्यों के साथ-साथ पशु-पक्षी ही नहि, वृक्षों और फूलों को भी रूपक बनाकर कथाओं को प्रस्तुत किया जाता रहा है। आचाराङ्ग एवं ज्ञाताधर्मकथा में कछुए की रूपक कथा के साथ-साथ सूत्रकृताङ्ग में कमल को भी रूपक बनाकर भी कथा वर्णित है । लोक परम्परा में प्रेमाख्यान के रूप में हिन्दी में तोता-मैना की कहानियां आज भी प्रचलित है, किन्तु ऐसे प्रेमाख्यान जैन परम्परा में नहीं हैं । उसमें पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, फल-फूल आदि के रूपक भी तप-संयम की प्रेरणा के हेतु ही है।

जैन कथा साहित्य का सामान्य स्वरूप

यहां यह भी ज्ञातव्य है कि जब भी हम जैन कथा-साहित्य की बात करते है वह बहु-आयामी और व्यापक है । रूपक, आख्यानक, संवाद, लघुकथाएं, एकांकी, नाटक, खण्ड काव्य, चरितकाव्य और महाकाव्य से लेकर वर्तमान कालीन उपन्यास शैली तक की सभी कथा-साहित्य की विधाएँ उसके अन्तर्गत आ जाती है । आज जब हम जैन कथा-साहित्य की बात करते है, तो जैन परम्परा में लिखित इन सभी विधाओं का साहित्य इसके अन्तर्गत आता है । अतः जैन कथा साहित्य बहुविध और बहु-आयामी है।

पुनः यह कथा साहित्य भी गद्य, पद्य और गद्य-पद्य मिश्रित अर्थात् चम्पू इन तीनों रूपों में मिलता है । मात्र इतना ही नहीं वह भी विविध भाषाओं और विविध कालों में लिखा जाता रहा है ।

जैन साहित्य में कथाओं के विविध प्रकार

जैन आचार्यों ने विविध प्रकार की कथाएं तो लिखीं, फिर भी उनकी दृष्टि विकथा से बचने की ही रही है । दशवैकालिकसूत्र में कथाओं के तीन वर्ग बताये गये है – अकथा, कथा और विकथा । उद्देश्यविहीन, काल्पनिक और शुभाशुभ की प्रेरणा देने से भिन्न उद्देश्यवाली कथा को अकथा कहा गया है । जबकि कथा नैतिक उद्देश्य से युक्त कथा है । और विकथा वह है, जो विषय-वासना को उत्तेजित करे । विकथा के अन्तर्गत जैन आचार्यों ने राजकथा, भातकथा, स्त्रीकथा और देशकथा को लिया है । कही-कहीं राजकथा के स्थान पर अर्थकथा और स्त्रीकथा के स्थान पर कामकथा का

भी उल्लेख मिलता है ।

दशवैकालिक में अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा और मिश्रकथा- ऐसा भी एक चतुर्विध वर्गीकरण मिलता है और वहां इन कथाओं के लक्षण भी बताये गये है । यह वर्गीकरण कथा के वर्ण्य विषय पर आधारित है । पुनः दशवैकालिक में इन चारों प्रकार की कथाओं में से धर्मकथा के चार भेद किये गये हैं । धर्मकथा के वे चार भेद है – आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेगिनी और निर्वेदनी । टीका के अनुसार पापमार्ग के दोषों का उद्‌भावन करके धर्ममार्ग या नैतिक आचरण की प्रेरणा देना आक्षेपणी कथा है । अधर्म के दोषों को दिखाकर उनका खण्डन करना विक्षेपणी कथा है । वैराग्यवर्धक कथा संवेगिनी कथा है । एक अन्य अपेक्षा से दूसरो के दुःखों के प्रति करुणाभाव उत्पन्न करनेवाली कथा संवेगिनी कथा है । जबकि जिस कथा से समाधिभाव और आत्मशांति की उपलब्धि हो या जो वासना और इच्छाजन्य विकल्पों को दूर कर निर्विकल्पदशा में ले जाये वह निर्वेदनी कथा है । ये व्याख्याएं मैंने मेरी अपनी समज के आधार पर की है । पुनः धर्मकथा के इन चारों विभागों के भी चार-चार उपभेद किये गये है किन्तु विस्तार भय से यहां उस चर्चा में जाना उचित नहीं होगा । यहां मात्र नाम निर्देश कर देना ही पर्याप्त होगा ।

(अ) आक्षेपनी कथा के चार भेद है - १. आचार २. व्यवहार ३. प्रज्ञप्ति और ४. दृष्टिवाद.

(ब) विक्षेपनी कथा के चार भेद है – १. स्वमत की स्थापना कर, फिर उसके अनुरूप परमत का कथन करना. २. पहले परमत का निरूपण कर, फिर उसके आधार पर स्वमत का पोषण करना. ३. मिथ्यात्व के स्वरूपकी समीक्षा कर फिर सम्यक्त्व का स्वरूप बताना और ४. सम्यक्त्व का स्वरूप बताकर फिर मिथ्यात्व का स्वरूप बताना ।

(स) संवेगिनी कथा के चार भेद है – १. शरीर की अशुचिता, २. संसार की दुःखमयता और ३. संयोगो का वियोग अवश्यभावी है – ऐसा चित्रण कर ४. वैराग्य की ओर उन्मुख करना ।

(द) निर्वेदनी कथा का स्वरूप है – आत्मा के अनन्त चतुष्टय का

वर्णन कर व्यक्ति में ज्ञाता दृष्टाभाव या साक्षीभाव उत्पन्न करना ।

विभिन्न भाषाओं में रचित जैन कथा साहित्य

भाषाओं की दृष्टि से विचार करें तो जैन कथा साहित्य प्राकृत, संस्कृत, कन्नड, तमिल, अपभ्रंश, मरूगुर्जर हिन्दी, मराठी, गुजराती और क्वचित् रूप में बंगला में भी लिखा गया है । मात्र यही नहीं प्राकृत और अपभ्रंश में भी उन भाषाओं के अपने विविध रूपों में वह मिलता है । उदाहरण के रूप में प्राकृत के भी अनेक रूपों यथा अर्धमागधी, जैन शौरसेनी, महाराष्ट्री आदि में जैन कथा साहित्य लिखा गया है और बहुत कुछ रूप में आज भी उपलब्ध है । गुणाढ्य ने अपनी बृहत्कथा पैशाची प्राकृत में लिखी थी, यद्यपि दुर्भाग्य से आज वह उपलब्ध नहीं है । आज जो जैन कथा साहित्य विभिन्न प्राकृत-भाषाओं में उपलब्ध है उनमें सबसे कम शौरसेनी में मिलता है । उसकी अपेक्षा अर्धमागधी या महाराष्ट्री प्रभावित अर्धमागधी मे अधिक है । क्योंकि उपलब्ध आगम और प्राचीन आगमिक व्याख्याएं इसी भाषा में लिखित हैं । महाराष्ट्री प्राकृत में जैन कथा साहित्य उन दोनों भाषाओं की अपेक्षा भी विपुल मात्रा में प्राप्त होता है और इसके लेखन में श्वेताम्बर जैनाचार्यो एवं मुनियों का योगदान अधिक है । दिगम्बर आचार्यों की रुचि अध्यात्म और कर्म साहित्य में अधिक रही । फलतः भगवती आराधना में संलेखना के साधक कुछ व्यक्तियों के नाम निर्देश को छोड़कर उसमें अधिक कुछ नहीं मिलता है । यद्यपि कुछ जैन नाटकों में शौरसेनी का प्रयोग अवश्य देखा जाता है, इस परम्परा में हरिषेण का बृहत्कथाकोश ही एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जा सकता है । इसके अतिरिक्त आराधना कथाकोश भी है । अर्धमागधी और अर्धमागधी और महाराष्ट्री के मिश्रित रूप वाले आगमों और आगमिक व्याख्याओं में जैन कथाओं की विपुलता है, किन्तु उनकी ये कथाएं मूलतः चरित्र-चित्रण रूप तथा उपदेशात्मक ही है, साथ ही वे नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास करने की दृष्टि से लिखी गई है । आगमिक व्याख्याओं में निर्युक्ति साहित्य में मात्र कथा का नाम-निर्देश या कथा-नायकके नाम का निर्देश ही मिलता है । इस दृष्टि से निर्युक्तियों की स्थिति भगवती आराधना के समान ही है, जिनमें हमें कथा निर्देश तो मिलते है, किन्तु कथाएं नहीं

है । कथाओं का विस्तृत रूप भाष्यों की अपेक्षा भी चूर्णि या टीका साहित्य में ही अधिक मिलता है । चूर्णियां जैन कथाओं का भण्डार कही जा सकती है । चूर्णि साहित्य की कथाएं उपदेशात्मक तो है ही, किन्तु वे आचारनियमों के उत्सर्ग और अपवाद की स्थितियों को स्पष्ट करने की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है । किन परिस्थितियों मे कौन आचरणीय नियम अनाचरणीय बन जाता है इसका स्पष्टीकरण चूर्णी की कथाओं में ही मिलता है । इसी प्रकार विभिन्न परिस्थितियों में किस अपराध का क्या प्रायश्चित्त होगा, इसकी भी सम्यक् समझ चूर्णियों के कथनकोंसे ही मिलती है । इस प्रकार चूर्णीगत कथाएं जैन आचारशास्त्र की समस्याओंके निराकरण में दिशा-निर्देशक है।

जहां महाराष्ट्री प्राकृत के कथा साहित्य का प्रश्न है, यह मुख्यतः पद्यात्मक है और इसकी प्रधान विधा खण्डकाव्य, चरितकाव्य और महाकाव्य है । यद्यपि इसमें धूर्ताख्यान जैसे कथापरक एवं गद्यात्मक और भी उपलब्ध होते है । इस भाषा में सर्वाधिक कथा साहित्य लिखा गया है और अधिकांशतः यह आज उपलब्ध भी है ।

प्राकृत के पश्चात् जैन कथा-साहित्य के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ संस्कृत भाषा में भी उपलब्ध होते हैं । दिगम्बर परम्परा के अनेक पुराण, श्वेताम्बर परम्परा में हेमचन्द्र का त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र आदि अनेक चरित्र काव्य संस्कृत भाषा में लिखे गये है । इसके अतिरिक्त जैन नाटक और दूतकाव्य भी संस्कृत भाषा में रचित है । दिगम्बर परम्परा में वराङ्गचरित्र आदि कुछ चरित्रकाव्य भी संस्कृत में रचित है । ज्ञातव्य है कि आगमों पर वृत्तियां और टीकाएं भी संस्कृत भाषा में लिखी गई है । इनके अन्तर्गत भी अनेक कथाएं संकलित है । यद्यपि इनमें अधिकांश कथाएं वही होती है जो प्राकृत आगमिक व्याख्याओं में संग्रहित है । फिर भी ये कथाएं चाहे अपने वर्ण्य विषय की अपेक्षा से समान हो, किन्तु इनके प्रस्तुतीकरण की शैली तो विशिष्ट ही है । उस पर उस युग के संस्कृत लेखकों की शैली का प्रभाव देखा जाता है । इसके अतिरिक्त अनेक प्रबन्ध ग्रन्थ भी संस्कृत मे लिखित है ।

संस्कृत के पश्चात् जैन आचार्यों का कथा-साहित्य मुख्यतः अपभ्रंश और उसके विभिन्न रूपों में मिलता है । किन्तु यह ज्ञातव्य है कि अपभ्रंश

में भी मुख्यतः चरितकाव्य ही विशेष रूप से लिखे गये है । स्वयम्भू आधि ने अनेक लेखकों ने चरित काव्य भी अपभ्रंश में लिखे है – जैसे पउमचरिउ आदि ।

भाषाओं की अपेक्षा से अपभ्रंश के पश्चात् जैनाचार्यों ने मुख्यतः मरू गुर्जर अपनाया । कथासाहित्य की दृष्टि से इसमें पर्व कथाएं एवं चरितनायकों के गुणों को वर्णित करने वाली छोटी-बड़ी अनेक रचनाएं मिलती है । विशेष रूप से चरितकाव्य और तीर्थमालाएं मरूगुर्जर में ही लिखी गई है । तीर्थमालाएं तीर्थों सम्बन्धी कथाओं पर ही विशेष बल देती है । चरित, चौपाई, ढाल आदि विशिष्ट व्यक्तियों के चरित्र पर आधारित होती है और वे गेय रूप में होती है । इसके अतिरिक्त इसमें 'रासो' साहित्य भी लिखा गया है जो अर्ध ऐतिहासिक कथाओं का प्रमुख आधार माना जा सकता है ।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में हिन्दी, गुजराती, मराठी और बंगला में भी जैन कथा साहित्य लिखा गया है । महेन्द्रमुनि (प्रथम), उपाध्याय अमरमुनिजी एवं उपाध्याय पुष्करमुनि जी ने हिन्दी भाषा में अनेक कथाएं लिखी है, इसमें महेन्द्रमुनिजीने लगभग २५ भागों में, अमरमुनिजी ने ५ भागों में और उपाध्याय पुष्करमुनिजी ने १४० भागों में जैन कथाएं लिखी है । एक भाग में भी एक से अधिक कथाएं भी वर्णित है । ये सभी कथाएं कथावस्तु और नायकों की अपेक्षा से तो पुराने कथानकों पर आधारित है, मात्र प्रस्तुतीकरण की शैली और भाषा मे अन्तर है । इसके अतिरिक्त उपाध्याय केवल मुनि जी और कुछ अन्य लेखकों ने उपन्यास शैली में अनेक जैन उपन्यास भी लिखे है । जहां तक मेरी जानकारी है वर्तमान में पाँच सौ से अधिक जैन कथाग्रन्थ हिन्दी में उपलब्ध है और इनमें भी कथाओं की संख्या तो सहस्राधिक होगी ।

हिन्दी के अतिरिक्त जैन कथा साहित्य गुजराती भाषा मे भी उपलब्ध है, विशेष रूप से आधुनिक काल के कुछ श्वेताम्बर आचार्यों और अन्य लेखकों ने गुजराती भाषा में अनेक जैन कथाएं एवं नवलकथाएं लिखी है। यद्यपि इस सम्बन्ध में मुझे विशेष जानकारी तो नहीं है फिर भी जो छुट-पुट जानकारी डॉ. जितेन्द्र बी. शाह से मिली है, उसके आधार पर इतना

तो कहा जा सकता है कि गुजराती भाषा मे जैन कथाओं पर लगभग तीन सौ से अधिक ग्रन्थ उपलब्ध है । गुजराती कथा लेखकों में रतिलाल देसाई, चुन्नीलाल शाह, बेचरदास दोशी, मोहनलाल धामी, विमलकुमार धामी, कुमारपाल देसाई, धीरजलाल शाह तथा आचार्य भद्रगुप्तसूरि, भुवनभानुसुरि, शीलचन्द्रसूरि, प्रद्युम्नसूरि, रत्नसुन्दरसूरि, चन्द्रशेखरसूरि आदि प्रमुख है । इसके साथ ही दिगम्बर परम्परा में भी कुछ कथा ग्रन्थ हिन्दी एवं मराठी मे लिखे गये है। इसके अतिरिक्त गणेशजी लालवानी ने बंगला में भी कुछ जैन कथाएं लिखी है।

जहां तक दक्षिण भारतीय भाषाओं का प्रश्न है तमिल, कन्नड में अनेक जैन कथा ग्रन्थ उपलब्ध है । इनमें तमिल ग्रन्थो में जीवनकचिन्तामणि, श्रीपुराणम् आदि प्रमुख है । इसके साथ कन्नड में भी कुछ जैन कथा ग्रन्थ है, इनमें 'आराधनाकथै' नामक एक ग्रन्थ है, जो आराधानाकथाकोश पर आधारित है । इस प्रकार हम देखते है कि जैन कथा साहित्य बहुआयामी होने के साथ-साथ विविध भाषाओं में भी रचित है । तमिल एवं कन्नड़ के साथ-साथ परवर्ती काल में तेलुगु, मराठी आदि में भी जैन ग्रन्थ लिखे गये है ।

विभिन्न कालखण्डों का जैन कथा साहित्य

कालिक दृष्टि से विचार करने पर हम पाते है कि जैन कथा साहित्य ई.पू. छठ्ठी शताब्दी से लेकर आधुनिक काल तक रचा जाता रहा है । इस प्रकार जैन कथा साहित्य की रचना अवधि लगभग सत्तावीस सौ वर्ष है । इतनी सुदीर्घ कालावधि में विपुल मात्रा में जैन आचार्यों ने कथा साहित्य की रचना की है । भाषा की प्रमुखता के आधार पर कालक्रम के विभाजन की दृष्टि से इसे निम्न पांच कालखण्डों मे विभाजित किया जा सकता है–

१. आगमयुग – ईस्वी पूर्व ६ ठी शती से ईसा की पाँचवी शती तक।

२. प्राकृत आगमिक व्याख्यायुग– ईसा की दूसरी शती से ईसा की ८ वी शती तक ।

३. संस्कृत टीका युग या पूर्वमध्ययुग– ईसा की ८ वी शती से १४ वीं शती तक ।

४. उत्तर मध्ययुग या अपभ्रंश एवं मरूगुर्जर युग– ईसा की १४ वीं शती से १८ वी शती तक ।

५. आधुनिक भारतीय भाषा युग – ईसा की १९वीं शती से वर्तमान तक ।

भारतीय इतिहास की अपेक्षा से इन पाँच कालखण्डों का नामकरण इस प्रकार भी कर सकते है – १. पूर्वप्राचीन काल २. उत्तरप्राचीन काल ३. पूर्वमध्य काल ४. उत्तरमध्य काल और ५. आधुनिक काल । इनकी समयावधि तो पूर्ववत् ही मानना होगी । यद्यपि कहीं-कहीं कालावधि मे ओव्हर लेपिंग (अतिक्रमण) है । फिर भी इन कालखण्डों की भाषाओं एवं विधाओं की अपेक्षा से अपनी-अपनी विशेषताएं भी है । आगे हम इन काल खण्डों के कथा साहित्य की विशेषताओं को लेकर ही कुछ चर्चा करेंगे–

प्रथम कालखण्ड मे मुख्यत: अर्धमागधी प्राचीन आगमों की कथाएँ आती है – ये कथाएँ मुख्यत: आध्यात्मिक उपदेशों से सम्बन्धित है और अर्धमागधी प्राकृत में लिखी गई हैं । दूसरे ये कथाएँ संक्षिप्त और रूपक के रूप में लिखी गई है । जैसे - आचाराङ्ग में शैवाल छिद्र और कछुवे द्वारा चाँदनी दर्शन के रूपक द्वारा सद्धर्म और मानवजीवन की दुर्लभता का संकेत है । सूत्रकृताङ्ग मे श्वेतकमल के रूपक से अनासक्त व्यक्ति द्वारा मोक्ष की उपलब्धि का संकेत है । स्थानाङ्गसूत्र में वृक्षों, फलों आदि के विविध रूपकों द्वारा मानव-व्यक्तित्व के विभिन्न प्रकारों को समझाया गया है । समवायाङ्ग के परिशिष्ट में चौवीस तीर्थङ्करों के कथासूत्रों का नाम-निर्देश है। इसी प्रकार भगवती में अनेक कथारूप संवादो के माध्यम से दार्शनिक समस्याओं के निराकरण है । इसके अतिरिक्त आचाराङ्ग के दोनों श्रुतस्कन्धों के अन्तिम भागों मे सूत्रकृताङ्ग के षष्टम अध्ययन में और भगवती में महावीर के जीवनवृत्त के कुछ अंशो को उल्लेखित किया गया है । इनके कल्पसूत्र और उसकी टीकाओं साथ तुलनात्मक अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि महावीर के जीवन के कथानकों में अतिशयों का प्रवेश कैसे-कैसे हुआ है ।

जैन कथासाहित्य की अपेक्षा से ज्ञाताधर्मकथा की कथाएँ अति

महत्त्वपूर्ण है, इसमें संक्षेप रूप से अनेक कथाएँ वर्णित है । प्रथम मेघकुमार नामक अध्ययन में वर्तमान मुनि जीवन के कष्ट अल्प है और उपलब्धियाँ अधिक है, यह बात समझायी गयी है । दूसरे अध्ययन में धन्ना सेठ द्वारा विजयचोर को दिये गये सहयोग के माध्यम से अपवाद में अकरणीय करणीय हो जाता है यह समझाया गया है । इसी प्रकार इसके सातवें अध्ययन में यह समझाया गया है कि योग्यता के आधार पर दायित्वों का विभाजन करना चाहिये । मयुरी के अण्डे के कथानक से यह समझाया गया है कि अश्रद्धा का क्या दुष्परिणाम क्या होता है । मल्ली के कथानक में स्वर्णप्रतिमा के माध्यम से शरीर की अशुचिता को समझाया गया है । कछुवे के कथानक के माध्यम से संयमी जीवन की सुरक्षा के लिए विषयों के प्रति उन्मुख इन्द्रियो के संयम की महत्ता को बताया गया है । उपासकदशा में श्रावकों के कथानकों के माध्यम से न केवल श्रावकाचार को स्पष्ट किया गया है, अपितु साधना के क्षेत्र में उपसर्गों में अविचलित रहने का संकेत भी दिया गया है । अंतकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा और विपाकदशा में विविध प्रकार की तप साधनाओं के स्वरूप को और उनके सुपरिणामों को तथा दुराचार के दुष्परिणामों को समझाया गया है ।

उपाङ्ग साहित्य में रायपसेनीयसुत्त में अनेक रूपकों के माध्यम से आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध किया गया है । इसी प्रकार उत्तराध्ययन, दशवैकालिक आदि में भी उपदेशप्रद कुछ कथानक वर्णित है । नन्दीसूत्र में औपपातिकी बुद्धि के अन्तर्गत रोहक की १४ और अन्य की २६ ऐसी कुल ४० कथाओं, वैनियकी बुद्धि की १५, कर्मजाबुद्धि की १२ और पारिणामिकी बुद्धि की २१ कथाओं इस प्रकार कुल ८८ कथाओं का नाम संकेत है । उसकी टीका मे इन कथाओं का विस्तृत विवेचन भी उपलब्ध होता है । किन्तु मूल ग्रन्थ में कथाओं के नाम संकेत से यह तो ज्ञात हो जाता है कि नन्दीसूत्र के कर्ता को उन सम्पूर्ण कथाओं की जानकारी थी । इस काल की जैन कथाएँ विशेष रूप से चरित्र चित्रण सम्बन्धी कथाएँ ऐतिहासिक कम और पौराणिक अधिक प्रतीत होती है । यद्यपि उनको सर्वथा काल्पनिक भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि उनमें वर्णित कुछ व्यक्ति ऐतिहासिक भी है ।

आगमयुग की कथाओं में कुछ चरितनायको के ही पूर्व जन्मों की चर्चा है। उनमें अधिकांश की या तो मुक्ति दिखाई गई है या फिर भावी जन्म दिखाकर उनकी मुक्ति का संकेत किया गया है । तीर्थङ्करों के भी अनेक पूर्वजन्मों का चित्रण इनमें नही है । समवायाङ्ग आदि में मात्र एक ही पूर्व भव का उल्लेख है। कहीं-कहीं जाति स्मरण ज्ञान द्वारा पूर्वभवों की चेतना की निर्देश भी किया गया है । आगमों में जो जीवनगाथाएँ वर्णित है, उनमें साधनात्मक पक्ष को छोड़कर कथाविस्तार अधिक नहीं है । कहीं-कहीं तो दूसरे किसी वर्णित चरित्र से समरूपता दिखाकर कथा समाप्त कर दी गई ।

आगमयुग के पश्चात् दूसरा युग प्राकृत आगमिक व्याख्याओं का युग है । इसे उत्तर प्राचीन काल भी कह सकते है । इसकी कालावधि ईसा की दूसरी-तीसरी शती से लेकर सातवीं शती तक मानी जा सकती है । इस कालावधि में जो महत्त्वपूर्ण जैन कथाग्रन्थ अर्धमागधी प्रभावित महाराष्ट्री प्राकृत में लिखे गये उनमें विमलसूरि का पउमचरियं, संघदासगणि की वसुदेवहिण्डी और अनुपलब्ध तरंगवई कहा प्रमुख है । इस काल की अन्तिम शती में यापनीय परम्परा में संस्कृत में लिखा गया वराङ्गचरित्र भी आता है। यह भी कहा जाता है कि विमलसूरि ने पउमचरियं (रामकथा) के समान ही हरिवंश चरियं के रूप में प्राकृत में कृष्ण कथा भी लिखी थी, किन्तु यह कृति उपलब्ध नहीं है । इन काल के इन दोनों कथाग्रन्थों की विशेषता यह है कि इनमें अवान्तर कथाएं अधिक है । इस प्रकार इन कथाग्रन्थों में कथाप्ररोह शिल्प का विकास देखा जा सकता है । इस काल के कथा ग्रन्थों में पूर्व भवान्तरो की चर्चा भी मिल जाती है ।

स्वतन्त्र कथाग्रन्थों के अतिरिक्त इस काल में जो प्राकृत आगमिक व्याख्याओं के रूप में निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णी साहित्य लिखा गया है उनमें अनेक कथाओं के निर्देश है । यद्यपि यहाँ यह ज्ञातव्य है कि निर्युक्तियों में जहाँ मात्र कथा संकेत है वहाँ भाष्य और चूर्णि में उन्हें क्रमशः विस्तार दिया गया है । धूर्ताख्यान की कथाओं का निशीथभाष्य में जहाँ मात्र तीन गाथाओं में निर्देश है, वही निशीथचूर्णि में ये कथाएँ तीन पृष्ठों में वर्णित है । इसी को हरिभद्र ने अधिक विस्तार देकर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना कर दी है।

इस काल के कथा साहित्य की विशेषता यह है कि इसमें अन्य परम्पराओं से कथावस्तुको लेकर उसका युक्ति-युक्त करण किया गया है, जैसे पउमचरियं मे रामचरित्र में सुग्रीव हनुमान को वानर न दिखाकर वानरवंश के मानवों के रूप चित्रित किया गया है । इसी प्रकार रावण को राक्षस न दिखाकर विद्याधर वंश का मानव ही माना गया है । साथही कैकयी, रावण आदि के चरित्र को अधिक उदात्त बनाया गया है । साथ ही धूर्ताख्यान की कथा के माध्यम से हिन्दू पौराणिक एवं अवैज्ञानिक कथाओं की समीक्षा भी व्यङ्गात्मक शैली में की गई है । राम और कृष्ण को स्वीकार करके भी उनको ईश्वर के स्थान पर श्रेष्ठ मानव के रूप में ही चित्रित किया गया है। दूसरे आगमिक व्याख्याओं विशेष रूप से भाष्यों और चूर्णियों में जो कथाएँ है, वे जैनाचार के नियमों और उनकी आपवादिक परिस्थितियों के स्पष्टीकरण के निमित्त है ।

जैन कथा साहित्य के कालखण्डों में तीसरा काल आगमों की संस्कृत टीकाओं तथा जैन पुराणों का रचना काल है । इसका कालावधि ईसा की ८ वीं शती से लेकर ईसा की १४ वीं शती मानी जा सकती है । जैन कथा साहित्य की रचना की अपेक्षा से यह काल सबसे समृद्ध काल है । इस कालावधि में श्वेताम्बर, दिगम्बर और यापनीय तीनों ही परम्पराओं के आचार्यों और मुनियों ने विपुल मात्रा में जैन कथा साहित्य का सृजन किया है । यह कथा साहित्य मुख्यतः चरित्र-चित्रण प्रधान है । यद्यपि कुछ कथा-ग्रन्थ साधना और उपदेश प्रधान भी है । जो ग्रन्थ चरित्र-चित्रण प्रधान है वे किसी रूप में प्रेरणा प्रधान तो माने ही जा सकते है । दिगम्बर परम्परा के जिनसेन (प्रथम) का आदिपुराण, गुणभद्र का उत्तरपुराण, रविषेण का पद्मचरित्र, जिनसेन द्वितीय का हरिवंश पुराण आदि इसी कालखण्ड की रचनाएँ है । श्वेताम्बर परम्परा में हरिभद्र की समराइच्चकहा, कौतूहल कवि की लीलावईकहा, उद्योतनसूरि की कुवलयमाला, सिद्धर्षि उपमितिभवप्रपञ्चकथा, शीलाङ्क का चउपन्नमहापुरिसचरियं, धनेश्वरसूरि का सुरसुन्दरीचरियं, विजयसिंहसूरि की भुवनसुन्दरीकथा, सोमदेव का यशस्तिलकचम्पू, धनपाल की तिलकमञ्जरी, हेमचन्द्र का त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, जिनचन्द्र की संवेगरङ्गशाला, गुणचन्द्र का

महावीरचरियं एवं पासनाहचरियं, देवभद्र का पाण्डवपुराण आदि अनेक रचनाएँ है । इस कालखण्ड में अनेक तीर्थङ्करों के चरित्र-कथानकों को लेकर भी प्राकृत और संस्कृत में अनेक ग्रन्थ लिखे गये है, यदि उन सभी का नाम निर्देश भी किया जाये तो आलेख का आकार बहुत बढ जावेगा । इस कालखण्ड की स्वतन्त्र रचनाएँ शताधिक ही होगी ।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि इस काल की रचनाओं में पूर्वभवों की चर्चा प्रमुख रही है । इससे ग्रन्थों के आकार मे भी वृद्धि हुई है, साथ ही एक कथा में अनेक अन्तर कथाएँ भी समाहित की गई है । इसके अतिरिक्त इस काल के अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थों और उनकी टीकाओं में भी अनेक कथाएँ संकलित की गई है – उदाहरण के रूप में हरिभद्र की दशवैकालिक टीका में ३० और उपदेशपद में ७० कथाएँ गुम्फित है । संवेगरङ्गशाला में १०० से अधिक कथाएँ है । पिण्डनिर्युक्ति और उसकी मलयगिरि की टीका में भी लगभग १०० कथाएँ दी गई है । इस प्रकार इस कालखण्ड में न केवल मूल ग्रन्थों और उनकी टीकाओं में अवान्तर कथाएँ संकलित है, अपितु विभिन्न कथाओं का संकलन करके अनेक कथाकोशों की रचना भी जैनधर्म की तीनों शाखाओं के आचार्यों और मुनियों द्वारा की गई है – जैसे - हरिषेण का ''बृहत्कथाकोश'', श्रीचन्द्र का ''कथा-कोश'', भद्रेश्वर की ''कहावली'', जिनेश्वरसूरिका ''कथा-कोष प्रकरण'' देवेन्द्र गणि का ''कथामणिकोश'', विनयचन्द्र का ''कथानक कोश'', देवभद्रसूरि अपरनाम गुणभद्रसूरि का ''कथारत्नकोष'', नेमिचन्द्रसूरि का ''आख्यानक मणिकोश'' आदि । इसके अतिरिक्त प्रभावकचरित्र, प्रबन्धकोश, प्रबन्धचिन्तामणि आदि भी अर्ध ऐतिहासिक कथाओ के संग्रहरूप ग्रन्थ भी इसी काल के हैं । इसी काल के अन्तिम चरण से प्रायः तीर्थों की उत्पत्ति कथाएँ और पर्वकथाएँ भी लिखी जानी लगी थी । पर्व कथाओं में महेश्वरसूरि की 'णाणपंचमीकहा' (वि.सं. ११०९) तथा तीर्थ कथाओं में जिनप्रभ का विविधतीर्थकल्प भी इसी कालखण्ड के ग्रन्थ है । यद्यपि इसके पूर्व भी लगभग दशवीं शती में ''सारावली प्रकीर्णक'' में शत्रुञ्जय तीर्थ की उत्पत्ति कथा वर्णित है । यद्यपि अधिकांश पर्व कथाएँ और तीर्थोत्पत्ति की कथाएँ उत्तरमध्यकाल में ही लिखी गई हैं ।

इसी कालखण्ड में हार्टल की सूचनानुसार ब्राह्मणपरम्परा के पञ्चतन्त्र की शैली का अनुसरण करते हुए पूर्णभद्रसूरि नामक जैन आचार्य ने भी पञ्चतन्त्र की रचना की थी ।

ज्ञातव्य है कि जहाँ पूर्व मध्यकाल में कथाएँ संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में लिखी गई, वही उत्तरमध्यकाल में अर्थात् ईसा की १६ वीं शती से १८ वीं शती तक के कालखण्ड में मरूगुर्जर भी कथा लेखन का माध्यम बनी है । अधिकांश तीर्थमाहात्म्य विषय कथाएँ, व्रत, पर्व और पूजा विषयक कथाएँ इसी कालखण्ड में लिखी गई है । इन कथाओं में चमत्कारों की चर्चा अधिक है । साथ ही अर्धऐतिहासिक या ऐतिहासिक रासो भी इसी कालखण्ड में लिखे गये है ।

इसके पश्चात् आधुनिक काल आता है, जिसका प्रारम्भ १९वीं शती से माना जा सकता है । जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके है यह काल मुख्यतः हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं में रचित कथा साहित्य से सम्बन्धित है । इस काल में मुख्यतः हिन्दी भाषा में जैन कथाएँ और उपन्यास लिखे गये । इसके अतिरिक्त कुछ श्वेताम्बर आचार्यों ने गुजराती भाषा को भी अपने कथा-लेखन का माध्यम बनाया । क्वचित् रूप में मराठी और बंगला में भी जैन कथाएँ लिखी गई । बंगला मे जैन कथाओ के लेखन का श्रेय भी गणेश ललवानी को जाता है । इस युग में जैन कथाओं और उपन्यासों के लेखन में हिन्दी कथा शिल्प को ही अपना आधार बनाया गया है । सामान्यतया जैन कथाशिल्प की प्रमुख विशेषता नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना ही रही है, अतः उसमें कामुक कथाओं और प्रेमाख्यानकों का प्रायः अभाव ही देखा जाता है । यद्यपि वज्जालग्गं तथा महाकाव्यों के कुछ प्रसंगों का छोड दे तो प्रधानता नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना की ही रही है । यद्यपि कथाओं को रसमय बनाने के हेतु कही-कहीं प्रेमाख्यानकों का प्रयोग तो हुआ है फिर भी जैन लेखकों को मुख्य प्रयोजन तो शान्तरस या निर्वेद की प्रस्तुति ही रहा है।

जैन कथाओं का मुख्य प्रयोजन :

जैन कथा साहित्य के लेखक के अनेक प्रयोजन रहे है, यथा-

१. जन सामान्य का मनोरञ्जन कर उन्हें जैन धर्म के प्रति आकर्षित करना ।

२. मनोरञ्जन के साथ-साथ नायक आदि के सद्‌गुणों का परिचय देना।

३. शुभाशुभ कर्मों के परिणामो को दिखाकर पाठकों को सत्कर्मों या नैतिक आचरण के लिए प्रेरित करना ।

४. शरीर की अशुचिता एवं सांसारिक सुखों की नश्वरता को दिखाकर वैराग्य की दिशा में प्रेरित करना ।

५. किन्ही आपवादिक परिस्थितियों में अपवाद मार्ग के सेवन के औचित्य और अनौचित्य को स्पष्ट करना ।

६. पूर्वभवों या परवर्तीभवों के सुख-दुःखों की चर्चा के माध्यम से कर्म सिद्धान्त की पुष्टि करना ।

७. दार्शनिक समस्याओं का उपयुक्त दृष्टान्त एवं संवादों के माध्यम से सहज रूप मे समाधान प्रस्तुत करना जैसे - आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि के रायपसेनीय के कथानक में राजा के तर्क और केशी द्वारा उनका उत्तर । इसी प्रकार क्रियमान कृत या अकृत है – इस सम्बन्ध में जमाली का कथानक और उसमें भी साड़ी जलने का प्रसंग ।

इस प्रकार हम देखते है कि जैन कथा साहित्य बहुउद्देशीय बहु आयामी और बहुभाषी होकर भी मुख्यतः उपदेशात्मक और आध्यात्मिक रहा है । उसका प्रमुख उद्देश्य निवृत्ति मार्ग का पोषण ही है । इस प्रकार वह सोद्देश्य और आध्यात्मिक मूल्यों का संस्थापक रहा है और लगभग तीन सहस्राब्दियों से निरन्तर रूप से प्रवाहमान है ।

संस्थापक निदेशक प्राच्यविद्यापीठ
दुपाड़ा रोड, शाजापुर (म.प्र.) ४६५००१

निह्नव रोहगुप्त, श्रीगुप्ताचार्य अने त्रैराशिकमत

मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय

प्राचीन काळे जे श्रमणो जैन परम्परामां ज दीक्षित होवा छतां जिनेश्वर भगवन्तोनो अने तेओनां वचनोनो तिरस्कार करनार थया तेओ 'निह्नव' तरीके ओळखाया हता. वीरनिर्वाणना सातमा सैका सुधीमां आवी 'निह्नव' तरीके ओळखाती कुल आठ व्यक्तिओ थई हती. जेमां छठ्ठा निह्नव तरीके रोहगुप्त गणाय छे.

रोहगुप्तनी निह्नव बनवानी घटना संक्षेपमां जोइअे तो – रोहगुप्त अन्तरञ्जिका नामनी नगरीमां बिराजमान श्रीगुप्ताचार्यने वन्दन करवा आवे छे. त्यां आगळ पोट्टशाल नामना मेली विद्याओना जाणकार परिव्राजकनुं वाद माटेनुं आह्वान स्वीकारी तेनो पराभव करे छे अने श्रीगुप्ताचार्ये आपेली विद्याओना बळे पोट्टशालनी मेली विद्याओनो पण ते नाश करे छे. आ वादमां जीतवा माटे तेमणे जैनदर्शनने मान्य नहीं अेवी जीव, अजीव अने नोजीव – एम त्रण राशिनी प्ररूपणा करी हती, माटे ते बदल श्रीगुप्ताचार्य तेमने माफी मांगवानुं जणावे छे, जेनो रोहगुप्त अभिमानवश अस्वीकार करे छे. अेटलुं ज नहीं, पण पोतानी वात साची ज हती तेवी ममत ते पकडी राखे छे. श्रीगुप्ताचार्य तेमने छ महिना सुधी समजावे छे, पण ते समजवा माटे बिलकुल तैयार न थतां तेमने 'निह्नव' तरीके जाहेर करी संघबहार मूके छे.[१]

आ घटना परथी अेटलुं तो स्पष्ट ज छे के रोहगुप्तथी श्रीगुप्ताचार्य श्रमणपर्यायमां ज्येष्ठ हता अने तेमने माटे श्रद्धेय पण हता. परन्तु रोहगुप्त श्रीगुप्ताचार्यना पोताना ज दीक्षाशिष्य हता के नहीं ते बाबतमां मतभेद छे. एक तरफ बन्ने वच्चे गुरु-शिष्यभाव हतो अेवी व्यापक प्रसिद्धि छे.[२] तो बीजी बाजु कल्पसूत्रगत स्थविरावली के जे प्रायः श्रीदेवर्द्धिगणिनी रचेली छे अथवा तो तेमना समयमां रचाई छे, तेमां रोहगुप्तने आर्य महागिरिना शिष्य तरीके ओळखाववामां आव्या छे.

१. घटनाना विस्तृत वर्णन माटे जुओ – वि.भाष्य – गाथा २४५१ थी आगळ

२. अन्तरञ्जिकायां पुर्यां भूतमहोद्यानस्थ-श्रीगुप्ताचार्यशिष्यो रोहगुप्तो...– कल्पकिरणावली

''थेरस्स णं अज्जमहागिरिस्स एलावच्चसगुत्तस्स इमे अट्ठ थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था । तं जहा- थेरे उत्तरे, थेरे बलिस्सहे, थेरे धणड्ढे, थेरे सिरिभद्दे, थेरे कोडिन्ने, थेरे नागे, थेरे नागमित्ते, **थेरे छड्डुलूए रोहगुत्ते कोसियगुत्ते णं । थेरेहिंतो णं छड्डुलूएहिंतो रोहगुत्तेहिंतो कोसियगुत्तेहिंतो तत्थ णं तेरासिया निग्गया ।**''

कल्पसूत्रनी सुबोधिका-टीकामां पण प्रस्तुत पाठनी व्याख्या दरमियान उपा. श्रीविनयविजयजीओ नीचे प्रमाणे टिप्पणी करी छे :

''यत्तु सूत्रे रोहगुप्त आर्यमहागिरिशिष्यः प्रोक्तः, उत्तराध्ययनवृत्ति-स्थानाङ्गवृत्त्यादौ तु श्रीगुप्ताचार्यशिष्यः प्रोक्तस्ततोऽस्माभिरपि तथैव लिखितं, तत्त्वं पुनर्बहुश्रुता विदन्ति ।''

जो के उपरनी टिप्पणीमां ''उत्तराध्ययनवृत्ति, स्थानाङ्गवृत्ति व. मां रोहगुप्तने श्रीगुप्ताचार्यना शिष्य जणाव्या छे'' अेम कह्युं छे ते वात पण थोडोक विचार मांगी ले छे.

स्थानाङ्गजीनी वृत्तिमां रोहगुप्तनो श्रीगुप्ताचार्य साथे शो सम्बन्ध हतो तेनो कोई ज उल्लेख नथी. फक्त 'श्रीगुप्ताचार्ये आम कह्युं' तेने बदले 'गुरुअे आम कह्युं' अेवा शब्दो प्रयोज्या छे. पण तेथी कंइ श्रीगुप्ताचार्य रोहगुप्तना गुरु ज हता अेवुं निश्चित न थई जाय. कारण के बे श्रमणोने लगती वातमां, तेओ परस्पर गुरु-शिष्य न होवा छतां, वडील माटे 'गुरु' शब्द प्रयोजवो अेवी प्राचीन परिपाटी छे. जेमके आर्य भद्रबाहु अने आर्य स्थूलिभद्र वच्चे गुरु-शिष्यभाव न होवा छतां अे बन्नेने लगती घटनाओमां भद्रबाहुस्वामी माटे 'गुरु' शब्द प्रयोजायेलो जोवा मळे[१] छे. कल्पकिरणावलीमां पण आर्यरक्षितना सम्बन्धमां भद्रगुप्तसूरि अने वज्रस्वामी गुरु न होवा छतां तेओने माटे 'गुरु' शब्द प्रयोजायो छे.

उत्तराध्ययनसूत्रनी श्रीशान्त्याचार्ये रचेली टीकामां तो रोहगुप्तने स्पष्टपणे श्रीगुप्ताचार्यना 'शिष्य' नहीं, पण 'श्राद्ध' (-पूज्यभाव धरावनारा) जणाववामां आव्या छे. ''तेसिं पुण सिरिगुत्ताणं थेराणं सड्ढी य रोहगुत्तो नाम ।'' (उत्त.

१. ''भणितो य णाहिं गुरू'' - तित्थोगाली - ७६०

नि.-१७२ नी टीका). जो के जेम अत्यारे मुद्रित प्रतोमां 'सङ्घी'ने सुधारीने 'सेहो' (-शिष्य) करवामां आव्युं छे, तेम श्रीविनयविजयजीनी सामे जे आदर्श रह्यो हशे तेमां 'सेहो' पाठ होई शके. पण जेसलमेर अने पाटणनी प्राचीन ताडपत्रीय प्रतोमां तो 'सङ्घी' ज पाठ छे.

टूंकमां, रोहगुप्त महागिरिजीना शिष्य न होय तो पण, ते श्रीगुप्ताचार्यना ज शिष्य हता ते नक्की करवुं अघरुं छे. बल्के उत्तराध्ययनवृत्तिगत उल्लेख परथी तो ते श्रीगुप्ताचार्यना स्थाने बीजा कोईना शिष्य होय ते नक्की थाय छे. माटे ओछामां ओछुं, स्थविरावलीगत रोहगुप्तना महागिरिजीना शिष्य होवाना प्रतिपादन परत्वे 'बीजे बधे तेमने श्रीगुप्ताचार्यना शिष्य कह्या छे' अे रीते वांधो लई शकाय नहीं. हा, आ प्रतिपादनथी रोहगुप्तना सत्तासमयनी विसंगति अवश्य सर्जाय छे, पण ते विशे विचारीअे ते पूर्वे बीजी अेक वात जोई लइअे.

स्थविरावलीकारे ज्यारे रोहगुप्तने महागिरिजीना शिष्य जणाव्या छे, त्यारे तेओने अेवा श्रीगुप्ताचार्यनो ख्याल होवो ज जोइअे के जे महागिरिजीना समकालीन अथवा अनुकालीन होय; कारण के रोहगुप्तने निह्नव तरीके जाहेर करनार श्रीगुप्ताचार्य छे. आ श्रीगुप्ताचार्य कोण होई शके ते विषे तपास करतां कल्प-स्थविरावलीमां ज तेनो जवाब मळी रहे छे. त्यां महागिरिजीना लघु गुरुबन्धु आर्यसुहस्तिसूरिना जे १२ पट्टशिष्योनां नाम जणावायां छे, तेमां अेक 'श्रीगुप्त' नाम पण छे.

> ''थेरे अ अज्जरोहणे, भद्दजसे मेहगणी य कामिड्ढी ।
> सुट्ठिय सुप्पडिबुद्धे, रक्खिय तह रोहगुत्ते य ॥
> **इसिगुत्ते** सिरिगुत्ते, गणी य बंभे गणी य तह सोमे ।
> दस दो अ गणहरा खलु, एए सीसा सुहत्थिस्स ॥''

आ श्रीगुप्ताचार्य हारितगोत्रीय अने चारणगणना आदिपुरुष छे.[१] बनी शके के तेओ रोहगुप्तना विद्यागुरु छे अेम स्थविरावलीकारना मनमां होय.

★

१. ''थेरेहिंतो णं सिरिगुत्तेहिंतो हारियसगुत्तेहिंतो इत्थ णं चारणगणे नामं गणे निग्गए'' - कल्प-स्थविरावली

महागिरिजीनो स्वर्गवास वीर नि.सं. २४५ मां थयो छे.[१] माटे निह्नव रोहगुप्त जो तेओना ज शिष्य होय तो तेमनो सत्तासमय वीरनिर्वाणनो त्रीजो सैको थाय. ज्यारे रोहगुप्तना निह्नव बनवानी घटना वीर नि.सं. ५४४मां बनी छे.[२] तो ५४४ मां अस्तित्व धरावनार रोहगुप्त त्रीजा सैकाना महागिरिजीना शिष्य कई रीते होई शके ? माटे रोहगुप्तना महागिरिजीना शिष्य होवाना स्थविरावलीगत प्रतिपादन परत्वे त्रण विकल्प सम्भवे छे :

१. रोहगुप्त वीर नि.सं. ५४४मां नहीं, पण त्रीजा सैकामां ज थया होय. आमे पांचमा निह्नव गाङ्गेय वीर नि.सं. २२८मां थया छे. माटे रोहगुप्त त्यार पछी गमे त्यारे थया होय तो पण तेमनो क्रमाङ्क छठ्ठो ज रहे छे.

पण आम बनवुं अेटले सम्भवित नथी के वीर नि.सं. २१५ थी २४५ महागिरिजी, २४६ थी २९१ सुहस्तिसूरिजी अने त्यारबाद सुस्थित-सुप्रतिबुद्ध संघनायक हता. तेथी तेमना समयमां जो आवी मोटी घटना बनवा पामी होत, तो संघनायक तरीके के अेक शास्त्रज्ञ श्रद्धेय पुरुष तरीके तेमने तेमां जोडावानुं अवश्य थयुं होत. पण आपणे जोइअे छीअे के रोहगुप्तना निह्नव बनवानी आखी घटनामां क्यांय तेमांथी कोईनुं नाम नथी. बल्के श्रीगुप्ताचार्य पोते ज रोहगुप्तने निह्नव तरीके जाहेर करे छे. ते दर्शावे छे के त्यारे श्रीसंघमां तेओनुं स्थान घणुं ऊंचुं हशे के जे वीर-निर्वाणना त्रीजा सैकामां सम्भवित नथी बनतुं.

वळी, ज्यां ज्यां आ घटनानो समय दर्शावायो छे ते बधे ज ठेकाणे वीर नि.सं. ५४४नो ज उल्लेख छे ते पण भूलवुं न जोइअे.

२. आ विसंगतिना निराकरणमां त्रिपुटी महाराजे जैन परम्परानो इतिहास-१, पृ. १४५ पर अेवुं सूचव्युं छे के स्थविरावलीमां महागिरिजीना जे आठ शिष्योनां नाम अपायां छे तेओने साक्षात् महागिरिजीना शिष्यो न समजतां महागिरिशाखाना क्रमशः पट्टधर समजवा जोइअे. तेथी रोहगुप्तनुं नाम आठमा

---

१. ''थूलभद्दे पणयालेवं दुपन्नरस । अज्जमहागिरि तीसं'' - युगप्रधानपट्टावली. स्थूलभद्रजी २१५मां स्वर्गवासी थया छे. अने त्यारबाद महागिरिजी ३० वर्ष युगप्रधानपदे रह्या छे अेवो आ पाठनो भाव छे.

२. ''पंचसया चोयाला तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स ।
पुरिमंतरंजियाए तेरासियदिट्ठी उप्पन्ना ।'' — वि. भाष्य २४५१

क्रमे होवाथी, तेमनुं अस्तित्व, अेक पेढीना ३५-४० वर्षना हिसाबे, आठमी पेढीअे सं. ५४४मां होय तेमां कोई आश्चर्य नथी. आ कल्पनाने आधारे ज तेओअे आ ग्रन्थमां अन्यत्र रोहगुप्तने स्थविर नागमित्रना दीक्षाशिष्य जणाव्या छे.

आ निराकरण अेटले योग्य नथी जणातुं के उपरोक्त ८ नामोमां पांचमुं नाम स्थविर कौडिन्यनुं छे. (जुओ पृष्ठ १४७) अेटले उपरनी कल्पनाना हिसाबे तेमने महागिरिजीनी पांचमी पेढीअे वीर-निर्वाणना चोथा सैकाना अन्तभागमां के पांचमानी शरुआतमां मूकवा पडे. हवे आ ज कौडिन्यना शिष्य अश्वमित्र चोथा निह्नव छे अने तेमना निह्नव बनवानी घटना वीर नि.सं. २२०मां मतलब के महागिरिजीनी हयातीमां बनेली छे.[१] तो अे अश्वमित्रना गुरु कौडिन्यने महागिरिजीनी पांचमी पेढीअे कई रीते गणी शकाय ? माटे त्रिपुटी महाराजे सूचवेलो रोहगुप्तने महागिरिजीनी आठमी पेढीअे गणवानो उकेल वाजबी लागतो नथी.

३. सौथी वाजबी उकेल तो अे जणाय छे के निह्नव रोहगुप्त अे प्रस्तुत महागिरिजीना पट्टधर स्थविर रोहगुप्तथी वास्तवमां जुदी ज व्यक्ति छे. पण नामसाम्य, कौशिकगोत्रनुं साम्य, बन्नेना काळमां अलग-अलग श्रीगुप्ताचार्यनुं अस्तित्व व. कारणोसर स्थविरावलीकारे बन्नेने अेक ज समजी लीधा लागे छे. आपणे इतिहास तपासीशुं तो नामसाम्यने लीधे अेक व्यक्तिने लगती घटना बीजी व्यक्तिना नामे चडी गई होय अेवा अनेक प्रसंगो जणाशे. उपाध्याय धर्मसागरजी जेवा बहुश्रुत भगवन्ते पण आर्य रक्ष अने आर्यरक्षित वच्चे नामनी थोडीक समानता सिवाय कशुं ज साम्य न होवा छतां बन्नेने अेक गणी लीधा होय[२] तो रोहगुप्तनी बाबतमां पण अेवुं बने तेमां कशुं आश्चर्य नथी.

वळी, इतिहासमां 'रोहगुप्त' नाम अेक करतां वधु व्यक्तिओनुं मळे छे. आर्य सुहस्तिसूरिजीना अेक मुख्य पट्टधरनुं नाम पण आर्य रोहगुप्त छे. (जुओ पृष्ठ १४८) के जेओ महागिरिजीना शिष्य आर्य रोहगुप्तथी जुदा छे. तो निह्नव

---

१. वि.भाष्य-गाथा २३८९-९०

२. ''थेरस्स णं अज्जनक्खत्तस्स... अज्जरक्खे थेरे अंतेवासी... ।'' कल्पसूत्रना आ पाठनी कल्पकिरणावलीगत व्याख्या - ''अज्जरक्खे त्ति । दशपुरनगरे पुरोहितः सोमदेवस्तद्भार्या सोमरुद्रा तस्यास्तनय आर्यरक्षितनामा...''

रोहगुप्त पण तेमनाथी जुदा ज होय अने स्थविरावलीकारे अनाभोगे तेओने अेक गणी लीधा होय तेम न बने ?

★

हवे आपणे श्रीगुप्ताचार्य अंगे थोडीक चर्चा करीशुं. दुस्समकालसमण-संघथयं, विचारश्रेणि जेवा ग्रन्थोमां भद्रगुप्तसूरिजी पछी अने वज्रस्वामी पहेलांना पट्टधरनुं नाम 'श्रीगुप्ताचार्य' जणाव्युं छे. युगप्रधानपट्टावलीमां तो तेमनो १५ वर्षनो युगप्रधानपर्याय पण जणाव्यो छे. परन्तु अेनी सामे कल्पसूत्रनी के नन्दिसूत्रनी स्थविरावली के जे इतिहास माटेना अत्यन्त प्राचीन अने प्रामाणिक साधन छे तेमां अने मध्यकालीन अमुक पट्टावलीओमां श्रीगुप्ताचार्यनो उल्लेख सुद्धां नथी. कथासाहित्यमां पण भद्रगुप्तसूरिजी बाद वज्रस्वामी संघनायक बन्या अेवुं ज वर्णन मळे छे. परिणामे उपरोक्त ग्रन्थोमां करायेला श्रीगुप्ताचार्यना युगप्रधान होवाना उल्लेखने अप्रामाणिक समजवामां आवे छे. अेटलुं ज नहीं, तेमना अस्तित्वने पण शंकाना दायरामां मूकवामां आवे छे.[१]

परन्तु, अेम करवुं योग्य नथी. कारण के जो रोहगुप्तने वीर नि.सं. ५४४मां निह्नव तरीके जाहेर करनार श्रीगुप्ताचार्य हता ते नक्की ज छे, तो वीर नि.सं. ५३५ के मतान्तरे ५३३मां स्वर्गवासी थयेला भद्रगुप्तसूरिजी पछी श्रीगुप्ताचार्य संघनायक बन्या हता ते वातनो इनकार करवानो रहेतो ज नथी. प्रश्न फक्त स्थविरावलीओमां तेमना अनुल्लेखनो ज छे. अने ते पण स्थविरावलीओने ध्यानथी तपासीअे तो अनुत्तरित रहेतो नथी.

आपणे त्यां जे पट्टावलीओ मळे छे ते मुख्यत्वे बे प्रकारनी छे : (१) गुरुपरम्परा- गणधरवंशने वर्णवती (२) वाचनाचार्यपरम्परा- वाचकवंशने वर्णवती.

गुरुपरम्पराने लगती पट्टावलीओमां सुधर्मास्वामीथी शरु करीने प्रायः पोताना गुरुभगवन्त सुधीनी शिष्य-प्रशिष्यपरम्परानुं वर्णन होय छे. तेथी परम्परामां नहीं आवता महापुरुषोनां नाम तेमां न नोंधाय ते स्वाभाविक छे. कल्पगत स्थविरावली पण देवर्द्धिगणिनी गुरुपरम्परा ज छे. अने माटे ज प्रचलित गुरुपट्टावलीओ करतां आ स्थविरावली आर्य वज्र पछी जुदी पडी

१. वीरनिर्वाणसंवत् और जैन कालगणना - पृष्ठ १३३ थी १३५

जाय छे. कारण के वर्तमान समग्र संघ आर्य वज्रना पट्टधर आर्य वज्रसेननी सन्तति छे, ज्यारे देवर्द्धिगणी आर्य वज्रना शिष्य आर्य रथनी परम्परामां छे. हवे आ गुरुपरम्परामां आर्य वज्रना दीक्षागुरु सिंहगिरिजी होवाथी, तेमना विद्यागुरु तरीके सर्वत्र प्रसिद्ध अेवा भद्रगुप्तसूरिजीनुं पण नाम न मळतुं होय, तो तेमां श्रीगुप्ताचार्यना उल्लेखनो तो सवाल ज क्यां रहे छे ?

वाचकवंश-पट्टावलीमां क्रमशः थयेला वाचनाचार्योनां नाम आपवामां आवे छे. आ वाचनाचार्यो संघनायक ज होय अे जरूरी नथी. हा, संघमां तेओनुं स्थान अवश्य आगळ पडतुं होय छे. अे ज रीते क्रमशः थयेला बे वाचनाचार्यो परस्पर गुरु-शिष्य होय ते पण जरूरी नथी. अेक वाचनाचार्यना स्वर्गवास बाद वर्तमान श्रमणसमुदायमां जे सौथी वधु श्रुतज्ञान धरावता होय तेमने वाचनाचार्य तरीके नियुक्त करवामां आवे छे. जेम के आर्य वज्र पछी वाचनाचार्य तरीके आर्यरक्षितनुं नाम मळे छे, के जे आर्य वज्रना त्रण मुख्य पट्टधरोथी जुदा छे.[१]

हवे, गुरुपरम्पराना वर्णनमां जेम श्रमणसंघना चोक्कस हिस्साना वडीलने ज ते जूथनी परम्परामां संघनायक तरीके वर्णववामां आवता होय छे, अने अे संघनायक सुधर्मास्वामीजीनी जेम समग्र संघनुं आधिपत्य न करता होय तो पण चोक्कस विभागना आधिपत्यने लीधे संघनायक ज गणाता होय छे, अने तेथी गुरुपट्टावलीओमां संघनायक-गुरुओनां नामोमां परस्पर घणो तफावत जोवा मळे छे; तेम वाचक परम्परामां पण मुख्य बे प्रवाह जोवा मळे छे. एक गणना अनुसार, मुख्यत्वे उत्तर-पूर्व भारतवर्षमां वर्तता श्रमणसंघना जे वाचनाचार्य बनता हता, ते वाचनाचार्य ते काळना उत्कृष्ट श्रुतधर न होय तो पण, ते क्षेत्रमां वर्तमान श्रमणसमुदायमां तेओ ज उत्कृष्ट श्रुतधर अने व्यापक प्रभाव धरावनार होवाथी, तेमने ज ते गणनामां मुख्य स्थान आपवामां आवतुं हतुं.[२] माथुरी

---

१. ''थेररस णं अज्जवइरस्स इमे तिन्नि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था । तं जहा- थेरे अज्ज वइरसेणिए, थेरे अज्ज पउमे, थेरे अज्ज रहे ।'' – कल्पस्थविरावली

२. प्रबन्ध, पट्टावली जेवा ऐतिहासिक ग्रन्थोमां गुणसुन्दर, रेवतिमित्र जेवा महान श्रुतधर भगवन्तोना जीवनने लगती घटनाओनो उल्लेख नथी मळतो. ते वस्तु सूचवे छे के आ भगवन्तोनुं विचरणक्षेत्र बहु दूरनुं होवाने लीधे तेओ व्यापक जैनसमाजमां अज्ञात ज रह्या हशे. नन्दिसूत्रनी स्थविरावलीमां आ भगवन्तोनो अनुल्लेख होवाने लीधे ते सम्बन्धे प्रस्तुत अनुमान करवामां आव्युं छे.

वाचना वखते कालगणनादि माटे आ ज वाचकगणनाने मुख्यताओ स्वीकारवामां आवी होवाथी, वाचनाचार्यनी आ गणनाने 'माथुरी युगप्रधान-पट्टावली' तरीके ओळखवामां आवे छे. नन्दि-स्थविरावली आवा प्रकारनी वाचनाचार्योनी गणना ज छे. आ स्थविरावली दूर-सुदूर क्षेत्रोमां विचरता श्रुतधर महर्षिओने गणतरीमां न लेती होवाथी बीजा प्रकारनी पट्टावलीथी जुदी पडी जाय छे.

वाचनाचार्योनी पट्टावलीना बीजा प्रकारमां कोई चोक्कस क्षेत्रमां थयेला वाचनाचार्योनी गणना नथी थती. पण ते काळे जे जे उत्कृष्ट श्रुतधर होय तेने वाचनाचार्य तरीके गणवामां आवे छे. मतलब के तेमां प्रथम बे केवलज्ञानी, पछी छ चौदपूर्वधर अने पछी दस दशपूर्वधर[१] - अे रीते गणतरी करवामां आवे छे. परिणामे आपणने माथुरी गणनामां नथी जोवा मळता अेवा त्रण दश पूर्वधरो- गुणसुन्दर, रेवतिमित्र अने श्रीगुप्त - आ वाचनाचार्य गणनामां जोवा मळे छे.[२] स्वाभाविक छे के आ त्रणेना काळमां वाचनाचार्य तरीके जेमनी माथुरी गणनामां गणतरी छे, तेमनां नाम आ पट्टावलीमां न ज होय. वालभी वाचनाना पक्षधरो कालगणनादिमां आ वाचनाने मुख्य करतां होवाथी आ गणना 'वालभी युगप्रधान-पट्टावली' तरीके पण ओळखाय छे. दुस्समकालसमणसंघथयं, विचारश्रेणि व. गत पट्टावलीओ वाचनाचार्योनी आ प्रकारनी गणनाने अनुसरे छे.

बन्ने प्रकारनी वाचनाचार्य-गणनामां पहेलां दश नाम तो सरखां ज छे- १. सुधर्मास्वामी २. जम्बूस्वामी ३. प्रभवस्वामी ४. आर्य शय्यम्भव ५. आर्य यशोभद्र ६. आर्य सम्भूतिविजय ७. आर्य भद्रबाहु ८. आर्य स्थूलिभद्र ९. आर्य महागिरि १०. आर्य सुहस्ति. त्यारबाद वज्रस्वामी सुधी बन्नेमां जे तफावत आवे छे ते नीचेना कोष्टकथी समजाशे.

माथुरी-गणना	वालभी-गणना
११. बलिस्सह	११. गुणसुन्दर

१. महागिरिः सुहस्ती च, सूरिः श्रीगुणसुन्दरः ।
श्यामार्यः स्कन्दिलाचार्यो, रेवतिमित्रसूरिराट् ॥
श्रीधर्मो भद्रगुप्तश्च, श्रीगुप्तो वज्रसूरिराट् ।
युगप्रधानप्रवरा, दशैते दशपूर्विणः ॥ (-कल्प-सुबोधिकामां उद्धृत)

२. आर्य साण्डिल्य अने आर्य स्कन्दिलने अेक ज व्यक्ति न गणीअे तो आर्य स्कन्दिलनुं नाम पण अत्रे उमेरवुं पडे.

१२. स्वाति	१२. श्यामार्य
१३. श्यामार्य	१३. स्कन्दिल[१]
१४. साण्डिल्य[२]	१४. रेवतिमित्र
१५. समुद्र	१५. धर्म
१६. मंगू	१६. भद्रगुप्त
१७. धर्म	१७. श्रीगुप्त
१८. भद्रगुप्त	१८. वज्र
१९. वज्र	

स्पष्ट छे के माथुरी गणना प्रमाणमां अप्रसिद्ध अेवा गुणसुन्दर, रेवतिमित्र अने श्रीगुप्तने गणनामां नथी लेती. पण तेने स्थाने बीजा प्रसिद्ध श्रुतधर भगवन्तोने गणे छे. ज्यारे वालभी गणना श्रुतज्ञानसम्पत्तिने ज वधु महत्त्व आपे छे.

जो के तेम करवा जतां वालभी गणनामां अेक मोटी गरबड थई गई जणाय छे. आर्य यशोभद्र पछी जेम आर्य सम्भूतिविजय अने आर्य भद्रबाहु अेम बे चौदपूर्वधरो अेक साथे वाचनाचार्य थया, तेम भद्रगुप्तसूरिजी पछी पण श्रीगुप्ताचार्य अने वज्रस्वामी अेम बे दशपूर्वधरो वाचनाचार्य थया छे. जेमां श्रीगुप्ताचार्य १५ वर्ष अने वज्रस्वामी ३६ वर्ष पट्टधर रह्या छे. माथुरी गणना तो श्रीगुप्ताचार्यने उल्लेख्या वगर सीधा वज्रस्वामीने ज भद्रगुप्तसूरिना पट्टधर दर्शावे छे. ज्यारे वालभी गणना बन्नेने अलग अलग पट्टधर गणे छे. पण आम करवामां अे गरबड थई छे के, आर्य भद्रबाहुनो कुल युगप्रधानत्पर्याय २२ वर्षनो होवा छतां, गणतरी वखते तेमना समकालीन आर्य सम्भूतिविजयना ८ वर्ष बाद करीने जेम १४ वर्षनो गणवामां आवे छे तेम, वज्रस्वामीनो वाचनाचार्यपर्याय तेमना समकालीन श्रीगुप्ताचार्यना १५ वर्ष बाद करी २१ वर्षनो गणवो जोइतो हतो. पण तेने बदले वालभी गणनाकारोअे भद्रगुप्तसूरिजीना स्वर्गवास पछी श्रीगुप्ताचार्यना १५ वर्ष गणी त्यारबाद वज्रस्वामीना ३६ वर्ष गण्यां छे. जेने लीधे अे गणना १३ वर्ष जेटली माथुरी गणनाथी जुदी पडे छे.

खरेखर तो आ रीते जोतां बे वाचनाचार्य-गणनाओ वच्चे श्रीगुप्ताचार्यनां १५ वर्षो उमेरायां होवाथी, १५ वर्षनो फेर पडवो जोइअे, पण वास्तवमां १३

१-२. आर्य स्कन्दिल अने आर्य साण्डिल्य एक ज व्यक्ति छे अेवी मान्यता छे.

वर्षनो ज पडे छे. कारण के वीर नि.सं. ४९५ थी आरम्भातो भद्रगुप्तसूरिजीनो वाचनाचार्य-पर्याय कुल केटला वर्षनो हतो ते विशे बे मत मळे छे : 'इगयाल (-४१ वर्ष)' अने 'इगुणयाल (-३९ वर्ष)'. माथुरी गणना ४१ वर्ष स्वीकारती होवाथी ते ५३५ (४९५+४१)मां भद्रगुप्तसूरिजीनुं स्वर्गगमन स्वीकारे छे अने ४३६ थी ४७१ सुधी वज्रस्वामीने अने ४७२ थी ४८४ आर्यरक्षितने युगप्रधान गणे छे. ज्यारे 'इगुणयाल' स्वीकारती वालभी गणना मुजब - भद्रगुप्तसूरिजी वीर नि.सं. ४९५ थी ५३३ (४९५+३९), श्रीगुप्ताचार्य - ५३४ थी ५४८, वज्रस्वामी- ५४९ थी ५८४ अने आर्यरक्षित - ५८५ थी ५९७ - आ रीते युगप्रधानपर्याय मळे छे. मतलब के वीर नि.सं. ५३५ पछीनी तमाम घटनाओमां १३-१३ वर्षनो फेर पडे छे. कारण के श्रीगुप्तसूरिजीनां १५ वर्ष उमेरतां अने भद्रगुप्तसूरिजीनां २ वर्ष ओछां करतां १३ वर्ष वधे छे.

आ तफावत छेक देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणनी अध्यक्षतामां थयेली वालभी वाचना सुधी चालु रह्यो छे — ''समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव० सव्वदुक्खप्पहीणस्स नव वाससयाइं विइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ । वायणंतरे पुण अयं तेणउए संवच्छरे काले गच्छइ इति दीसइ ।'' (कल्प-व्याख्यान-६ना अन्तभागे)

अर्थ[१]- ''श्रमण भगवान महावीरने निर्वाण पाम्ये नवसो वर्ष व्यतीत थयां. अने दसमा सैकानुं ८०मुं वर्ष चाली रह्युं छे. वाचनान्तर प्रमाणे (-वालभी वाचना प्रमाणे) तो आ ९३मुं वर्ष चाली रह्युं छे.''

स्पष्ट छे के श्रीगुप्ताचार्यनी गणतरीथी बे वाचनाओ वच्चे जे १३ वर्षनो तफावत पड्यो हतो ते देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणनी अध्यक्षतामां थयेली वाचना सुधी चालु रह्यो हतो. अने तेने लीधे कल्पसूत्रमां बे मतोनो उल्लेख जरूरी बन्यो हतो.

वालभी गणनामां १३ वर्षनी उमेरणीथी घणी असंगतिओ सर्जावा पामी

१. कल्पसूत्रना प्रस्तुत पाठनी व्याख्या, टीकाओमां अत्यन्त सन्दिग्ध अथवा अयुक्त रीते करवामां आवी छे. आ पाठनो अत्रे दर्शावायेलो सचोट अर्थ श्रीकल्याणविजयजीओ दर्शाव्यो छे के जे तेओनी महाप्रज्ञतानो उत्तम नमूनो छे. आ नोंधमां करवामां आवेला युगप्रधानपट्टावली, विचारश्रेणि व.ना उल्लेखो पण तेमणे लखेला ग्रन्थ - वीर निर्वाण संवत् और जैन कालगणना-मांथी लेवामां आव्या छे.

छे. जेम के आ गणना प्रमाणे आर्यरक्षितनी दीक्षा वीर नि.सं. ५३१मां नहीं, पण ५४४मां थई गणाय. बीजी बाजु भद्रगुप्तसूरिजीनुं स्वर्गगमन ५३३मां थयुं छे, अेम आ गणना कहे छे. हवे अे तो प्रसिद्ध ज छे के भद्रगुप्तसूरिजीने अन्तसमये निर्यामणा करावनार आर्यरक्षित हता.[१] पण उपरनी गणना प्रमाणे तो आर्यरक्षितनी दीक्षा ज भद्रगुप्तसूरिजीना स्वर्गवासथी ११ वर्ष पछी थाय छे, माटे भद्रगुप्तसूरिजीना अन्तिम दिवसोमां तेमनी हाजरी ज शक्य नथी बनती !

उपरान्त, गोष्ठामाहिल आर्यरक्षितजीना स्वर्गगमनना वर्षे ज निह्नव तरीके जाहेर थया छे अने आ घटना वीर नि.सं. ५८४ना वर्षे बनी छे.[२] पण वालभी-गणना प्रमाणे तो ५८४मां वज्रस्वामी कालधर्म पामे छे अने आर्यरक्षित युगप्रधान बने छे अने ५९७मां तेमनुं स्वर्गगमन थाय छे. आ संजोगोमां ५८४मां गोष्ठामाहिलना निह्नव बनवानी घटना वर्णवतां तमाम शास्त्रो करतां आ गणना विरुद्ध बने छे. आ अने आवी बीजी विसंगतिओ दर्शावे छे तेम वालभी युगप्रधान-पट्टावली क्षतियुक्त छे. छतांय माथुरी गणनामां नहीं देखातां केटलांय श्रुतधर भगवन्तोनां नाम अने हकीकतो आ गणनामां मळे छे अे रीते आ गणना पण उपकारक छे.

प्रस्तुत समग्र चर्चानो निष्कर्ष अे छे के (१) निह्नव रोहगुप्त महागिरिजीना शिष्य स्थविर रोहगुप्तथी जुदी अने लगभग ३०० वर्ष पछी थयेली व्यक्ति छे. (२) आ रोहगुप्त श्रीगुप्ताचार्यना विद्याशिष्य छे. कदाच श्रीगुप्ताचार्य तेमना दीक्षागुरु पण होई शके. (३) श्रीगुप्ताचार्य दशपूर्वधर भगवन्त छे अने वज्रस्वामीना समकालीन वाचनाचार्य छे. (४) तेमनो वाचनाचार्यपर्याय वीर नि.सं. ५३३ थी ५४८ नो छे. (५) युगप्रधान-पट्टावली, विचारश्रेणि व. मां तेमनो वाचनाचार्यपर्याय वज्रस्वामीनी पहेलां अलग गणवामां आवेल छे, जेने लीधे माथुरी-गणना अने वालभी-गणना वच्चे १३ वर्षनो फेर पडे छे.

★

रोहगुप्ते वाद दरमियान द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष अने समवाय -

---

१. पूर्वाध्ययनार्थं श्रीवज्रसमीपे गच्छन्नुज्जयिन्यां श्रीभद्रगुप्तसूरिमनशनिनं निरयामयत् - कल्पकिरणावली ।

२. वि.भाष्य-गाथा २५०९-१०

अेम छ पदार्थोनी प्ररूपणा करी होवाथी ते 'षडुलूक' तरीके पण ओळखाय छे. षड्- छ पदार्थोने प्ररूपनारा उलूक- कौशिकगोत्रीय - अेवो तेनो अर्थ छे. आ रोहगुप्तथी त्रैराशिकदृष्टि- जीव, अजीव अने नोजीव अेम त्रण राशि स्वीकारनारी परम्परा प्रवर्ती हती, तेथी ते 'त्रैराशिक' तरीके पण ओळखाय छे. परन्तु आ उपरान्त वि.भाष्य, उत्त.-पाइय-टीका व.मां तेमने वैशेषिक दर्शनना प्रस्थापक तरीके पण ओळखवामां आव्या छे, ते वात विचार मांगी ले तेवी छे.

सौप्रथम आपणे ते स्थळो जोई लइअे के ज्यां तेमने वैशेषिक दर्शनना प्रस्थापक गणाववामां आव्या छे –

१. ''तेणाभिनिवेसाओ, समइविगप्पियपयत्थमादाय ।
वइसेसियं पणीयं, फाईकयमण्णमण्णेहिं ॥'' -वि.भाष्य-२५०७

२. ''तेण (-रोहगुत्तेण) वेसेसियसुत्ता कया ।''
- उत्त.निर्युक्ति-१७४-पाइयटीका

३. ''ततः षष्ठनिह्नवास्त्रैराशिकाः, क्रमेण वैशेषिकदर्शनं च प्रकटितम् ।''
- कल्पकिरणावली

आ तमाम स्थळे रोहगुप्तने वैशेषिक दर्शनना प्रस्थापक गणवामां आव्या छे. तेनी पाछळनुं कारण, वैशेषिक दर्शनना पायानुं तत्त्व - छ पदार्थोनी सौ प्रथम प्ररूपणा तेमणे करी अे मान्यता छे. अने आ मान्यता पाछळनुं कारण नीचेनो प्रसंग छे.

राजसभामां श्रीगुप्ताचार्य अने रोहगुप्त वच्चेनो वाद छ महिना सुधी चालवा छतां ज्यारे निवेडो ना आव्यो, त्यारे श्रीगुप्ताचार्ये जीव-अजीव अेम बे ज राशि होवानी वात साची छे तेनी बधाने प्रतीति करावववा माटे ज्यां आगळ देव पोतानी दिव्यशक्तिथी मांगेली वस्तु सकल विश्वमां गमे त्यां होय तो त्यांथी लावी आपे छे तेवी दुकाने (कुत्रिकापणमां) राजा-प्रजा बधांने आववा जणाव्युं. ते दुकाने गुरुअे १४४ वस्तुनी मांगणी करी. मतलब के आ १४४ वस्तु दुनियामां होय छे के नहीं अेम पूछ्युं. कारण के जो वस्तु दुनियामां क्यांय पण होय तो देव लावी ज आपवानो हतो.

आ १४४ वस्तु नीचे मुजब हती :

द्रव्य – १. पृथ्वी, २. जल, ३. अग्नि, ४. वायु, ५. आकाश, ६. काल, ७. दिशा, ८. आत्मा, ९. मन.

गुण – १. रूप, २. रस, ३. गन्ध, ४. स्पर्श, ५. संख्या, ६. परिमाण, ७. महत्त्व, ८. पृथक्त्व, ९. संयोग, १०. विभाग, ११. परत्व-अपरत्व, १२. बुद्धि, १३. सुख, १४. दुःख, १५. इच्छा, १६. द्वेष, १७. प्रयत्न. (१७+९=२६)

कर्म – १. उत्क्षेपण, २. अवक्षेपण, ३. आकुञ्चन, ४. प्रसारण, ५. गमन. (५+२६=३१)

सामान्य – १. सत्ता, २. सामान्य, ३. सामान्यविशेष. (३+३१=३८)

विशेष (३५) **समवाय** (३६)

आ ३६ वस्तुमांथी दरेकना चार-चार भेद – १. स्व, २. स्वाभाव, ३. नोस्व, ४. नोस्वाभाव. जेम के पृथ्वी लइअे तो १. स्व- पृथ्वी, २. स्वाभाव- जलादि, ३. नोस्व- पृथ्वीनो अेक देश ४. नोस्वाभाव- जलादिनो अेक देश. अेम ३६ वस्तुना ४-४ भेद गणतां कुल १४४ वस्तु थाय. श्रीगुप्ताचार्ये आ १४४ वस्तुनी दुकानमां मांगणी करी. जवाबमां जे वस्तुओ मळी तेमां 'नोजीव' नामनो पदार्थ ना मळ्यो. कारण के जीवनो अेक पण अवयव छूटो न पडी शके अने तेथी नोजीव- आत्मानो अेक देश आपी शकाय नहीं. तेथी नक्की थयुं के 'नोजीव' नामनी राशि दुनियामां छे नहीं; अने तेथी जीव, अजीव अने नोजीव अेम त्रण राशि दुनियामां होवानी रोहगुप्तनी वात खोटी ठरतां ते हार्या.

उपरना प्रसंगमां खास नोंधपात्र वात अे छे के श्रीगुप्ताचार्य जे १४४ वस्तुओनी मांगणी करे छे, तेमांथी घणी घणी वस्तुओ जैनमतने सम्मत नथी. सामान्य, विशेष अने समवाय अे त्रण (स्वतन्त्र) पदार्थो तो जैनमते सम्भवता ज नथी. माटे तेनी मांगणी करवानुं प्रयोजन अे ज होई शके के मांगणीना जवाबमां ना पाडवामां आवे अने तेथी ते वस्तुओ नथी अे साबित थाय. पण नोजीवनी साथे ने साथे आ बधी वस्तुओना पण नास्तित्वनी सिद्धि शा माटे

जरूरी बनी ? अे ज कारण न होय के 'अेक जूठ सो जूठने ताणे' अे कहेवत मुजब रोहगुप्तने नोजीवनी सिद्धि माटे आवी बधी वस्तुओ पण कल्पवानी जरूर पडी होय अने श्रीगुप्ताचार्यने तेनो पण निषेध करवानी फरज पडी होय ? जो के आ बधां तत्त्वो रोहगुप्तने अेनो पक्ष मजबूत करवामां कई रीते सहायक बन्यां होय ते आपणे नथी समजी शकता. पण जैनमतने सम्मत धर्म, अधर्म व. छ पदार्थोने स्थाने आवा छ पदार्थोनी कल्पना रोहगुप्त द्वारा ज करवामां आवी हती ते आ उपरथी चोक्कस जणाय छे. जुओ - ''तेण (-रोहगुत्तेण) छ मूलपयत्था गहिया'' (-उत्त.-पाइयटीका). जो के आ पाठ प्रमाणे तो 'गृहीत' नो अर्थ अेवो पण थई शके के आवा छ पदार्थोनी कल्पना अन्य कोई दर्शनमां प्रवर्तती हशे अने तेमांथी रोहगुप्ते लीधी हशे. पण वि.भाष्यमां आवा छ पदार्थो माटे स्पष्ट 'स्वमतिविकल्पित' अेवुं विशेषण आपवामां आव्युं छे के जे सूचवे छे के आ छ पदार्थोनी कल्पना रोहगुप्तनी पोतानी बुद्धिनी ज नीपज हती.

जो रोहगुप्ते पोते ज आवा छ भावोनी कल्पना करी होय तो अवश्य तेमने वैशेषिक दर्शनना प्रस्थापक समजवा ज पडे; कारण के अे दर्शननुं समग्र माळखुं आ छ भावोनी कल्पनाना पाया पर ऊभुं छे. पण विचारवा जेवुं अे छे के वैशेषिक दर्शनमां क्यांय जीव, अजीव अने नोजीव - अेम त्रण राशिनी कल्पना आवती नथी के जे कल्पना रोहगुप्तनुं मुख्य अवलम्बन छे. तो त्रैराशिक रोहगुप्त बे राशिने स्वीकारनारा वैशेषिक दर्शनना प्रस्थापक कई रीते होई शके ? अेवुं बने के अेमनी शिष्य-सन्ततिअे त्रण राशिनी कल्पना छोडी दीधी होय ? वि.भाष्यगत 'फाईकयमण्णमण्णेहिं' परथी अे तो स्पष्ट ज छे के अेमनी शिष्यसन्ततिअे अेमना स्थापेला वैशेषिक दर्शनने दृढमूल बनाववामां सिंहफाळो आप्यो हतो. बनी शके के दर्शनने दृढमूल बनाववानी प्रक्रिया दरमियान त्रण

१. (पृष्ठ १६० साथे सम्बन्धित) संस्कृत साहित्य का बृहद् इतिहास (ले.-पुष्पा गुप्ता, प्र.- ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली-२०११)मां वैशेषिक दर्शनने लगभग २३०० वर्ष जेटलुं प्राचीन देखाडवामां आव्युं छे. भारतीय दर्शन का इतिहास - भाग १ (ले.- एस. एन. दासगुप्ता, प्र.- राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर-१९७८) पृ. २८१ थी शरू थती चर्चामां साबित करवामां आव्युं छे के वैशेषिक सूत्रो बौद्धपूर्वकालीन छे, पण वैशेषिक दर्शननुं निश्चित माळखुं बहु मोडुं घडायुं छे.

राशिनी कल्पना योग्य न जणावाथी छोडी देवामां आवी होय.

आ उपरान्त रोहगुप्तने वैशेषिक दर्शनना मूलपुरुष गणतां पहेलां बीजी पण केटलीक समस्याओ विचारणीय छे. जो आ वात साची होय तो वैशेषिक दर्शन फक्त २००० वर्ष अगाउ अस्तित्वमां आव्युं अेम नक्की थाय. तो शुं अे दर्शनने आटलुं अर्वाचीन गणी शकाय ?[१] पाइयटीकाना उल्लेख प्रमाणे जो रोहगुप्ते वैशेषिकसूत्रो रच्यां होय तो ते अत्यारे उपलब्ध वैशेषिकसूत्रो छे ते के बीजां ? वैशेषिक दर्शनना आदिपुरुष तरीके कणादऋषि गणाय छे. तो आ कणादऋषि अने रोहगुप्त वच्चे शो सम्बन्ध हतो ? आ बधा प्रश्नो व्यापक संशोधन मांगे छे. कल्पसूत्रनी स्थविरावलि के जे वि.भाष्य अने पाइयटीका करतां वधु प्राचीन छे, तेमां रोहगुप्तने फक्त त्रैराशिक ज कह्या छे, वैशेषिकदर्शनकार नहीं, ते खास ध्यानपात्र छे.

वि.भाष्य – गाथा २६१७ थी २६२० सुधी निह्नवोने उद्देशीने करेलुं अशनादि भोजन साधुओने कल्पे के नहीं तेनी चर्चा छे. तेमां स्पष्ट जणाव्युं छे के दिगम्बरो मिथ्यादृष्टि होवाथी अने तेमनो मत, तेमनो वेश, तेमना आचार-विचार व. सर्वथा भिन्न होवाथी तेमने माटे करेलुं अशनादि साधुने कल्पे. पण बाकीना सात निह्नवोनी शिष्यसन्तति वेश, आचार-विचार व.मां प्रायः समान होवाथी अने तेमनो मत पण दिगम्बरो जेटलो जुदो न होवाथी तेमने उद्देशीने करेलुं अशनादि अमुक ज संजोगोमां साधुने कल्पे, अन्यथा नहीं. हवे रोहगुप्तना सत्तासमय अने वि.भाष्यना रचनाकाल वच्चे ५००-६०० वर्षनुं अन्तर छे. माटे जो रोहगुप्ते स्वतन्त्र दर्शन ज प्रवर्ताव्युं होत तो तेनी शिष्यसन्तति भाष्यना रचनाकाळ सुधीमां क्रमशः वेश, आचार-विचार व.मां तो घणी जुदी पडी ज होत. अेटलुं ज नहीं, श्वेताम्बर-दिगम्बरो वच्चेनी मान्यताओमां जेटलुं अन्तर छे अेनाथी कंइकगणुं वधारे अन्तर पण जैन-वैशेषिकना सिद्धान्तो वच्चे होवाथी, रोहगुप्तनी शिष्यसन्तति जो वैशेषिक दर्शननी अनुयायी होत तो वि.भाष्यमां जे विधान दिगम्बरोने अंगे छे, ते विधान रोहगुप्तना वंशजो-वैशेषिकोने अंगे पण थयुं होत. परन्तु अेवुं तो नथी. उपरथी रोहगुप्तने के तेना वंशजोने, दिगम्बरोनी अपेक्षाअे जैन साधुओनी वधु नजीक गण्या छे. जेना

१. पृष्ठ १५९ पर छे.

परथी त्रैराशिको तत्त्वमान्यतानी रीते जैन दर्शनथी जुदा पडवा छतां, आचारविचारमां तो जैन-बन्धारण मुजब ज वर्तता हता, तेम जणाय छे. आम, रोहगुप्त वैशेषिक दर्शनना प्रवर्तक हता के नहीं ते सन्दर्भे आ आखी प्ररूपणा विचारणीय छे अेम लागे छे.

छेल्ले, रोहगुप्त वैशेषिक दर्शनना प्रस्थापक हता ते वातनी तरफदारी करतो अन्य अेक सन्दर्भ तपासी लइअे. रोहगुप्त उलूकगोत्रनां हता ते सर्वप्रसिद्ध छे. हवे अमरकोशना ब्रह्मवर्गमां वैशेषिकोनुं पर्यायवाची नाम 'औलूक्य' अपायुं छे. जेनी व्युत्पत्ति छे - उलूकस्याऽपत्यानि- शिष्यसन्तानजानीति औलूक्याः. पाठ आम छे : ''वैशेषिके स्यादौलूक्यः'' - आ पाठ सूचवे छे के वैशेषिकोनो आदिपुरुष 'उलूक' हतो. आ 'उलूक' ते शुं रोहगुप्त ज हशे ?

★

'त्रैराशिक' शब्द साथे सम्बन्धित अन्य अेक सन्दर्भ नन्दीसूत्रमां सांपडे छे. त्यां दृष्टिवादना वर्णनमां दृष्टिवादगत ७ परिकर्म परत्वे नीचे प्रमाणे व्यवस्था दर्शाववामां आवी छे.

''इच्चेइयाइं सत्त परिकम्माइं छ ससमइयाइं, सत्त आजीवियाइं, छ चउक्कणइयाइं, सत्त **तेरासियाइं** ॥''

आ पाठनी चूर्णि अने हारिभद्रीय टीका आम छे –

''एएसिं परिकम्माणं छ आदिमा य परिकम्मा ससमइया चेव । गोसालयपवत्तिय-आजीवगपासंडिसिद्धंतमएणं पुण चुयअचुयसेणिया-परिकम्म-सहिया सत्त पन्नविज्जंति । इयाणिं परिकम्मे णयचिंता । तत्थ णेगमो दुविहो-संगहितो असंगहितो य, संगहिओ संगहं पविट्ठो, असंगहिओ ववहारं । तम्हा संगहो ववहारो उजुसुत्तो सद्दाइया य एक्को एवं चउरो णया । एतेहिं चउहिं णएहिं छ ससमइयाइं परिकम्माइं चिंतिज्जंति । अतो भणियं छ चउक्कणइयाइं भवंति। **ते चेव आजीविया तेरासिया भणिया ।** कम्हा ? उच्यते, जम्हा ते सव्वं जगत् त्र्यात्मकमिच्छन्ति । यथा जीवोऽजीवो जीवाजीवो, लोए अलोए लोयालोए, संते असंते संतासंते एवमादि । णयचिंताए ते तिविहं णयमिच्छंति।

१. अवचूरिकार 'सत्त तेरासियाइं'नुं तात्पर्य जुदुं देखाडे छे - ''सप्त परिकर्माणि त्रैराशिकानि त्रैराशिकमतानुयायीनि । एतदुक्तं भवति - पूर्वं सूरयो नयचिन्तायां त्रैराशिकमतमव-लम्बमानाः सप्तापि परिकर्माणि त्रिविधयाऽपि नयचिन्तया चिन्तयन्ति स्म इति ।''

तं जहा दव्वट्ठितो पज्जवट्ठितो उभयट्ठितो । अओ भणियं – सत्त तेरासिय त्ति। सत्त परिकम्माइं तेरासियपासंडत्था तिविहाए णयचिंताए चिन्तयन्तीत्यर्थः[१] ॥''

आ पाठ प्रमाणे बे वातो फलित थाय छे : १. आजीविकमत अे ज 'त्रैराशिकमत' तरीके ओळखातो हतो. जीव अजीव अने जीवाजीव, लोक अलोक अने लोकालोक – अेम सर्वत्र त्रण राशि स्वीकारवाने लीधे गोशालकना अनुयायीओ ज 'त्रैराशिक' कहेवाता हता. २. त्रैराशिको (अथवा अवचूरिना मते पूर्वसूरिओ त्रैराशिकमतने नयचिन्ता पूरतो स्वीकारीने), साते परिकर्मोने त्रण नयो – द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक अने उभयार्थिक नयथी विचारता हता. आमां सातमुं परिकर्म जैनसिद्धान्त प्रमाणे नहोतुं. अे तो आजीविक-त्रैराशिकमतने ज सम्मत हतुं, अने अे रीते ज दृष्टिवादमां स्थान पामतुं हतुं. तेमज जैनसमय-सम्मत प्रथम छ परिकर्मोने नयचतुष्क – संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र अने शब्द नयोथी विचारवानी मूल जैनदर्शननी व्यवस्था हती.

आ पछी दृष्टिवादगत 'सूत्र'नी व्यवस्था दर्शावता नन्दीसूत्रमां जणावायुं छे के ''इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं छिण्णच्छेयणइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडीए सुत्ताइं... अच्छिन्नछेयणइयाइं आजीवियसुत्तपरिवाडीए...तिगणइयाइं तेरासियसुत्तपरिवाडीए... चउक्कणइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडीए सुत्ताइं । एवामेव सपुव्वावरेणं अट्ठासीतिं सुत्ताइं भवंतीति मक्खायं ॥''

आनो अर्थ आम थाय छे – उपर जणाव्यां ते बावीस सूत्रोने जो छिन्नच्छेदनयथी[२] जोवामां आवे तो अे जैनमतने सम्मत सूत्रो बने छे अने अच्छिन्नच्छेदनयथी जोइअे तो आजीविकमतने सम्मत सूत्रो बने छे. अे ज रीते आ सूत्रोना विषयभूत अर्थने जो चार नयथी विचारीअे तो अे सूत्रो स्व-समयसम्मत अने त्रण नयथी विचारता त्रैराशिकमतसम्मत बने छे. आम कुल मळीने ८८ सूत्रो दृष्टिवादमां समाविष्ट बने छे.

उपरोक्त मूल नन्दीसूत्र अने तेनी टीकाओमां आवता 'त्रैराशिक' अंगेना उल्लेख थोडोक विचार मांगे छे.

★ आजीविकमतने लगता जे निर्देशो अत्यारे उपलब्ध छे अेमां अे मत त्रण राशि स्वीकारतो होय अेवो कोई ज निर्देश नथी देखातो. नन्दीनी

१. पृष्ठ १६१ पर छे.

२. छिन्नच्छेदनय अने अच्छिन्नच्छेदनयना अर्थ माटे जुओ नन्दीनी चूर्णि-टीकाओ ।

टीकाओने बाद करतां क्यांय त्रैराशिको माटे आजीविक के आजीविको माटे त्रैराशिक शब्द वपरायो होवानुं जाणमां नथी. खुद नन्दीना रचयिताओ पण बन्ने माटे अलग-अलग विधानो ज करेलां छे. तो नन्दीना टीकाकारोओ शा माटे बन्नेने अेक गण्या ? आनो अर्थ अेवो समजी शकाय के जैनमतनी विरुद्ध सिद्धान्तो धरावती, अने छतांय अेमना स्थापको मूलतः जैन निर्ग्रन्थ होवाने लीधे जैन आचार-विचारोथी प्रभावित तेवा प्रायः परस्पर सरखा आचार-विचार धरावती, आ बे परम्पराओ अमुक काल सुधी समान्तरपणे वहेती रही होय, अने धीरे धीरे जैनमतनी विरुद्ध अेक थती थती नन्दी-चूर्णिना समय सुधीमां परस्परमां विलीन थई गई होय अने तेथी चूर्णि, टीका व.मां आजीविको अने त्रैराशिको बन्नेने अेक गणाववामां आव्या होय ?

अहीं अेक महत्त्वनो मुद्दो अे उपस्थित थाय छे के त्रैराशिक मतनो उद्भव खरेखर क्यारथी थयो गणाय ? श्रीगणधर-विरचित दृष्टिवादनां केटलाक अंगोनो विमर्श जो त्रैराशिक मतनी विचारणा प्रमाणे थतो होय तो त्रैराशिक मतने ओछामां ओछुं दृष्टिवादनी रचना जेटलो प्राचीन गणवो पडे. ज्यारे कल्पसूत्रनी स्थविरावलीनो ''थेरेहिंतो णं छडुलूएहिंतो रोहगुत्तेहिंतो कोसियगुत्तेहिंतो तत्थ णं तेरासिया निग्गया ।'' आ पाठ अेम दर्शावे छे के रोहगुप्तथी त्रैराशिक मत उद्भव्यो. आ बे परस्पर विरोधी विधानोनी संगति बे रीते शक्य छे.

(१) दृष्टिवाद साथे सम्बन्धित त्रैराशिकमत अने रोहगुप्तथी प्रस्थापित त्रैराशिकमत विभिन्न होय.[१]

(२) बन्ने त्रैराशिकमतनो अर्थसन्दर्भ अेक ज होय, परन्तु दृष्टिवादगत त्रैराशिक-विचारणा पोतानाथी भिन्न मतना सापेक्ष स्वीकारपूर्वक होय. ज्यारे रोहगुप्ते प्ररूपेलो त्रैराशिकमत जैनमतनी अवगणना करवा पूर्वक निरपेक्षपणे त्रण राशि स्वीकारतो होय. जो आ वात यथार्थ होय तो रोहगुप्ते सर्वथा नवो मत नहोतो प्ररूप्यो, परन्तु प्राचीन मतने ज पोतानी रीते अनुकूल स्वरूपे अेटले के अेकान्तपणे स्वीकार्यो हतो अेम समजवुं जोइअे. रोहगुप्त वाद दरमियान जे मक्कमताथी त्रण राशि प्ररूपे छे ते जोतां तेमणे त्रण राशि विशे अे पहेलां पण विचार्युं हशे अेम जणाय छे. बनी शके के अे विचारणा दृष्टिवादना

१. जो के नन्दीसूत्रनी टीकाओमां व्यावर्णित दृष्टिवाद-सम्बन्धित त्रैराशिकमत अने रोहगुप्तना त्रैराशिकमत वच्चे कोई तफावत नथी जणातो.

त्रैराशिकमतने सम्बन्धित होय. नन्दीसूत्रनी चूर्णि, टीका व.मां गोशालकने आजीविकमतना प्रस्थापक जणाव्या छे, पण रोहगुप्तनो त्रैराशिकमतना प्रस्थापक तरीके उल्लेख नथी कर्यो, ते पण आ सन्दर्भे विचारणीय छे.

उपरनी समग्र विचारणा दरमियान ध्यानमां राखवा जेवी बाबत अे पण छे के दृष्टिवादना वर्णनगत त्रैराशिकमतना उल्लेख सिवाय, रोहगुप्तथी पूर्वे, त्रैराशिकमतनी विद्यमानतानो कोई पुरावो नथी जडतो.

विचारणीय वात अे पण छे के त्रैराशिकमतनी विचारणा मुजबनां परिकर्म-सूत्रोनो समावेश शा माटे दृष्टिवादमां करवामां आव्यो ? आ परत्वे अेवी कल्पना सूझे छे के दृष्टिवादनी रचनाकाले गोशालकनो आजीविकमत विद्यमान होवाथी, अने अे मतने सम्भवतः जैनमत साथे निकटनो सम्बन्ध होवाथी, दृष्टिवादगत परिकर्मसूत्रोनी विचारणा अने रचना अे मत प्रमाणे पण थई होय. आम करवुं अेटले जरूरी बन्युं हशे के छिन्नच्छेदनयथी सूत्रोनी अर्थविचारणानी जे जैन परिपाटी हती तेनी सामे अच्छिन्नच्छेदनयथी सूत्रोनी अर्थविचारणा करवानी पद्धति आजीविकमते ऊभी करी होवी जोईए. आजीविकमतनी आ पद्धति सूत्रोना विशद बोधमां महत्त्वपूर्ण भाग न भजवती होय तो सारग्राही जैनाचार्योअे अेने न ज स्वीकारी होत, अने दृष्टिवादमां अेने स्थान न ज आप्युं होत. अने अे ज रीते नयचतुष्कथी सूत्रार्थ विचारवानी जैनपरिपाटीनी सामे नयत्रिकथी सूत्रार्थ विचारवानी त्रैराशिकसम्मत पद्धति पण जैनाचार्योअे सापेक्षभावे स्वीकारी होय अने अे पद्धति प्रमाणेनां 'त्रैराशिक' परिकर्मो अने सूत्रोने दृष्टिवादमां समाव्यां होय.

जो उपरनी कल्पना साची होय तो छिन्नच्छेदनय अने अच्छिन्नच्छेदनय जेम परस्पर विरुद्ध छे तेम नयचतुष्क अने नयत्रिकने पण परस्पर विरुद्ध समजवा पडे. मतलब के जेम नयत्रिकनो अर्थ द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक अने उभयार्थिक छे, तेम नयचतुष्कनो अर्थ द्रव्यार्थिक जेवा चार विभागमां विभक्त नयो ज लेवा जोइअे, ए वधु सुसंगत जणाय छे. पण ते शुं होई शके ते नयवादना जाणकारो ज बतावी शके[१]. बाकी टीकाकारो बतावे छे तेम चार मूल नयनी

१. जीव, अजीव अने नोजीव अेम त्रण राशिनी सामे जीव, अजीव, नोजीव अने नोअजीव अेम जैनमते चार राशिनी वात प्रस्तुत सन्दर्भे विचारणीय छे.

(संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द) वात अन्य कोई स्थाने प्रायः देखाती नथी. सिद्धान्तमां तो मूल नय ५ के ७ जणाव्या छे. ज्यारे नैगमनो संग्रह-व्यवहारमां अन्तर्भाव करनारा सिद्धसेन दिवाकरजीना मते मूल नय ६ छे. ४ मूलनयनी वात तो कदाच 'नयचतुष्क'नी व्याख्या माटे ज कल्पवामां आवी होय तो शक्य छे.

★

त्रैराशिकमतनी परम्परा विशे अेक महत्त्वनो उल्लेख त्रिपुटी महाराजे जैन परम्परानो इतिहास-१, पृ. २७७ पर कर्यो छे :

''आ मत (-त्रैराशिक) छेवटे दिगम्बर परम्परामां भळी गयो हतो. भट्टारक आचार्य अकलङ्के दिगम्बर संघोनी व्यवस्था करी त्यारथी ते कुन्दकुन्दान्वयमां सामेल मनातो होय अेम लागे छे. घणो समय गया पछी आ परम्परामां त्रैराशिक आचार्य पद्मनन्दी थया छे. ते माटे पुण्याश्रवकथाकोषनी प्रशस्तिमां लख्युं छे के –

''कुन्दकुन्दान्वये ख्याते, ख्यातो देशिगणाग्रणीः ।
बभौ सङ्घाधिपः श्रीमान्, पद्मनन्दी **त्रिराशिकः** ॥''

आम क्यांक त्रैराशिकोने वैशेषिको गणाव्या छे, क्यांक आजीविको अे ज त्रैराशिक अेम कह्युं छे, तो त्रिपुटी महाराजे जणाव्युं छे तेम क्यांक त्रैराशिक जैनाचार्यनो उल्लेख छे.[१] आ बधुं समग्रपणे जोतां अेम लागे छे के त्रैराशिकमतमां मूलभूत रीते आजीविक, वैशेषिक अने जैन - अे त्रणे मतने लगतां तत्त्वो पड्यां हशे. कालक्रमे त्रैराशिक परम्परामां अे तत्त्वोने लीधे त्रण फांटा पड्या हशे. जेमां अेक फांटो आजीविकमतमां विलीन थई गयो, बीजो फांटो वैशेषिक दर्शन तरफ ढळ्यो अने त्रीजो फांटो मूल जैनमार्ग साथे पाछो जोडाई गयो. उपरोक्त परस्पर विरोधी विधानो अे फांटाओने अनुलक्षीने लागे छे.

टूंकमां, त्रैराशिकमत अने तेने लगतां विधानो व्यापक संशोधन मांगे छे. तज्ज्ञो आ बाबतमां प्रकाश पाथरे अेवी अपेक्षा.

---

१. कल्प-स्थविरावलीगत त्रैराशिकमतनी उत्पत्तिना उल्लेख-''थेरेहिंतो णं छडुलूएहिंतो रोहगुत्तेहिंतो कोसियगुत्तेहिंतो तत्थ णं तेरासिया निग्गया ।'' - परथी पण त्रैराशिकमान्यता धरावती जैनश्रमण-परम्परानो उद्भव ज स्थविरावलीकार जणावे छे अेम कल्पी शकाय तेम छे.

नवां प्रकाशनो

१. पिण्डनिर्युक्ति - सटीक, टीकाकार : श्रीहरिभद्रसूरि - श्रीविराचार्य; सं. अज्ञात मुनिराज; प्र. अंधेरी गुजराती जैन संघ - मुम्बई; सं. २०६७

'पिण्डनिर्युक्ति' ए जैन मुनिओनी आहारचर्या-विषयक एक धर्मग्रन्थ छे. निर्युक्तिकार श्रीभद्रबाहुस्वामी छे. निर्युक्ति उपर भाष्यग्रन्थ, अने ते बन्नेना विवरणरूप आ टीकाग्रन्थ छे. प्रस्तुत टीका अद्यावधि अप्रकट हती, तेने विभिन्न हस्तप्रतिओना आधारे सम्पादित करवामां आवेल छे, अने सुचारु सम्पादन द्वारा एक अपूर्व ग्रन्थ सम्पादके उपलब्ध करावी आप्यो छे. श्रीहरि-भद्राचार्यनी एक महत्त्वपूर्ण अने अज्ञातप्राय रचना आ स्वरूपे प्राप्त करावी आपीने सम्पादके उत्तम श्रुतसेवा करी गणाय.

टीका विषे सम्पादके एवुं तारण आप्युं छे के हरिभद्राचार्ये पिण्डनिर्युक्ति उपर सम्पूर्ण वृत्ति लखी हशे, परन्तु वीराचार्यजीना समय सुधीमां स्थापनादोष पछीनी टीका उपलब्ध न थती होवाने लीधे तेओअे अवशिष्ट अंश पूर्ण कर्यो हशे. परन्तु 'स्थापनाद्वार'ना प्रान्त भागे ''कृतिर्हरिभद्राचार्यस्येति, ग्रन्थतः त्रयोदशशतानि त्रिपञ्चाशाधिकानि'' एवां वाक्यो जोवा मळे छे, जे एवुं मानवा प्रेरे छे के हरिभद्राचार्ये आटला अंशनी ज टीका बनावी हशे; शेष अंश पर कलम चलाववी तेमने जरूरी नहि जणाई होय. वळी, वीराचार्य पोतानी टीका रचनाना मङ्गल पद्यमां नोंधे छे के ''पिण्डनिर्युक्तिनी हरिभद्रसूरिकृत टीकाना शेष (भाग)ने वीराचार्य यथाशक्ति स्पष्ट करे छे'' तेनुं तात्पर्य पण एमज समजाय छे के हरिभद्राचार्यनी टीका-रचना आटला प्रमाणनी ज हशे. पछीथी कोईए तार्किक खुलासालेखे एवुं नक्की कर्युं होय के टीका अधूरी रहीने हरिभद्रसूरि दिवंगत थतां वीराचार्ये आ टीकापूर्ति करी छे. अलबत्त, बन्ने तरफ सम्भावना ५०-५० टका गणी शकाय.

निर्युक्तिकार कोण ? ते विषे हालमां बे मत प्रवर्ते छे. पुरातन परम्परा प्रमाणे १४ पूर्वधर भद्रबाहुस्वामी तेना प्रणेता छे. आधुनिक विद्वानोना अभिप्राय प्रमाणे द्वितीय भद्रबाहुनी अे रचना छे. आधुनिकोना मनमां केटलाक प्रश्नो छे, जेनो उत्तर शोधतां शोधतां तेओ आवा अनुमान तरफ ढळ्या छे. तेमना तर्क

अने प्रश्नोने पण समजवा तो जोईए.

प्रस्तुत पुस्तकना, पोताने 'अज्ञात' राखवानी, विचित्र गणी शकाय तेवी (केमके ग्रन्थमां पोतानुं नाम टाळ्या छतांये ग्रन्थनी जाहेरात पोताना पक्षीय सामयिक पत्रमां छपावी, तेमां पोतानुं नाम छपावेलुं जोवा मळे ज छे !) वर्तणूक धरावता सम्पादक मुनिराजे, बन्ने पक्षोने तथा तेमना प्रश्नो, तर्को, समाधानो इत्यादिनो अभ्यास कर्या विना ज, अभिनिवेशपूर्वक तथा अछाजती भाषामां आधुनिक विद्वानोने ऊतारी पाडतुं लखाण कर्युं छे, जे तद्दन अनावश्यक तेमज अनधिकृत गणाय तेवुं जणायुं छे. आवी गम्भीर चर्चाओ गीतार्थो तथा आरूढ विद्वानो माटे बाकी रहेवा दईने ग्रन्थ सम्पादन प्रत्ये ज ध्यान केन्द्रित करवुं उचित अने हितावह गणाय. सुन्दर सम्पादनकार्यने आवां अभ्यासविहोणां अने उपलकियां प्रतिपादनो दूषित करी ज शके.

२. सन्मतितर्क - (सटीक, सविवेचन), भाग-१ थी ५, कर्ता-सिद्धसेन दिवाकरजी, टीका.- अभयदेवसूरिजी, विवे.- जयसुन्दरसूरिजी, प्रका.- दिव्यदर्शन ट्रस्ट, धोळका, वि.सं. २०६७

प्रस्तुत ग्रन्थमां मूळ अने टीकानुं विवेचनात्मक हिन्दी भाषान्तर करवामां आव्युं छे. दर्शनशास्त्रना अभ्यासीओ माटे उपयोगी प्रकाशन.

३. श्रीसमकित सडसठबोल बार प्रकारी पूजा - उमेरो करनार **:** मुनि रत्नयशविजय. प्र. बकुभाई मणिलाल परिवार, अमदावाद, ई. २०१२

महोपाध्याय श्री यशोविजयजी गणिए सम्यक्त्वना ६७ बोलनी सज्झाय (स्वाध्याय)नी ढाळो रची छे, जे सुप्रसिद्ध छे, अने जैनोनी आवश्यक धर्मक्रियामां बोलाय छे. आमां आत्माना सम्यग् दर्शन नामना गुणनुं वर्णन छे, परन्तु जिनेश्वर भगवाननी भक्तिनी कोई ज वात नथी.

आ ढाळोमां, आगळ-पाछळ, थोडाक दुहा तथा गीतो तेमज श्लोको उमेरीने तेने, देरासरमां भणाती (जिन) पूजानुं स्वरूप आ पुस्तकमां आपवामां आवेल छे. पुस्तकना मुखपृष्ठ उपर ज वांचवा मळे छे **:** ''पू. महोपाध्याय श्रीयशोविजयजी महाराजा विरचित समकित सडसठ बोलनी सज्झायमां उमेरो

करी रचायेल''.

आ उमेरण पाछळ तेना रचनार - वगेरेनो आशय, कदाच, शुद्ध के सारो होई शके तेवुं स्वीकार्या पछी पण, आ रीतना उमेरा करवानी तथा सज्झायने पूजामां फेरववानी चेष्टा अयोग्य तेमज अनधिकृत छे, तेवुं कह्या सिवाय रहेवाय तेम नथी.

◆ उपाध्यायजी सज्झायने बदले पूजा बनावी शक्या होत.

◆ उपाध्यायजीनी रचनामां उमेरो करवानो मतलब एटलो ज थाय के तेमणे अधूरुं छोड्युं हशे अथवा पूर्ण प्रतिपादन करतां नहि फाव्युं होय. आवो अर्थ कोई काढे तो तेमां तेनो दोष न गणाय. वास्तवमां आवा उमेरा करवा ते महापुरुषनी अवहेलना ज बनी रहे.

◆ ५, ८, १७, २१, १०८ प्रकारी पूजाओना प्रकारो शास्त्रोमां उपलब्ध छे. १२ प्रकारी पूजाने कयो आधार हशे ? ते प्रश्न पण रहे ज छे.

◆ जे रचनामां जिनभक्ति के पूजाने लगतो कोईज पदार्थ न होय, केवल स्वाध्यायलक्षी ज रचना होय, तेने जिन-पूजानुं रूप आपी देवुं ते तो रचना प्रत्ये थता गेरव्यवहार-समान लागे छे.

◆ भविष्यमां आवी रचनाओनो व्यापक उपयोग थाय तो मूल रचयिता गौण बनी जाय अने उमेरा करनारनुं महत्त्व वधी जाय तो ते प्रज्ञापराध ज गणाय.

◆ पूजा रचवी ज होय तो ६७ बोलने केन्द्रमां राखीने स्वतन्त्र रचना जरूर करी शकाय छे. परन्तु उपाध्यायजीनी रचना साथे आवी चेष्टा करवी उचित नथी, संघ के सम्बन्धित वर्ग माटे हितावह पण नथी.

४. विशेष-णवति - (अक्षरगमनिका-टीकासहित) कर्ता - श्रीजिनभद्रगणि, टीका- श्रीविजयकुलचन्द्रसूरिजी, प्र.- दिव्यदर्शन ट्रस्ट, धोळका, वि.सं. २०६७

ग्रन्थनुं नाम ज जणावे छे तेम आमां सैद्धान्तिक, कार्मग्रन्थिक, आचार-विचारविषयक व. ९० जेटला विशेष मुद्दाओ पर चर्चा करवामां आवी छे. लगभग १४०० वर्ष जूनी रचना होवा छतां, ग्रन्थ पर कोई टीका उपलब्ध

नथी ते नवाई पमाडे तेवी वात छे. श्रीकुलचन्द्रसूरिजीओ अवचूरिस्वरूप आ टीका रचीने आ कमी दूर करवानो स्तुत्य प्रयास कर्यो छे. टीकामां मुख्यत्वे शब्दार्थ आपवामां आव्यो छे तथा सम्बन्धित विषयने लगती चर्चाओ, आगमोनी चूर्णि, टीका व. ने आधारे करवामां आवी छे. टीका संक्षिप्त होवाथी घणे ठेकाणे अर्थ सन्दिग्ध रहे छे. केटलाक स्थळे अर्थ बदलवा जेवो पण जणाय छे. छतां पण पठन-पाठनमां प्रायः अप्रचलित आ ग्रन्थने आ रीते प्रकाशमां लावी टीकाकारे उत्तम श्रुतसेवा करी छे ते निःशङ्क छे.

५. सिद्धहेमशब्दानुशासन-बृहद्वृत्ति-ढुण्ढिका - सं.- मुनि विमलकीर्तिविजय, प्र.- क.स. श्रीहेमचन्द्राचार्य न.ज.स्मृ.सं.शि. निधि - अमदावाद, वि.सं. २०६७

संस्कृतव्याकरणना अभ्यासीओ माटे उपयोगी आ ग्रन्थना वधु बे भाग प्रकाशित थया छे. भाग ३ - अध्याय ३.२ थी ४.१, भाग ४ - अध्याय ४.२ थी ४.४.